



GAEKWAD'S ORIENTAL SERIES

Published under the Authority of the
Government of His Highness the
Maharaja Gaekwad of Baroda

GENERAL EDITOR

B. BHATTACHARYYA, M. A.

SAMARĀṄGAṄASŪTRADIHĀRA

VOLUME I

समराङ्गणसूत्रधारः

राजाधिराजश्रीभोजदेवप्रणीतः

RÂNGAṆASŪTRADHÂR

BY

KING BHOJADEV

1

EDITED BY

MAHÂMAHÔPADHYÂYA

G. GAṆAPATI SÂSTRÎ,

Member of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland,

Doctor of Philosophy, University of Tübingen,

Editor of the

TRIVANDRUM SANSKRIT SERIES.

IN TWO VOLUMES

Volume I

327

Printed by L. Ramaswamy Sastri at the Sudhakar Press, Tiruchennai, and
published by Newton Mohan Dutt, Curator of Libraries, Baroda State,
on behalf of the Government of His Highness the Maharaja
Gaekwad, at the Central Library, Baroda.

Price Rs. 5 Net.

PREFACE.

Samarāṅgaṇasūtradhāra is a work on architecture. It means, literally, an architect of human dwellings and deals with the planning of towns and villages, building of houses, halls and palaces as well as machines of various kinds.

The edition is based on the following three manuscripts:

- (1) The manuscript marked क, belonging to the Central Library, Baroda, which runs up to a certain portion in the 82nd adhyaya but is wanting in 19 folios, and which was copied, as mentioned in the colophon, in Samvat 1594.
- (2) The manuscript marked ख, belonging to the same library, which runs up to a portion in the 56th adhyaya.
- (3) The manuscript marked ग, obtained on loan from the Bhandar at Pattan, which runs up to a portion of the 49th adhyaya but is wanting in 10 folios and which appears to be of the same age as the first.

These manuscripts are full of errors and not very legible. To examine them for the press was a very difficult task. The first 54 adhyayas are now issued as the first volume while the remaining adhyayas are in the press and will be published before long as the second volume.

An exhaustive table of contents is prefixed to this volume a perusal of which will give an idea of all the subjects imbedded in it.

The work treats of the construction of cities, palaces and mansions with greater clearness of expression and wealth of details than any other available work of Silpa Sastra. The 31st chapter contains descriptions of various kinds of machines that are not found in other Silpa works, such as the elephant machine (गजयन्त्र), wooden bird-machine travelling in the sky (व्योमचरि-हृदयन्त्र), wooden vimana machine flying in the air (आकाशगमिहृदय-मयविमानयन्त्र), door-keeper machine (द्वारपालयन्त्र), soldier machine (सैन्ययन्त्र) etc.

ननस्य विस्मयकृता नृपति च पठन्ति च ।
 पुत्रिका वा गवेन्द्रो वा दुरगो मर्कटोऽपि वा ॥
 बलनैर्वर्तनैर्नृत्पराकालेन हरते मनः । ”

“लघुदासस्य महाविद्मं ददमुश्चित्तनुं विधाय तस्य ।
 उदरे रत्नमप्रमादधीत ज्वलनाधारमघोऽस्य चाग्निपूर्णम् ॥
 तत्रारुढः पूज्यस्तस्य पञ्चद्वन्द्वोच्चालप्रोक्षितेनानिलेन ।
 मुमस्यान्तः पारतम्यास्य शक्त्या चित्रं कुर्वन्नम्बरे याति दूरम् ॥
 इत्यमेव मुरमन्दिरतुल्यं सञ्चलत्यलघु दासविमानम् ।
 आदधीत विधिना चतुर्योऽन्तस्तस्य पारदभृतान् ददकुम्भान्” ॥

Generally, the language of the extant Silpa works is ungrammatical, but the present work is free from grammatical solecisms and written mostly in a sweet and beautiful style. The work will prove to be of immense benefit to students of Indian architecture as well as to those who wish to follow it in practice.

The author of the work, as mentioned in it, is Maharaja-bhiraja 'Sri Bhojadeva who is probably the same Bhoja of Dhara who ruled over Malwa in the first part of the 11th century A. D. and to whom many important works are ascribed such as, *Sringarajakāśa* (Alankara) and *Saraswatikanthā-harana* (Vyākaraṇa).

T. Ganapati Sastri.

विषयानुक्रमणी ।

विषयः

पृष्ठम्.

१. महासमागमनाध्यायः प्रथमः —

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|---|
| मङ्गलाचरणम् | ... | ... | ... | ... | १ |
| शुभानामुपादानस्य, अशुभानामनुपादानस्य चावश्यकता | ... | ... | ... | ... | " |
| देशपुरादीनां श्रेयःसाधनत्वकथनम् | ... | ... | ... | ... | " |
| शास्त्रारम्भसमर्थनम् | ... | ... | ... | ... | " |
| अन्योपक्रमोपक्षेपः | ... | ... | ... | ... | " |
| पुरा ब्रह्मसन्निधौ पृथूपद्रुताया भूमेरभयप्रार्थनम् | ... | ... | ... | ... | २ |
| भूमिमानु प्रस्थितस्य पृथोस्तत्राविर्भावः | ... | ... | ... | ... | " |
| आविर्भूतस्य तस्य ब्रह्माणं प्रति स्वोद्यमविज्ञापनम् | ... | ... | ... | ... | " |
| श्रुतवृत्तान्तस्य ब्रह्मणः प्रतिवचनम् | ... | ... | ... | ... | " |
| पृथ्विप्रेतस्य स्थानादिविनिवेशनस्य विधानाय विश्वकर्मणं प्रति ब्रह्मणो नियोगः | ... | ... | ... | ... | " |
| समाहितयोः पृथुभूम्योर्विसर्जनम् | ... | ... | ... | ... | ३ |
| भूम्या सह पृथौ, ब्रह्माणि च स्वं स्वं स्थानमुपाश्रिते विश्वकर्मणो हिमाचलमभि गमनम्. | ... | ... | ... | ... | " |

२. विश्वकर्मणः पुत्रसंवादाध्यायो द्वितीयः —

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|---|
| अथ ब्रह्मनियोगानुष्ठानाय हिमालयं गतस्य विश्वकर्मणः स्वपुत्रस्मरणम् | ... | ... | ... | ... | " |
| स्मरणमात्रोपनतानां तेषां जयादीनां चतुर्णां मानसानां पितुः पादाभिवन्दनम् | ... | ... | ... | ... | " |
| पृथ्व्यो ब्रह्मनियोगनिवेदनं, स्वसास्यार्थं तत्तत्स्थानादिविनिवेशनाय तेषां विश्वकर्मणा नियोजनं च. | ... | ... | ... | ... | ४ |

३. प्रश्नाध्यायस्तृतीयः —

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|------|
| अथ जयस्य शास्त्रप्रमेयभूतान् वास्त्वाध्वयानन्यांश्च विविषान् अर्थानधिष्ठित्य प्रश्नः | ... | ... | ... | ... | ५-१० |
|--|-----|-----|-----|-----|------|

४. महदादिसर्गाध्यायश्चतुर्थः —

| | |
|--|----|
| जयेन जिज्ञासितानामर्यानां यथासम्भवमनुक्रमेण विधकर्मगोपदेशः | १० |
| तत्र प्रथमं महाप्रलयावस्थावर्णनम् | ११ |
| प्रलयावसाने ब्रह्मण आविर्भावः, सृष्ट्युपक्रमश्च | ११ |
| महदहङ्कारादीनां सृष्टिः | ११ |
| महदादिभ्यः पञ्चमहामूतानां स्वस्वगुणयुक्तानामाविर्भावः | ११ |
| भौतिकसर्गे ब्रह्मणोऽंशैः सृष्टाः सुरासुरादयः | ११ |
| कारणजलाद् भूम्युदधिमहीधरनिम्नगाद्वीपानामुत्पत्तिप्रकारः | १२ |
| भूमेरधो रौरवादिनरकाणां सृष्टिः | ११ |
| जरायुजादीनां चतुर्णां भूतानां सृष्टिः | ११ |
| तत्र जरायुजानां विभागः | ११ |
| ग्राम्यारण्यभेदेन पुनर्द्विधा भिन्नानां तेषां विवरणम् | ११ |
| अण्डजस्वेदजोद्भिज्जानां विभागादिकम् | १३ |

५. भुवनकोशाध्यायः पञ्चमः —

| | |
|--|--------|
| भूपरिमितिः | १४-१८ |
| सप्तसु द्वीपेषु जम्बूद्वीपवर्णनम् | १८ |
| शाकद्वीपवर्णनम् | १९ |
| कुशकौशशास्मलिगोमेदपुष्करद्वीपानां वर्णनम् | २० |
| लोकालोकाचलस्थितिपरिमाणादिकम् | २०, २१ |
| सूर्यादीनां स्थितिर्गतिश्च | २०, २१ |

६. सहदेवाधिकाराध्यायः षष्ठः —

| | |
|---|----|
| कृतयुगे मनुष्याणामत्युत्कृष्टा स्थितिः | २२ |
| कालान्तरे क्रमशस्तस्या अपकर्षे हेतुः | २३ |
| व्युत्पन्नमावानां तेषां तादात्विकी वृत्तिः | २४ |
| क्रमेण रागलोभाद्वीनानुत्पत्त्या तेषां भ्रियुनीभावेनावस्थानम् | २४ |
| तात्कालिकी लोकस्थितिः | २५ |
| हिमानिलादिवारणाद्यर्थं तेषां गृहापेक्षा, गृहनिर्माणाय तैरुपायः प्रथमोपायश्च | २५ |

विषयः

पृष्ठम्.

७. वर्णाश्रमप्रविभागाध्यायः सप्तमः —

| | |
|---|----|
| अथैवं दुःखाभिमृतानां लोकानामनुग्रहायादिराजस्य पृथोरभिषेकः ... | २५ |
| पृथुं प्रति नराणां दुःखापनोदनप्रार्थनम् | २६ |
| पृथुना कृतो वर्णविभागस्तद्धर्माश्च | २७ |
| आश्रमविभागस्तद्धर्माश्च | २७ |
| शिष्यधर्माः स्त्रीधर्माश्च | २७ |
| सर्वेषां वृत्त्यर्थं खेटप्रामादिकल्पनम् | २७ |

८. भूपरीक्षाध्यायोऽष्टमः —

| | |
|---|----|
| भूमेः सामान्यतो जाङ्गलादिभेदेन त्रैविध्यं, तल्लक्षणं च | २८ |
| त्रिविधाया अपि भूमेः पुनर्बालिशस्वामिन्यादिभेदेन षोडशधा विभागस्तल्लक्षणं च. | २९ |
| जनपदादिनिवेशनोचिता भूमयः | ३० |
| दुर्गनिवेशनोचिता भूमयः | ३१ |
| पुरनिवेशने प्रशस्ता भूमयः | ३१ |
| सर्ववर्णोचिता भूमिः | ३१ |
| तत्तद्वर्णोचिता भूमयः | ३२ |
| अपरा सर्वसाधारणी भूमिः | ३१ |
| पुरादिनिवेशनेषु वर्ज्यानां भुवां लक्षणम् | ३१ |
| कल्प्यमाणायां भुवि काष्ठादिदर्शने फलम् | ३३ |
| अन्यानि भूपरीक्षणानि | ३३ |

९. हस्तलक्षणाध्यायो नवमः —

| | |
|--|----|
| हस्तलक्षणम् | ३४ |
| हस्तदण्डनिर्माणप्रकारः | ३५ |
| संज्ञेयानां स्थानबोधे फलम् | ३६ |
| ताराणां स्थानविशेषेषु करधारणे फलम् | ३७ |
| प्राशपादीनां त्रयाणां हस्तविशेषाणां लक्षणम् | ३७ |
| पुरादीनां माने तेषां विनियोगप्रकारः | ३७ |

विषयः

पृष्ठम्.

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|----|
| मात्राफलादिकानां सामान्यमानानां लक्षणम् | ... | ... | ... | १७ |
| एकादीनि सदस्यास्थानानि | ... | ... | ... | १८ |
| निमेषादीनि कालमानानि | ... | ... | ... | " |

१०. पुरनिवेशाध्यायो दशमः —

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-------|
| उत्तमाधममध्यमपुराणां मानम् | ... | ... | ... | १९ |
| सर्वपुराणां सामान्यविधिः | ... | ... | ... | " |
| उत्तमादिपुरेषु कश्चित् कश्चिद् योजनीया विशेषाः | ... | ... | ... | " |
| तेषु महारथ्यादिविधानम् | ... | ... | ... | " |
| ✓ वप्रविधानम् | ... | ... | ... | ४० |
| ✓ परिखाविधानम् | ... | ... | ... | " |
| ✓ वप्रोर्ध्वभागगतप्राकारविधानम् | ... | ... | ... | ४१ |
| ✓ कपिशिर्षकस्य काण्डवारिण्याश्च प्रमाणम् | ... | ... | ... | " |
| ✓ अष्टालकादिविधानम् | ... | ... | ... | " |
| ✓ चरिकाविधिः | ... | ... | ... | " |
| ✓ पुरद्वारप्रमाणादिकम् | ... | ... | ... | " |
| प्रतोल्यादिकल्पनम् | ... | ... | ... | ४२ |
| जलभ्रमविधानम् | ... | ... | ... | ४३ |
| छिन्नकर्णादीनि गर्हितानि पुराणि, तन्निवासफलं च | ... | ... | ... | " |
| पुरनिवेशादिषु शान्तिकादिविधेरावश्यकता, तद्विधौ नियोज्याः | ... | ... | ... | " |
| स्थपत्यादयश्च | ... | ... | ... | ४४ |
| खेटग्रामादीनां प्रमाणादिकम् | ... | ... | ... | ४५ |
| उत्तमादिषु राष्ट्रेषु ग्रामसंख्या | ... | ... | ... | " |
| पुरेषु सुवर्गधारादीनां निवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | " |
| ग्रामादीनां निवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | ४६ |
| बलाध्यक्षादीनां निवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | " |
| लक्ष्मीवैद्यवगयोनिवेशनस्थानादिकम् | ... | ... | ... | ४७ |
| नगरारसकदेवतानां बाणाम्यन्तराग्निषु स्थापनप्रकारादिकम् | ... | ... | ... | ४७-५० |

विषयः

पृष्ठम्-

११. वास्तुत्रयविभागाध्याय एकादशः—

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|--------|
| एकाशीतिपदवास्तौ देवतानां निवेशः पदभोगश्च | ... | ... | ... | ५०, ५१ |
| शतपदवास्तौ तासां पदभोगः | ... | ... | ... | ५२ |
| चतुष्पष्टिपदवास्तौ तासां पदभोगः | ... | ... | ... | ५३ |
| सिरानयनप्रकारः | ... | ... | ... | ५४ |

१२. नाड्यादिसिरादिविकल्पाध्यायो द्वादशः—

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|----|
| षोडशपदवास्तौ देवतानां पदभोगः | ... | ... | ... | ५३ |
| सहस्रपदवास्तौ तासां पदभोगः | ... | ... | ... | ५४ |
| चतुष्पष्टिपदवृत्तवास्तुविधानम् | ... | ... | ... | ५५ |
| शतपदवृत्तवास्तुविधानम् | ... | ... | ... | ५६ |
| त्र्यश्रादिवास्तुषु वृत्तवास्तुगतपदविभागातिदेशः | ... | ... | ... | ५७ |
| वास्तुपुरषाकृतौ मुखाद्यवयवकल्पनवचनम् | ... | ... | ... | ५८ |
| वास्तुशरीरगतानां नाडीवंशादीनां परिगणनम् | ... | ... | ... | ५९ |
| तत्र नाडीस्वरूपप्रदर्शनं, तत्प्रमाणं च | ... | ... | ... | ६० |
| वंशानुवंशमहावंशानां मर्मोपमर्मणोः सन्ध्यनुसन्ध्योश्च स्वरूपप्रदर्शनं | ... | ... | ... | ६१ |
| प्रमाणं च | ... | ... | ... | ६२ |
| तत्तद्गृहद्रव्यैर्महावंशादीनां पीडने फलम् | ... | ... | ... | ६३ |

१३. मर्मवेधाध्यायस्योदशः—

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|----|
| नगरादिषु मध्ये एकाशीतिपदेन शतपदेन च विभजनीयं वास्तु | ... | ... | ... | ६४ |
| चतुष्पष्टिपदेन विभजनीयं वास्तु | ... | ... | ... | ६५ |
| एकाशीतिपदादिषु वास्तुषु मर्मादीनां स्थानानि | ... | ... | ... | ६६ |
| द्वारभित्त्यादिभिर्मर्मवेधे फलम् | ... | ... | ... | ६७ |
| द्वारमध्यादिषु द्रव्यान्तरैर्विधेयं, तेष्वनुवंशादिनिहितेषु च फलम् | ... | ... | ... | ६८ |
| वेधेषु केषाञ्चित् कचिद् दोषाभावकथनम् | ... | ... | ... | ६९ |

१४. पुरुषाद्वगदेवतानिषट्पादिनिर्णयाध्यायश्चतुर्दशः—

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|----|
| पुरुषाद्वगदेवतानिषट्पादिनिर्णयाध्यायश्चतुर्दशः | ... | ... | ... | ७० |
| वास्तुपुरुषस्य शिरःस्थानम् | ... | ... | ... | ७१ |

| | | | | | |
|-----------------------------|-----|-----|-----|-----|-------|
| शतपदषोडशपदवास्तवोः प्रकृतिः | ... | ... | ... | ... | ५९ |
| वास्तुदेवानां निघण्डुः | ... | ... | ... | ... | ५९-६१ |
| वास्तववयवविहिता वर्णाः | ... | ... | ... | ... | ६१ |

१५. राजनिवेशाध्यायः पञ्चदशः—

| | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|----|
| पुरे राजवेश्मनिवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| दुर्गेषु तन्निवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ६२ |
| उत्तनादीनां राजवेश्मनां प्रमाणम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| तेषां ज्येष्ठादिषु पुरेषु विनियोगः | ... | ... | ... | ... | ११ |
| राजवेश्मसन्निवेशसम्बद्धा विशेषाः | ... | ... | ... | ... | ११ |
| तत्र द्वारादिनिवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| नृपवासप्रामादननिवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| नृपवसतियोग्याः प्रासादविशेषाः | ... | ... | ... | ... | ११ |
| धर्माधिकरणकोट्यागारमहानसादीनां स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ६३ |
| स्थादीनां स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ११ |
| अन्तःपुरकीडागृहकुमारीभवनादीनां स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ११ |
| अशोकवनिष्ठास्थानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| आनन्दगृहभागगृहकलागृहादिभिः आसीद्गोपनीयस्थानानि | ... | ... | ... | ... | ११ |
| आनुभागागरमान्डागारायोः स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ६४ |
| रत्नमण्डपशिवालयश्चरुभक्त्यभवनदीनां स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ११ |
| पुरोपायाः, आभिवेशनघ्न, क्षान्त्यभवनशास्त्रिकर्मणां, | | | | | |
| सर्वस्वमार्गश्च स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ११ |
| अन्यगृहस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| अन्यगृहस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| राजकुमाराली राजकुमारगृहस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| पुरोपायादिगृहादिनां स्थानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| विश्वेश्वरदेवतादीनां स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ११ |
| क्षेत्रादिनां स्थानानि | ... | ... | ... | ... | ११ |
| अन्यगृहस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| अन्यगृहस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |

विषयः

| | | | | | |
|-------------------------------------|-----|-----|-----|-----|----|
| सामन्तानां गृहस्थानम् ... | ... | ... | ... | ... | ६५ |
| देवकुलस्थानम् ... | ... | ... | ... | ... | ११ |
| ज्योतिर्विदां सेनापतेश्च गृहस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| शास्त्रकर्मान्तस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| शस्त्रस्थानविनियोगः | ... | ... | ... | ... | ११ |
| विषाणिनां स्थानान्तरप्रदर्शनादि | ... | ... | ... | ... | ११ |

१६. वनप्रवेशाध्यायः षोडशः —

| | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|----|
| द्रव्यानयनार्थे वनप्रस्थानाय विहितो नक्षत्ररास्यादिः | ... | ... | ... | ... | ११ |
| द्रव्यच्छेदनभेदनवनप्रवेशनकार्यात्मणां राशयः | ... | ... | ... | ... | ६६ |
| वृक्षपरीक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| श्मशानागुद्रूतानां, बालानां वृद्धानां च वृक्षाणां वर्जनीयत्वकथनम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| सारद्रुमाणां वयः | ... | ... | ... | ... | ११ |
| तत्र गृहकर्मार्हे वृक्षवयः | ... | ... | ... | ... | ११ |
| अतर्ह्ये वयसि स्थितानां वृक्षाणां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| तदर्ह्ये वयसि स्थितेष्वपि तेषु वनरूक्षादीनां त्यजनीयत्वकथनम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| कुटुम्बिनामर्हा वृक्षाः | ... | ... | ... | ... | ६७ |
| गृहकर्मण्युपादेयानामन्येषामपि वृक्षाणां सामान्यलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| गृहार्थं गर्हिता वृक्षाः | ... | ... | ... | ... | ११ |
| वृक्षप्रमाणविज्ञानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| वृक्षनशत्रुविज्ञानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| वृक्षच्छेदनशान्तिप्रयोजकं स्वस्तिवाचनशान्तिशानादि | ... | ... | ... | ... | ११ |
| वृक्षच्छेदनविधिः | ... | ... | ... | ... | ६८ |
| छिद्यमानानां वृक्षाणां सखादिनापि तद्वेयोपादेयनानिर्जयनकारः | ... | ... | ... | ... | ११ |
| वृक्षपातादिना तज्ज्ञानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| छेदारम्भे सरोष्टादीनां दर्शने फलम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| छेदादुत्क्षिप्तेष्ववशिष्टेषु च वृक्षेषु फलम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| छिन्ना पातितानां वृक्षाणां भागशरच्छेदने विधिः | ... | ... | ... | ... | ६९ |
| गोधादिगर्भितानां तेषां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११ |
| मण्डलगत्येन तण्डुर्नविज्ञेयेन गर्भस्थतण्डुलानादीनां विज्ञानम् | ... | ... | ... | ... | ११ |

वैपयः पृष्ठम्.

जन्त्वादिगर्भितानां वृक्षाणामुपयोजने फलम् ... ६९

वनान्तराच्छित्तवानीतानां तेषां परिग्रहप्रकारः ... ११

१७. इन्द्रध्वजनिरूपणाध्यायः सप्तदशः —

इन्द्रध्वजोत्थापनसम्बद्धा कथा ... ७०

इन्द्रध्वजस्यावयवकृता, तद्विधानप्रकारोपक्रमश्च ... ७१

इन्द्रध्वजस्योत्तमाधममध्यमानि मानानि ... ११

तस्य मूलप्रमाणयोर्मानम् ... ११

कुप्यस्य मानम् ... ११

अमरीष्टमूलपादादीनां मानम् ... ७२

इन्द्रध्वजनिर्माणविधिः ... ११

महाय, अष्टमातुः, सुमारीणां, कन्यकोदयादीनां च मानम् ... ११

तद्वटस्य सूच्याश्च मानादिकम् ... ११

सुगान्धिकादिकम् ... ७३

ध्वजस्योदयप्रानां चोत्थेनसमयः ... ११

तेषां जलपिवासनप्रकारः ... ११

तद्वटस्य तेषां निवेशनक्रमः ... ११

इन्द्रध्वजनिर्माणविधिः ... ७४

सुगान्धिकादिकम् ... ७५

तद्वटस्य तेषां निवेशनक्रमः ... ७६

इन्द्रध्वजनिर्माणविधिः ... ११

सुगान्धिकादिकम् ... ७७

तद्वटस्य तेषां निवेशनक्रमः ... ७८

इन्द्रध्वजनिर्माणविधिः ... ११

सुगान्धिकादिकम् ... ७९

तद्वटस्य तेषां निवेशनक्रमः ... ८०

इन्द्रध्वजनिर्माणविधिः ... ८१

विषयः

| | | | |
|---|-----|-----|---------|
| समुच्छ्रितस्य शकध्वजस्य प्राच्यादिदिगाश्रयणे फलम् | ... | ... | पृष्ठम् |
| अमं भित्त्वा भूमौ प्रतिष्ठमाने तस्मिन् फलम् | ... | ... | ८१ |
| तस्य स्थानान्तरभ्रंशादिषु फलम् | ... | ... | ८२ |
| रज्जुच्छेदे फलम् | ... | ... | ८३ |
| इन्द्रध्वजस्य भग्ने फलम् | ... | ... | ८४ |
| छत्रादीनामिन्द्रध्वजस्य वा पाते फलम् | ... | ... | ८५ |
| मास्यविभूषणादीनां च्युतौ फलम् | ... | ... | ८६ |
| शक्रवेश्मादीनां विशरणे फलम् | ... | ... | ८७ |
| मृगालीलफटादीनां भग्ने फलम् | ... | ... | ८८ |
| ध्वजे निर्घातादीनां पाते फलम् | ... | ... | ८९ |
| शक्रोपरि मक्षिकाभिर्मनुच्छत्रकरणे फलम् | ... | ... | ९० |
| शक्रपाशे मक्षिकादीनां भ्रमणे फलम् | ... | ... | ९१ |
| शक्रमूर्धनि श्वेनादीनां राशे फलम् | ... | ... | ९२ |
| केतौ वायसादीनां सङ्गे फलम् | ... | ... | ९३ |
| चित्रपटे मुरापाकाराणां यथावनिवेशने फलम् | ... | ... | ९४ |
| एतेषां कुट्टनपातच्छेददोषादिषु फलम् | ... | ... | ९५ |
| चित्रपटस्य पातादिषु फलम् | ... | ... | ९६ |
| ध्वजोच्छ्रयविधौ नरादीनां वेष्टादिभिर्निमित्तावलीकृतम् | ... | ... | ९७ |
| तदानीं दृष्टिमाते फलम् | ... | ... | ९८ |
| उत्सवान्तिमदिवसहृत्यम् | ... | ... | ९९ |
| इन्द्रस्थानभूतस्य क्षेत्रस्य मानादिकम् | ... | ... | १०० |
| क्षेत्रप्रमाणेन ध्वजायामादिकल्पनम् | ... | ... | १०१ |
| प्रतिवत्सरं फेनुप्रमाणस्य वर्धनम् | ... | ... | १०२ |
| यन्त्रपादकुमारिकादीनां निवेशनरथानानि | ... | ... | १०३ |

१८. नगरादिमंशान्तराद्योऽष्टादशः—

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|-----|
| नगरपर्यायाः | ... | ... | ... | ... | १०४ |
| नृशङ्खुवितस्य नगरस्य संज्ञा | ... | ... | ... | ... | १०५ |
| राशानगरकवेदनिगममानसंज्ञितानां स्वस्वरूपनम् | ... | ... | ... | ... | १०६ |
| पत्तनपुटभेदनर्तावनरदराष्ट्रभित्तानां संरक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १०७ |

[illegible]

| विषयः | पृष्ठम् |
|-----------------------------------|---------|
| कोष्ठकस्य स्वरूपनिर्देशः | ८८ |
| भित्तेः | ११ |
| महानसस्य | ११ |
| द्वारकोष्ठकस्य | ११ |
| प्रवेशनस्य | ११ |
| टदकभ्रमस्य | ११ |
| भवनाजिरवनाजिरा- श्रमाजिराणाम्, | ११ |
| देहस्याः | ११ |
| द्वारपञ्चस्य | ८९ |
| अर्गलार्गलभूच्योः,, | ११ |
| परिष्कलिदगवाक्षाणाम्,, | ११ |
| तोरणस्य तद्विशेषाणां च,, | ११ |
| सिंहकर्णस्य | ११ |
| संयमनायस्य | ११ |
| मरालपालीप्रणालीपद्वाराणां,, | ११ |
| प्राकारस्य | ११ |
| आस्थलकारुष्यस्य | ११ |
| अमेध्यभूमेः | ११ |
| अवस्करस्य | ११ |
| परितरस्य | ११ |
| अष्टाभिषस्य | ११ |
| अष्टानकस्य | ११ |
| अष्टारुपाः | ११ |
| अष्टालिकायाः | ११ |
| काष्ठप्रजास्याः | ११ |
| धारागृहस्य | ११ |
| दर्शनगृहस्य | ११ |
| पण्डारस्य | ११ |

विषयः

| | | | | |
|------------------------------|-----|-----|-----|-----|
| गोपुरद्वारस्य स्वरूपनिर्देशः | ... | ... | ... | ... |
| उपकार्यायाः | ... | ... | ... | ... |
| क्षौमाख्यस्य | ... | ... | ... | ... |
| पुरीम्बरणस्य | ... | ... | ... | ... |
| उपनिष्कलस्य | ... | ... | ... | ... |
| उद्यानस्य | ... | ... | ... | ... |
| जलोद्यानजलवेश्मनोः | ... | ... | ... | ... |
| क्रीडागारस्य | ... | ... | ... | ... |
| विहारभूमेः | ... | ... | ... | ... |
| चैत्यस्य | ... | ... | ... | ... |
| सभायाः | ... | ... | ... | ... |
| गोष्ठस्य | ... | ... | ... | ... |

१९. चतुश्शालविधानाध्याय एकोनविंशः—

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| एकशालाद्विषदशालान्तानां गृहभेदानां | | | | |
| पृथक्पृथगेकीकृता सङ्ख्या | ... | ... | ... | ... |
| अष्टाङ्गयुक्तानां तेषां दशशाला- | | | | |
| न्तानां पृथक्पृथगेकीकृता सङ्ख्या | ... | ... | ... | ... |
| गृहद्वितययोगेन निष्पन्नानां गृहविशेषाणां संख्या | ... | ... | ... | ९२ |
| उत्तमवर्णिनां विहितानि गृहमालादी- | | | | |
| न्यन्यान्यष्ट वेश्मानि | ... | ... | ... | ... |
| विप्रादिविषये चतुश्शालादीनां मानविकल्पाः | ... | ... | ... | ... |
| तेषु शालालिन्दादीनां प्रमाणम् | ... | ... | ... | ९३ |
| मूषावक्रोसिमयोः स्वरूपकथनादिकम् | ... | ... | ... | ... |
| भद्रायाः संज्ञाभेदाः | ... | ... | ... | ... |
| प्रवहणायाः स्वरूपं फलं च | ... | ... | ... | ९४ |
| मूषासङ्ख्याज्ञानोपयोगी प्रस्तारः | ... | ... | ... | ... |
| चतुश्शालगतानां मूषाभेदानां सङ्ख्या | ... | ... | ... | ... |
| पृथगनेकैषा निवेशितैः संज्ञैर्विशिष्टैरप्य- | | | | |
| लिन्दादिभिर्गृहाणामानन्त्यकथनम् | ... | ... | ... | ... |
| प्रस्तारे एकप्रज्ञाणां विवेचनम् | ... | ... | ... | ... |

विषयः

पृष्ठम्

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|----------|
| अष्टानामेकमद्रगृहभेदानां नामानि | ... | ... | ... | ९४ |
| अष्टाविंशतिभेदानां द्विभद्रगृहाणां नामानि | ... | ... | ... | ९५ |
| षट्पञ्चाशत्त्रिभद्राणां नामानि | ... | ... | ... | ९६ |
| सप्ततेश्वतुर्भद्राणां नामानि | ... | ... | ... | ९७ |
| षट्पञ्चाशतः पञ्चभद्राणां नामानि | ... | ... | ... | ९८ |
| अष्टाविंशतेः षड्भद्रभेदानां नामानि | ... | ... | ... | ९९ |
| अष्टानां सप्तभद्राणां नामानि | ... | ... | ... | १०० |
| अष्टभद्रस्य नाम | ... | ... | ... | १०१ |
| पु मूषाविन्यासक्रमः | ... | ... | ... | १०२ |
| उक्तानामेकमद्रादीनां सर्वेषां | | | | |
| चतुश्शालभेदानां पिण्डीकृता सङ्ख्या | | | | १०३ |
| कचित् कचिद् गृहविशेषेषु मूषादिकोमिम- | | | | |
| योर्न्यसनक्रमादिकम् | ... | ... | ... | १०४ |
| अथ एकभद्रभेदेषु प्रागायतादिषु मूषास्थितिः | ... | ... | ... | १०५ |
| तेषां प्रत्येकं पञ्चभद्रदर्शनम् | ... | ... | ... | १०६ |
| द्विभद्रभेदेषु ईरादिषु मूषास्थितिः | ... | ... | ... | १०७ |
| त्रिभद्रभेदेषु ऐन्द्रादिषु मूषास्थितिः | ... | ... | ... | १०८-१०९ |
| चतुर्भद्रभेदेषु कृतादिषु मूषास्थितिः | ... | ... | ... | ११०-१११ |
| पञ्चभद्रभेदेषु कानलादिषु मूषास्थितिः | ... | ... | ... | ११२-११३ |
| षड्भद्रभेदेषु क्षिप्ररादिषु मूषास्थितिः | ... | ... | ... | ११४, ११५ |
| सप्तभद्रभेदेषु माण्डरीरादिषु मूषास्थितिः | ... | ... | ... | ११६ |
| अष्टभद्रे सर्वतोभद्राण्ये मूषास्थितिः | ... | ... | ... | ११७ |

२०. निम्नोष्ठादिपञ्चाध्यायो विंशः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| अमष्टपञ्चाशदयोः परिमाणा | ... | ... | ... | ११८ |
| द्रव्याध्यासादिभिः शाखाया आधिरये पञ्चम् | ... | ... | ... | ११९ |
| गृहभूमेर्गोमरक्षिणादिभाष्येषु निमित्तकत्वे पञ्चम् | ... | ... | ... | १२० |
| मण्डलादिकं चार्थेषु गृहं, लक्षणां च | ... | ... | ... | १२१ |
| गृहस्य द्रव्यादिभ्योऽन्विद्वन्द्वरचना, लक्षणं च | ... | ... | ... | १२२ |
| तत्रैव इत्यन्विद्वन्द्वरचना, लक्षणं च | ... | ... | ... | १२३ |

विषयः

१७

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| मुग्धापापिने सति वाहानि कलम् | ... | ... | ... | ११ |
| बहुपक्रोषु विनालेषु निम्नो प्रकारो | ... | ... | ... | ... |
| तत्रैव धर्मो प्रकारो | ... | ... | ... | ११ |
| तेषां चतुर्णां नामानि | ... | ... | ... | ... |
| सिद्धार्थादीनां षण्णां द्विशालभेदमनां स्वरूपं कलं च | ... | ... | ... | ... |
| सप्तशालेषु मणिच्छन्दादीनां स्वरूपवकटनम् | ... | ... | ... | ... |
| गृहसप्तद्वयस्य स्वरूपं कलं च | ... | ... | ... | ... |

२१. द्वागसतिविशाललक्षणाध्याय एकविंशः —

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| मुद्ग्यानां चतुर्णां विशालानां नामानि लक्षणं कलं च | ... | ... | ... | ११२ |
| अष्टादशानां हिरण्यनाभभेदानां संज्ञाः | ... | ... | ... | ... |
| तत्समुद्ग्यानां सुक्षेत्रचुलीपक्षभेदानां | ... | ... | ... | ... |
| पृथक्पृथक् नामनिर्देशः | ... | ... | ... | ११३ |
| हिरण्यनाभभेदेषु जाम्बूनदहिरण्यरुक्म | ... | ... | ... | ... |
| हेमसंज्ञितानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... |
| अवशिष्टानां कनकादीनां लक्षणम् | ... | ... | ... | ११४ |
| सुक्षेत्रभेदानां नागादीनां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... |
| चुलीभेदानां मुजङ्गमादीनां लक्षणम् | ... | ... | ... | ११५ |
| पक्षभेदानां राक्षसादीनां लक्षणम् | ... | ... | ... | ११६ |
| पञ्चमद्रकस्वरूपम् | ... | ... | ... | ... |

२२. द्विशालगृहलक्षणाध्यायो द्वाविंशः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| द्विशालगृहेषु मुद्ग्यानां षण्णां सिद्धार्थादीनां लक्षणम् | ... | ... | ... | ११७ |
| तेषु प्रत्येकमेकादशधा भिन्नानां सिद्धार्थयम- | ... | ... | ... | ... |
| सूर्यदण्डवातास्थानां, चतुर्था भिन्नयोश्चुलीकाचयोश्च संज्ञाः | ... | ... | ... | ११८ |
| सिद्धार्थभेदानां वसुधारादीनां, यमसूर्यभेदानां | ... | ... | ... | ... |
| संहारादीनां च लक्षणम् | ... | ... | ... | ११९ |
| दण्डगृहभेदानां प्रचण्डादीनां, वातभेदानां | ... | ... | ... | ... |
| मरुदादीनां, चुलीभेदस्य रोगास्थस्य च लक्षणम् | ... | ... | ... | १२० |
| अवशिष्टानां चुलीभेदानां, काचभेदानां | ... | ... | ... | ... |
| छलादीनां च लक्षणम् | ... | ... | ... | १२१ |

विषयः

पृष्ठम्

२३. एकशाललक्षणाध्यायस्योर्विशः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| एकशालेध्वलिन्दप्रस्तारः | ... | ... | ... | १२१ |
| षोडशानां ध्रुवाद्याख्यानामेकशालभेदानां निर्देशादि | ... | ... | ... | १२२ |
| एष्वेव भेदेष्वलिन्दविन्यासवैचित्र्येण निष्पन्नानां रम्यनन्दश्रीधरमुदिताख्यानामन्येषा- | | | | |
| मेकशालविशेषाणां लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | १२३ |
| तादृशानामेव वर्धमानाद्याख्यानां लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | १२३ |
| पूर्वमुक्तेषु ध्रुवादिषु षोडशवेश्मसु पद्दारुकल्पनया रूपान्तरं प्राप्तानामन्येषां षोडशगृहभेदानां संज्ञाः | ... | ... | ... | १२४ |
| एषामेव भेदानां शालापुरतो विन्यस्तैः पद्दारुभिरुत्प- न्नानां षोडशगृहभेदानां संज्ञाः | ... | ... | ... | १२४ |
| शालामध्यविन्यस्तैः पद्दारुभिरितेभ्य उत्पन्नानां षोडशगृहभेदानां संज्ञाः | ... | ... | ... | १२४ |
| शालान्तविन्यस्तपद्दार्वादिभिः प्रकारान्तरमाप- न्नानामपरेषां षोडशवेश्मनां संज्ञाः | ... | ... | ... | १२४ |
| अनन्तरोक्तेषु गृहेषु प्रत्येकं चतुर्दिक्षु अलि- न्दपरिष्कारेण प्रस्तानां षोडशगृहाणां संज्ञाः | ... | ... | ... | १२५ |
| एवं भेदप्रभेदैर्वर्धितानामेकशालानामाहत्य सङ्ख्याकधनं | ... | ... | ... | १२५ |
| सिद्धार्थस्थितयोर्द्विस्तिनीमहिष्याख्ययोः, दण्डगृह- स्थितयोर्गोवीछगल्याख्ययोश्च शालयोर्गन्धायथं मेलनेनात्र संभूतानां चतुर्णां गृहविशेषाणां संज्ञाः फलं च | ... | ... | ... | १२५ |

२४. द्वारपीठभित्तिमानाद्यध्यायश्चतुर्विंशः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| हलकाख्यानां पञ्चदशगृहाणां संज्ञाविशेषाः लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | १२५ |
| प्रकृताध्याय एवोपरि वक्ष्यमाणानां विषयाणां सङ्ग्रहः | ... | ... | ... | १२६ |
| पद्यानां वर्गाभिपानां स्वरूपकथनम् | ... | ... | ... | १२६ |
| तत्र सामान्यतो भिष्यलिन्दपीठद्वारोच्छ्रयादीनां प्रमाणप्रदर्शनम् | ... | ... | ... | १२७ |
| भद्रनन्दपीठसौरमपुष्कराख्यानां चतुर्णां गृहविशेषाणां लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | १२८ |

विषयः

२५. समस्तगृहाणां सङ्ख्याकथनाध्यायः पञ्चविंशः —

पृष्ठ

| | | | |
|---|-----|-----|----------|
| तत्र पञ्चशालानामाहत्य सङ्ख्या, पञ्चशालोत्पत्तिप्रकारश्च | ... | ... | १२ |
| अष्टानां पञ्चशालानां संज्ञाः | ... | ... | ... |
| प्रकारान्तरेण निष्पन्नानां तेषां संज्ञाः | ... | ... | १३ |
| विभद्रादिदशभद्रान्तानां तेषां प्रत्येकं सङ्ख्या | ... | ... | ... |
| पट्शालोत्पत्तिप्रकारः | ... | ... | १३ |
| षोडशविधानां पट्शालानां संज्ञाः लक्षणं च | ... | ... | ... |
| अखिलवर्णिनां शुभानि पट्शालानि, तद्वेदाश्च | ... | ... | ... |
| राजोचितानि विंशतिः पट्शालानि | ... | ... | १३ |
| विभद्रादिद्वादशभद्रान्तानां पट्शालानां प्रत्येकं संख्या | ... | ... | ... |
| सप्तशालनिष्पत्तिः, तद्वेदाश्च | ... | ... | १३ |
| राजयोग्यानि सप्तशालानि | ... | ... | १३३, १३४ |
| प्रकारान्तरेण निष्पन्नानि अन्यानि | ... | ... | ... |
| तादृशानि सप्तशालानि | ... | ... | १३५ |
| विभद्रादिचतुर्दशभद्रान्तानां सप्तशालानां | ... | ... | ... |
| प्रत्येकं सङ्ख्या | ... | ... | १३६ |
| अष्टशालनिष्पादनप्रकाराः | ... | ... | १३७ |
| विभद्रादिषोडशभद्रान्तनामष्टशालानां प्रत्येकं सङ्ख्या | ... | ... | ... |
| तेषां सर्वेषामेकीकृता सङ्ख्या | ... | ... | १३८ |
| नवशालनिष्पादनप्रकाराः | ... | ... | ... |
| विभद्राद्यष्टादशभद्रान्तानां नवशालानां | ... | ... | ... |
| पृथक्पृथक् सङ्ख्या | ... | ... | १३९ |
| दशशालनिष्पादनप्रकाराः | ... | ... | १४० |
| विभद्रादिविंशतिभद्रान्तानां दशशालानां | ... | ... | ... |
| पृथक्पृथक् सङ्ख्या | ... | ... | ... |
| तेषां सर्वेषामेकीकृता सङ्ख्या | ... | ... | १४१ |
| चतुर्दशशालान्तानां सर्वेषां वेदनया | ... | ... | ... |
| गृहावेदनादिना निर्दिष्टाः सङ्ख्याः | ... | ... | ... |

२६. आपादिनिर्गमाध्यायः षट्त्रिंशः —

| | | | |
|---------------------------|-----|-----|-----|
| आपादिकर्मणि गृहकान्वयिभिः | ... | ... | १४२ |
|---------------------------|-----|-----|-----|

विषयः

पृष्ठम्

| | | | |
|--|-----|-----|----------|
| प्राच्यादिदिक्षुस्तानां वेदमनामारम्भे निविद्धा माताः | ... | ... | १४३ |
| आये परिज्ञातव्ये क्षेत्रमानसाधननियमः | ... | ... | ११ |
| आयानयनप्रकारः | ... | ... | ११ |
| प्राच्यादिदिक्षुस्तानामाधानां यथाक्रममु- | | | |
| द्दिष्टा ध्वजादिसंज्ञाः, तेषां फलं च | ... | ... | ११ |
| विमादीनां प्रशस्ता आयाः | ... | ... | १४४ |
| तत्तन्निवेशनानि प्रति तत्तदायानां विनियोगः | ... | ... | ११ |
| तेष्वधमानां कचिददोषत्वकथनम् | ... | ... | ११ |
| व्ययानयनप्रकारः | ... | ... | १४५ |
| समाधिकादिभेदेन त्रिप्रकारस्य व्ययस्य यथा- | | | |
| क्रममुद्दिष्टाः पिशाचादिसंज्ञाः | ... | ... | ११ |
| अंशकानयनप्रकारः | ... | ... | ११ |
| गृहादिष्वंशकस्य मुख्यत्वव्यवस्थापनम् | ... | ... | ११ |
| अंशकत्रयस्य संज्ञाः | ... | ... | ११ |
| गृहतारास्तत्संज्ञाश्च | ... | ... | ११ |
| वर्ज्या मध्यमाश्च ताराः | ... | ... | ११ |
| त्रयाणां नक्षत्रगणानां संज्ञास्तदन्तर्भूतानि | | | |
| नक्षत्राणि च | ... | ... | ११ |
| भर्तुर्नक्षत्रगणसाम्यादिना विहितस्य गृहस्य | | | |
| शुभफलप्रदत्वकथनम् | ... | ... | १४६ |
| गृहविषयवदयचिन्तनीयानि षट् करणानि | ... | ... | ११ |
| ध्यादिभिः शुभैस्तैर्यथोत्तरं शुभकरत्वकथनम् | ... | ... | ११ |
| समायव्ययादिवेशमनां वर्जनीयत्वकथनम् | ... | ... | ११ |
| समसप्तकादीनां गृहाणां कर्तव्यत्वोपदेशः | ... | ... | ११ |
| षट्कोष्ठकादिगृहाणां वर्जनीयत्वकथनम् | ... | ... | ११ |
| गृहजीवितादिविज्ञानोपायादिकम् | ... | ... | ११ |
| मेर्वादीनि षट् छन्दांसि तद्विन्यसनप्रकारश्च | ... | ... | १४६, १४७ |
| तेभ्यो गृहमूपासङ्ग्यादिज्ञानम् | ... | ... | १४८ |

विषयः

पृष्ठम्

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| शय्याज्ञानां विधानम् | ... | ... | ... | १५५ |
| एकद्रव्यजायाः शय्यायाः त्रेष्टवं, मिश्रद्रव्यजाया | | | | |
| द्विदावीदेश तस्या निम्नत्वं च | ... | ... | ... | १५६ |
| शय्यादारुसन्धानविधिः | ... | ... | ... | ११ |
| मध्यवर्णाद्युपलक्षितस्य शयनासनस्य दुष्टत्वम् | ... | ... | ... | ११ |
| सुक्षिप्तत्वादिगुणयुक्तत्वेन तेषां निर्मितरावश्यकता | ... | ... | ... | ११ |
| निष्कुटादीनां घण्टां छिद्राणां लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | ११ |
| शयनासनद्रव्यसामान्यविधिः | ... | ... | ... | १५७ |
| आसनवत्सूयै शय्योक्तदारूणांमतिदेशः | ... | ... | ... | ११ |
| आसनाज्ञानां विधानम् | ... | ... | ... | ११ |
| तेषां द्रव्योपाधिकृतोत्तमादिता | ... | ... | ... | ११ |
| आसनालङ्काराः | ... | ... | ... | ११ |
| पादुकासङ्ग्रहादीनां मानम् | ... | ... | ... | १५८ |

३०. राजगृहाध्यापसिद्धिः —

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|----------|
| उत्तमादीनां राजवेदमनां मानम् | ... | ... | ... | ११ |
| गृह्णीजयमासादलक्षणम् | ... | ... | ... | १५९, १६० |
| गुच्छकोणमासादलक्षणम् | ... | ... | ... | १६१ |
| घोवातमासादलक्षणम् | ... | ... | ... | १६२ |
| सर्वतोषद्रमासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ११ |
| सप्तमर्दनास्यमासादलक्षणम् | ... | ... | ... | १६३ |
| राशः श्रीदार्शनिके क्षोणीविभूषणादीनि पञ्च गृहाणि | ... | ... | ... | ११ |
| अवनिशेषमासादलक्षणम् | ... | ... | ... | १६४ |
| शुक्लतिलमासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ११ |
| विनासरात्रमासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ११ |
| वीर्यपताकमासादलक्षणम् | ... | ... | ... | १६५ |
| शुक्लमण्डपमासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ११ |
| होमीधुवनमासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ११ |
| गृह्णीतिरमासादलक्षणम् | ... | ... | ... | १६६ |
| भीमिकामासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ११ |

| विषयः | पृष्ठम् |
|---|---------|
| सूर्यादिग्रहगतिप्रदर्शनपरं गोलभ्रमणम् | १७५ |
| दारवस्थ पुरुषस्यैकनाडिकयैकयोजनगमनम् | ११ |
| तालगत्यनुसारेण नृत्यन्त्या पुत्रिकया दीपे क्षीण- क्षीणतैलप्रक्षेपः | ११ |
| यन्त्रहस्तिनः प्रदीयमानमूर्तिवारिपानम् | ११ |
| यन्त्रशुक्राणां तालगत्या गाननर्तनादीनि | ११ |
| पुत्रिकाणां गजानां तुरगादीनां च ताल- गत्या बलनवर्तननर्तनादीनि | ११ |
| वापीकूपादितः क्षेत्रेषु यन्त्रेण जलानयनापन- यनवैचित्र्यम् | ११ |
| कृत्रिमाणां गजादिरूपाणां यथेच्छं निर्गमन- धावनपुद्गकरणादिकाभ्येष्टाः | ११ |
| स्वधुदिपरिकल्पितानामुक्तानामेषामन्येषां च यन्त्राणां घटनारीतिप्रदर्शनं प्रति ग्रन्थक- र्तृप्रवृत्तौ कारणम् | १७६ |
| पुरातनोक्तदिशा वक्ष्यमाणानां यन्त्राणां सु- प्रदाय बीजभूतानां भूतानां पुनः स्मारणम् | ११ |
| एतादृशविचित्रनानायन्त्रनिर्माणमावीष्यसामग्री | ११ |
| स्वनोद्धारियन्त्रद्वयघटना | १७७ |
| षट्दशरजादिस्वनोद्धारियन्त्राणां तत्त्वम् | ११ |
| अम्बरवारिविमानघटना | ११ |
| हुण्णजोषाटनाय रसयन्त्रेण सिंहनादविधा- नप्रकारः | ११ |
| दासादिपरिजनवर्गैर्भिना तत्कृत्यानां सर्वेषां व्यावर्तिर्वहणाय कल्पितस्य स्त्रीपुरुष- प्रतिमायन्त्रस्य घटना | १७८ |
| अनभिमतजनप्रवेशनिरोधनाय द्वारदेते रथा- दनीयं द्वारपातयन्त्रम् | ११ |
| भित्ति कविशत्रुधौरस्य प्रसक्तघातनाय रथादनी- | |

विषयः

पृष्ठम्

३३. अश्वशालाध्यायस्यसंक्षिप्तः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| अश्वशालानिवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | १८९ |
| अश्वशालानिर्माणे निषिद्धा वृक्षाः, भूमयश्च | . | ... | ... | १९० |
| निषिद्धदेशैर्बृक्षस्तच्छालानिर्माणे फलम् | ... | ... | ... | ११ |
| निषिद्धभूमिषु तत्तिवेदने फलम् | ... | ... | ... | ११ |
| भर्तृगृहपरिसरे तत्तिवेदने स्थाननियमाः | ... | ... | ... | १०१ |
| अश्वशालाविधानम् | ... | ... | ... | ११ |
| शालायामध्यानां स्थानकरूपना | ... | ... | ... | ११ |
| यवसंस्थानकरूपना | ... | ... | ... | ११ |
| खादनकोष्ठकरूपना | ... | ... | ... | १०२ |
| पादबन्धनक्रीलकरूपना | ... | ... | ... | ११ |
| शालानिर्माणोपपत्तिहोमादिकरणकथनम् | ... | ... | ... | ११ |
| प्रसूनु शालासंस्करणविशेषाः | ... | ... | ... | ११ |
| बहूनां तुरगाणामवस्थापननियमाः | ... | ... | ... | ११ |
| अधरक्षाधर्मानामुपकरणानां संग्रहः | ... | ... | ... | ११ |
| प्रादुगुस्तायां शालायां तुरगबन्धनस्थानम् | ... | ... | ... | १०३ |
| अधरानां प्राच्याभिमुख्येन बन्धनस्य सर्वम- | | | | |
| गृहीतुस्तथापनम् | ... | ... | ... | ११ |
| यानविवायनादिकरणे दिदनियमः | ... | ... | ... | ११ |
| दक्षिणाभिमुख्यामुत्तराभिमुख्यां च शाला- | | | | |
| यामधरन्धनस्थानादिकम् | ... | ... | ... | ११ |
| सत्तयादीनामध्यानां दक्षिणाधक्षिणामेधीनैर्दक्षि- | | | | |
| णाभिमुख्येन बन्धनस्य विधेयः | ... | ... | ... | १०४ |
| दायाधेयान्ध्याभिमुख्येन बन्धनस्य विधेयः | ... | ... | ... | १०५ |
| सत्तयां दिग्बद्धस्थाने च सट्-धनविधेयः | ... | ... | ... | ११ |
| राजानांविशेषां च बन्धने नियमा | . | ... | ... | ११ |
| मेघजलतुरगरणारिहत्याधिकधर्मादिगानां | | | | |
| स्थानानि, विविधेपकरणानि च | ... | ... | ... | ११ |
| सत्तयां च बहूनां तुरगाणां आश्रयस्थानानि | | | | |

३५. शिमान्यासविषय्यायः पञ्चविंशः —

| | | | |
|---|-----|-----|-----|
| शितान्यासविषये विदितोऽन्यत्रविभिन्नश्रुतिः | ... | ... | २०० |
| मन्त्रेष्टकालक्षणम् | ... | ... | ११ |
| वर्चनीयाः शिलाः | ... | ... | ११ |
| नन्दाविकाशतसः शितास्तदेवताश्च | ... | ... | ११ |
| वेदीप्रकल्पनम् | ... | ... | ११ |
| नन्दाप्रतिष्ठापनविधिः | ... | ... | २०१ |
| उपशिलान्यसनम् | ... | ... | २०२ |
| नन्दादीनामङ्गाः, निवेशनस्थानानि च | ... | ... | ११ |
| तासां प्रतिष्ठापनमन्त्रादिकम् | ... | ... | ११ |
| बैदिकाः शिलाचयनमन्त्राः | ... | ... | २०३ |
| विभिन्ना स्थापितानां तासां पुनश्चाकृतादिषु फलम् | ... | ... | ११ |

३६. बलिदानविध्यध्यायः पट्त्रिंशः —

| | | | |
|--------------------|-----|-----|-----|
| मण्डलकरणम् | ... | ... | २०४ |
| कलशन्यसनम् | ... | ... | ११ |
| वास्तुदेवताकल्पनम् | ... | ... | ११ |

| विषयः | पृष्ठम् |
|---------------------------------------|----------|
| अर्घ्यनिवेदनम् | २०४ |
| विश्वकर्मणो वास्तुदेवानां च पूजाविधिः | २०४, २०५ |
| शान्तिवलिकर्मादीणि वास्तवादीनि | २०६ |

३७. कीलकमूत्रपाताध्यायः सप्तत्रिंशः —

| | |
|--|-----|
| प्रशस्ताः कीलकवृक्षाः | ११ |
| विषादीनां विहिताः कीलकवृक्षाः | ११ |
| अशोकादीनां विनियोगे कचिद् विशेषः | ११ |
| तत्तद्वर्णानभिहितस्थापरो वृक्षविधिः | २०७ |
| वर्णानां कीलकप्रमाणम् | ११ |
| तेषां सूत्रविधिः | ११ |
| कीलकस्थापनप्रकारः | ११ |
| तत्र कीलकस्थानपूजा | ११ |
| वेदीकरूपनम् | ११ |
| वेद्यां ब्रह्मकुम्भस्थापनम् | २०८ |
| कीलकसंस्करणम् | ११ |
| परध्यानुपकरणपूजा | ११ |
| अभिष्कार्यम् | ११ |
| शुलग्नवरीक्षणम् | ११ |
| पुरोहितसंस्कारिकरथपदादीनां पूजा | २०९ |
| सूत्रपातमन्त्रं बलिकर्म | ११ |
| योगोक्तवस्तुलाभे कार्यो बलिविशेषः | ११ |
| विषपूजनम् | ११ |
| स्थापनाय प्रथमशहोदस्तरनियमाः | २१० |
| भूमौ प्रतिष्ठापितस्य तस्य परशुना हनने मन्त्राः | ११ |
| सहस्रमूर्तिनि स्थापयानां प्रशारणां संख्या | ११ |
| हन्यमाने तरिकम् शुभाशुमनिदिशिपञ्चक्षणम् | ११ |
| ताहनमाचननियमः | ११ |
| सर्पिण्यश्च कीलकस्य प्राच्यादिषु नमने पञ्चम् | २११ |
| रुग्मिन् वृक्षके जाते पञ्चम् | ११ |

| विषयः | पृष्ठम् |
|---|---------|
| तत्रोत्सङ्गलक्षणम् | २१५ |
| हीनबाहुकादीनां लक्षणम् | २१६ |
| आक्षणाद्यावासस्थानकल्पनेषु विशेषविधिः | ११ |
| वर्णानामुत्तमा भूमिकासंख्या | ११ |
| तेषां गृहोर्ध्वप्रमाणम् | २१७ |
| देवादिविषये विशेषविधिः | ११ |
| तत्तद्वर्णानामवरा भूमिकासंख्या | ११ |
| उत्कृष्टस्य वास्तुशरस्य गुणाः | ११ |
| द्वाररूपनसम्बद्धा नियमाः | २१८ |
| स्थ्यादिमिह्वारवेधे फलम् | २१९ |
| मित्तदेहाख्यस्य वास्तुनो लक्षणं | ११ |
| पूर्वादिद्वाराणां निवेशनस्थानानि | ११ |
| द्वारेष्वविति तस्थाने विनिवेशितेषु फलम् | ११ |

४०. पीठमानाध्यायधत्वारिहः —

उत्तमाधममध्यमानां पीठानामुच्चारणः, विष्णवा-

| | |
|----------------------------------|-----|
| दिषु तद्विनिर्णयध | २२० |
| मनुष्यवास्तुपीठानां सामान्यविधिः | ११ |
| विषादिषु विषये पीठोत्प्रेषाः | २२१ |
| तेष्वेव प्रकारान्तरेण पीठविभागः | ११ |

४१. नवविध्यध्याय एतत्त्वारिहः —

| | |
|---|-----|
| विंशतिधयगुणाः | ११ |
| तद्विपरीताध्ययदोषा अपि विंशतिरिति कथनम् | २२२ |
| दक्षिणपश्चिमादिगुणानां बहिर्मुखत्वेन विच- | |
| रने फलं | ११ |
| कुम्भेषु दक्षिणादिषु फलम् | ११ |
| मार्गदक्षिणादिकर्णानां बहिर्मुखत्वेन फलं | ११ |
| फलम् | ११ |
| गर्भवास्तुषु फलनेन विंशतीकरणे न सन्निवेशः | ११ |
| इहादन्त्यव्यवस्था | ११ |

| विषयः | पृष्ठम् |
|---|---------|
| तद्वज्रे ग्रामे सति फलम् | २३२ |
| दिगुत्थिते गृहोत्थिते च तस्मिन् फलमाजः | ११ |
| इह सर्वनिमित्तेषु शुभाशुभानां फलानां | |
| कालनियमः | ११ |
| वास्तुनि पुराणत्वव्यपदेशस्य कालः | ११ |
| नवकर्मणि निष्ठिते तुम्बिकादीनां भग्ने फलम् | ११ |
| सुमाशुण्डकानुपूर्वमुण्डगोधानागवाशास्त्रानां | |
| गृहद्रव्याणां भग्ने फलम् | २३३ |
| कपाटस्यागिलापार्थस्य तौरणस्य वास्तुमध्यस्य | |
| सोपानस्य वेदिकायाः गवाक्षस्य पट्टस्त- | |
| म्भस्य च विनाशे फलम् | ११ |
| गजशुण्डायाः कपोताख्याः श्यपनीपट्टिकाया | |
| विट्कस्य तुडायाः शालास्तम्भस्य स्त- | |
| म्भशीर्षादेभ्यः भग्ने फलम् | ११ |
| प्रतिमोकमग्नवाहिन्याकाशतलकगतिच्छन्नस- | |
| सादमण्डलयलभीनां भग्ने फलम् | २३४ |
| मन्थीने विलीने विनष्टे च प्रासादे फलम् | ११ |
| पूर्वोक्तेषु गृहावयवेषु स्निग्धत्वादिगुणवि- | |
| शिष्टेषु फलम् | ११ |
| कर्णिकाभ्यन्तरशृङ्गाशालापाददानौ फलम् | ११ |

४४. श्यपनिलक्षणाध्यायधनुषत्वारिणः —

| | |
|---|-----|
| श्यपनेर्देशणम् | २३५ |
| वास्तुनास्त्रसाष्टाङ्गानि | ११ |
| श्यपनेः कृतवविशेषाः | ११ |
| साष्टवविशेष प्रयोगः श्यपनेर्षातः | ११ |
| अविदुषः श्यपनेर्निन्दा | ११ |
| केचनसामर्थ्य केचनकर्मण्य वा तस्य प्रदो- | |
| मकादे मन्त्रदत्तानां शेषाः | ११ |
| कर्मविद् श्यपनेर्देशणम् | ११ |

| विषयः | पृष्ठम् |
|--|---------|
| तद्भङ्गे ग्रामे सति फलम् | २३२ |
| दिगुत्थिते गृहोत्थिते च तस्मिन् फलभाजः | ११ |
| इह सर्वनिमित्तेषु शुभाशुमानां फलानां | |
| कालनियमः | ११ |
| वास्तुनि पुराणत्वव्यपदेशस्य कालः | ११ |
| नवकर्मणि निष्ठिते तुम्बिकादीनां भङ्गे फलम् | ११ |
| सुमामुण्डकानुपूर्वमुण्डगोधानागपाशाख्यानां | |
| गृहद्रव्याणां भङ्गे फलम् | २३३ |
| कपाटस्वार्गलपार्श्वस्य तोरणस्य वास्तुमध्यस्य | |
| सोपानस्य वेदिकायाः गवाक्षस्य पट्टस्त- | |
| म्भस्य च विनाशे फलम् | ११ |
| गजशुण्डायाः कपोताख्याः स्यपनीपट्टिकाया | |
| विटङ्कस्य तुल्यायाः शालास्तम्भस्य स्त- | |
| म्भशीर्षादेश्च भङ्गे फलम् | ११ |
| प्रतिमोकभङ्गवाहिण्याकाशतलकभृतिच्छन्नाना- | |
| सादमण्डलबलमीनां भङ्गे फलम् | २३४ |
| मन्त्रीने विलीने विनष्टे च मासादे फलम् | ११ |
| पूर्वोक्तेषु गृहावयवेषु खिण्णत्वादियुगवि- | |
| शिष्टेषु फलम् | ११ |
| कर्षिकाभ्यन्तरशृणाशालापादद्वानी फलम् | ११ |

४४. स्वपनिलक्षणाध्यायधनुस्तत्कारिणः —

| | |
|---|-----|
| स्वपनेऽक्षणम् | २३५ |
| वास्तुशास्त्रस्याष्टाङ्गानि | ११ |
| स्वपनेः कृत्यविशेषाः | ११ |
| शास्त्रविशेष मन्त्रेणः स्वपनेर्पातः | ११ |
| अविदुषः स्वपनेर्निन्दा | ११ |
| केचनशास्त्रज्ञस्य केचनकर्मज्ञस्य वा तस्य मन्त्रो- | |
| गच्छति मन्त्रमदाना दोषाः | ११ |
| कर्मविदः स्वपनेर्देशवत् | ११ |

शास्त्रकर्मसामर्थ्ये विद्यमानेऽपि प्रज्ञाभावे तस्य

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| सम्भाव्यमाना दोषाः | ... | ... | ... | २३५ |
| प्रज्ञावत एव तस्य सर्वकर्मनिर्वहणक्षमत्वस्थापनम् | ... | ... | ... | २३६ |
| सर्वेषु स्थपतिगुणेषु सत्स्वपि शीलामावे कर्म- | | | | |
| वैकल्यस्य विपरीतफलोपनमनस्य च निरूपणम् | ... | ... | ... | ११ |
| आलेख्याद्यष्टविधकर्मविज्ञानस्याप्यावश्यकता | ... | ... | ... | ११ |

४५. अष्टाङ्गलक्षणाध्यायः पञ्चचत्वारिंशः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| स्थापत्याष्टाङ्गविवरणम् | ... | ... | ... | २३७ |
| नृपालस्थपतेर्गुणाः | ... | ... | ... | ११ |
| अङ्गेषु सप्तमस्य यज्ञशालामानस्य प्रयोगः | ... | ... | ... | ११ |
| तत्र यज्ञशालानिवेशनविधिः | ... | ... | ... | ११ |
| यजमानकुटीप्रमाणादिकम् | ... | ... | ... | २३८ |
| प्राग्बंशपरिकल्पनम् | ... | ... | ... | ११ |
| प्रक्रमनिवेशनविधिः | ... | ... | ... | ११ |
| वेदीकल्पनम् | ... | ... | ... | ११ |
| होमस्थानकल्पनम् | ... | ... | ... | ११ |
| यजमानस्थानकल्पनम् | ... | ... | ... | ११ |
| कोटिहोमलक्षहोमस्थानादि | ... | ... | ... | ११ |
| सर्वाङ्गेषु याज्ञिकाङ्गस्य प्राशस्त्यम् | ... | ... | ... | २३९ |
| यज्ञभूमिमापने विहितं वास्तुपदम् | ... | ... | ... | ११ |
| अष्टमस्य राजशिविरनिवेशाद्यस्याङ्गस्य निरूपणम् | ... | ... | ... | ११ |
| तत्र शिविराणामाकृतिविशेषाः | ... | ... | ... | ११ |
| शिविरद्वारसङ्ख्या | ... | ... | ... | ११ |
| स्थ्याप्रमाणम् | ... | ... | ... | ११ |
| नरपतेः स्थानम् | ... | ... | ... | ११ |
| मन्त्रिपुरोदितबलाध्यक्षान्तः— | | | | |
| पुरभाण्डागाराणां स्थानानि | ... | ... | ... | ११ |
| अधानां दन्तिनां च स्थानानि | ... | ... | ... | ११ |

| विषयः | पृष्ठम् |
|---|---------|
| परिस्त्राप्रमाणम् | २३९ |
| शिविस्त्राप्रमाणोचितं वास्तुपदम् | ३३ |
| अष्टमांशेऽवशिष्टस्य दुर्गकर्मणो निरूपणप्रारम्भः | ३३ |
| तत्र पदविधानां दुर्गाणां संज्ञाः | २४० |
| सेषु मन्त्रस्ते दुर्गम् | ३३ |
| दुर्गस्थानविभाजनार्हं वास्तुपदम् | ३३ |
| हर्म्यप्रमाणादिकम् | ३३ |
| स्थोपरस्थाद्वाराणां प्रमाणानि | ३३ |
| दुर्गेश्वरमासादानां स्थानानि | ३३ |
| दुर्गरक्षार्थं स्थाप्यानां वीराणां लक्षणम् | ३३ |
| अन्तःपुरादीनामपि तत्र निवेगनीयत्वकथनम् | ३३ |

४६. तारणमहगादियान्निकाध्यायः पञ्चमोऽर्चिः —

| | |
|---|-----|
| तारणमहगादियुक्तौ दोषाः, तत्प्रशमनविधिश्च | २४१ |
| भासादं गृहं वा प्रविष्टाः मन्त्रो दोषपूचकश्च- | |
| तुर्विधाः कपोताः, उत्तरेवेष्टकत्वं च | २४२ |
| कपोतमवेशशेषपशमनार्थो विधिः | २४३ |

४७. वेदीलक्षणाध्यायः सप्तमोऽर्चिः —

| | |
|--|-----|
| चतुर्विधानां वेदीनां संज्ञाः तद्विनियोगश्च | २४४ |
| तत्र सर्वतोमटानक्षणम् | ३३ |
| धीपरीलक्षणम् | ३३ |
| पद्मिनीलक्षणम् | ३३ |
| चतुरथाङ्गलक्षणम् | ३३ |
| मवेवेदीगता विज्ञेयाः | ३३ |
| तादृशेषाण्यनविज्ञेयाः | ३३ |
| अनविज्ञेयसमविधिः | २४५ |
| अनविज्ञेयसमविधिः | ३३ |

४८. दृशोपनिरूपणाध्यायोऽष्टमोऽर्चिः —

| | |
|-------------|----|
| भुवनेष्टकम् | ३३ |
|-------------|----|

विषयः

पृष्ठ

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| गृहविधौ वर्ज्या भूमयः | ... | ... | ... | २४ |
| चैत्रादिमासेषु निर्मितानां गृहाणां फलम् | ... | ... | ... | |
| कीलादीनां स्थानम् | ... | ... | ... | |
| तत्तद्विद्मूढेषु वेश्मसु फलम् | ... | ... | ... | |
| पुरे मासादादीनां निवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | |
| वलितादीनि चतुर्विधानि दुष्टगृहाणि | ... | ... | ... | |
| तेषां लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | |
| मूपकोत्करादिभिर्दुष्टानां भुवां वर्जनीयत्वकथनम् | ... | ... | ... | |
| तासु वास्तुनिवेशने फलम् | ... | ... | ... | |
| वेश्मस्वनिष्ठो मुञ्जायामः | ... | ... | ... | |
| मानुषशालायां मृषालिन्दयोरावश्यकता, देवा- | | | | |
| गारशालायां तदभावश्च | ... | ... | ... | २४७ |
| स्तादकाक्ष्यस्य वेश्मनो लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | |
| सगन्ध्यादिकं मर्मदोषचतुष्टयम् | ... | ... | ... | |
| टिप्पणात्म्यस्य वास्तवज्ञस्य लक्षणं फलं च | ... | ... | ... | |
| स्वगृहद्वयमध्येन वर्त्मनो निर्विदि फलम् | ... | ... | ... | |
| मार्गविषयस्य स्वरूपं फलं च | ... | ... | ... | |
| उत्पन्नादीनां चतुर्णां प्रवेशानां स्वरूपं फलं च | ... | ... | ... | |
| शालामेदस्य स्वरूपं फलं च | ... | ... | ... | २४८ |
| विद्योदितगृहस्य स्वरूपं फलं च | ... | ... | ... | |
| शीमाशालाभिषेपे मासाशशिषु फलम् | ... | ... | ... | |
| गर्भे चन्द्रावरोक्षिताया निषेधः | ... | ... | ... | |
| गवाक्षके मृषानिवेशनस्यावश्यकता | ... | ... | ... | |
| गण्डकुक्षिगृहकक्ष्यानामज्ञानां गृहान् प्रवेशने फलम् | ... | ... | ... | |
| गण्डादीनां स्वरूपनिर्देशः | ... | ... | ... | |
| स्वदिन्दनां द्वाराणां निषेधे फलम् | ... | ... | ... | |
| गृहधोषादीनां निषेधे फलम् | ... | ... | ... | |
| गृहाणां दक्षिणोत्तरादीनां चरने फलम् | ... | ... | ... | २४९ |
| शालादिषु च दक्षिणोत्तरादिनिर्देशे फलम् | ... | ... | ... | |

| विषयः | पृष्ठम् |
|--|---------|
| चीयमानानां प्राग्दक्षिणादिकर्णानां बाहिर्गमने फलम् | २४९ |
| मल्लिकाकृतिमन्दिरस्य लक्षणम् | ११ |
| तत्रायव्ययव्यवस्था | ११ |
| संक्षिप्तगृहस्य लक्षणं फलं च | ११ |
| मृदङ्गाकृतिगृहस्य लक्षणं फलं च | ११ |
| मृदुमध्यगृहस्य लक्षणं फलं च | २५० |
| कर्णेषु विषमोन्नतेषु फलम् | ११ |
| गृहमध्ये द्वारकरणनिषेधः | ११ |
| द्वारवेधेऽनिष्टद्रव्ययोजने च फलम् | ११ |
| नवेन पुराणयोजने फलम् | ११ |
| मिश्रजतिद्रव्योत्प्रेषु गृहादिषु फलम् | ११ |
| तत्तत्स्थानेष्वधिवास्य प्रतिष्ठितानां पुनश्चालने फलम् | ११ |
| अन्यवास्तुच्युतस्यान्यवास्तौ योजने फलम् | ११ |
| देवदग्धेन द्रव्येण गृहकरणे फलम् | ११ |
| सूर्यद्रुमध्वजच्छायाणां गृहद्वारातिक्रमणे फलम् | ११ |
| ध्वजच्छायायाः स्वरूपनिर्देशः | ११ |
| निषिद्धा गृहताराः | ११ |
| निमोन्नतत्वादिदोषपुक्तस्याग्रतारद्वारस्य करणे फलम् | ११ |
| नागदन्तादीनां द्वारमध्ये निवेशनस्य, तेषां विषमस्थितेभ्य निषेधः | २५१ |
| गृहे इतिहासाद्युक्तवृत्तान्तप्रतिरूपणस्य निषेधः | ११ |
| इन्द्रजालवृत्त्यानां, मिथ्याकृतानां, भीषणानां च प्रतिरूपणस्य निषेधः | ११ |
| स्वयमुद्घाटनं पिधानं च कुर्वतः, सशब्दस्य, पादशीतलस्य च, द्वारस्य निवेशने फलम् | ... |
| अधोगुप्तत्वेन प्रत्यग्याम्याननत्वेन च निवेशने फलम् | ... |

| | | | |
|--|-----|-----|-----|
| स्तम्भद्वारस्य भित्तिश्च वैपरीत्येन निवेशनस्य निषेधः | ... | ... | २५१ |
| उपर्युपरिभूमिकाकरणे, तत्र क्षणकल्पाय च | | | |
| नियमाः | ... | ... | ११ |
| शालाया निम्नत्वे अलिन्दस्याधिक्ये च फलम् | ... | ... | ११ |
| उपरिभूमिषु द्वारनियमाः | ... | ... | ११ |
| आध्मातादिद्वाराणां निवेशने फलम् | ... | ... | ११ |
| चत्वररध्यादिभिर्द्वारवेधे फलम् | ... | ... | २५२ |
| हीनाधिकप्रमाणस्य द्वारस्य निवेशने फलम् | ... | ... | ११ |
| कृशादिद्वाराणां निवेशने फलम् | ... | ... | ११ |
| अन्तर्द्वारादुच्चस्य बहिर्द्वारस्य, विशङ्कटस्य च | | | |
| द्वारस्य निवेशने फलम् | ... | ... | ११ |
| षट्सन्धी द्वारमध्ये निवेशिते फलम् | ... | ... | ११ |
| तुलायामुपतुलायां च द्वारे तिर्यङ्निवेशितायां | | | |
| फलम् | ... | ... | २५३ |
| जयन्त्यामनुवंशमनुपात्तायां फलम् | ... | ... | ११ |
| ललाटिकास्यायास्तुलायाः स्वरूपं फलं च | ... | ... | ११ |
| मञ्जोपदीतिन्यास्यायास्तस्याः स्वरूपं | | | |
| फलं च | ... | ... | ११ |
| भानुगाया मध्यवेधे फलम् | ... | ... | ११ |
| अस्तिभानुगामैर्भित्तिभेदकरणस्य निषेधः | ... | ... | ११ |
| भारतरे मन्तरदन्यस्ते फलम् | ... | ... | ११ |
| ज्योतिष्योर्गुणयोर्भागे मन्त्रेभारपटवतगुणौ | | | |
| भोजने फलम् | ... | ... | ११ |
| अनुदत्तमभिय भोजने शयने च कृते फलम् | ... | ... | ११ |
| भारतदेशे तिर्यङ्गवे शयनगात्रिन्यग्ने च | | | |
| फलम् | ... | ... | ११ |
| वृद्धिभारतदेशे वृद्धिभारतदेशे तिर्यङ्गवे | ... | ... | ११ |
| भारतदेशे वृद्धिभारतदेशे तिर्यङ्गवे | ... | ... | ११ |
| अनुदत्तमभिय भोजने शयने च कृते फलम् | ... | ... | ११ |

विषयः

पृष्ठम्

| | | | |
|---|-----|-----|-----|
| जीर्णपुणक्षतादीनां दारुणां वर्जनीयत्वकथनम् ... | ... | ... | २५४ |
| गृहकर्मणि वर्जनीया वृक्षाः ... | ... | ... | ११ |
| द्वारैर्मोचिभिश्च मर्मपीडायां फलम् ... | ... | ... | ११ |
| कायसन्धिपालादिषु मर्मस्थानस्थितेषु फलम् ... | ... | ... | ११ |
| स्तम्भादिभिर्द्वारमध्ये निपीडिते फलम् ... | ... | ... | ११ |
| बद्धदारुकाणां द्वाराणां च मध्येषु कर्णद्रव्या- दिभिर्विद्धेषु फलम् ... | ... | ... | २५५ |
| नागदन्तादिभिः शय्यावेधे फलम् ... | ... | ... | ११ |
| गृहमध्यभागे द्वारे निवेशिते फलम् ... | ... | ... | ११ |
| द्रव्येण महामर्मपीडायां फलम् ... | ... | ... | ११ |
| गृहस्य शून्यतापादका दोषाः ... | ... | ... | ११ |
| विभागपदहीनेषु वात्स्वादिषु फलम् ... | ... | ... | ११ |
| पुरमासादवेश्मनां परिसरे वर्जनीया वृक्षाः ... | ... | ... | ११ |
| द्रव्यायामोच्छ्रायविस्ताराणाभाधिक्ये फलम् ... | ... | ... | ११ |
| घातितेषु पातितेषु च स्तम्भद्वारादिषु फलम् ... | ... | ... | ११ |
| भर्तुरनिष्टफलदायिनो गृहस्य सामान्यलक्षणम् ... | ... | ... | २५६ |

४९. रुचकादिमासादलक्षणाध्याय एकोनपञ्चाशः —

| | | | |
|---|-----|-----|-----|
| पुरा व्रजणा सृष्टानि पञ्च विमानानि ... | ... | ... | ११ |
| तेषां विनियोगः ... | ... | ... | २५७ |
| सूर्योदीनामुपयोगायान्यान्यपि बहूनि विमानानि स कल्पयामासेति वचनम् ... | ... | ... | ११ |
| ब्रह्ममृष्टानां वैराजादीनां पद्यानां विमानविशे- षाणामाकृतिः ... | ... | ... | ११ |
| वैराजभेदानां संज्ञाः ... | ... | ... | ११ |
| कैलासभेदानां संज्ञाः ... | ... | ... | ११ |
| पुष्करकमणिकत्रिविष्टपाख्यविमानत्रयभेदानां संज्ञाः ... | ... | ... | २५८ |
| एषामुत्तमाचममध्यमानि मानानि ... | ... | ... | ११ |
| अथ चतुर्विंशतेर्वैराजभेदानां लक्षणप्रस्तावः ... | ... | ... | ११ |

विषयः

५४५

रुचकलक्षणम्

...

...

...

२५८

कूटलक्षणम्

...

...

...

२५९

पञ्जरलक्षणम्

...

...

...

११

जक्षणम्

...

...

...

११

द्वलक्षणम्

...

...

...

११

दीपलक्षणम्

...

...

...

११

गस्त्यलक्षणम्

...

...

...

११

यूथपलक्षणम्

...

...

...

२६०

गवर्तलक्षणम्

...

...

...

११

तंसलक्षणम्

...

...

...

२६१

स्तकलक्षणम्

...

...

...

११

तेभूपलक्षणम्

...

...

...

२६२

मलक्षणम्

...

...

...

२६३

अपनन्दसीतरममशापिमाभिधानां चतुर्णां

विमानानां लक्षणम्

...

...

...

२६४

मिश्रद्विजालीयकुपेरबमुपाधराणां लक्षणम्

...

...

...

२६५

तोमद्रविमानास्वमुक्तकोमानां लक्षणम्

...

...

...

११

१ दशानां केनासविमानभेदानां लक्षणमस्तावः

...

...

...

२६६

बलमदुन्दुभिषान्तरघटान्तचतुर्गुणमण्डू-

काक्ष्यानां समानां विमानानां लक्षणम्

...

...

...

११

मिश्रानां कूर्मपाक्ष्यानां त्रयाणां लक्षणम्

...

...

...

२६७

२ दशानां पुण्ड्रविमानभेदानां लक्षणमस्तावः

...

...

...

११

३ भवविज्ञातमायुःपाक्ष्यानां लक्षणम्

...

...

...

११

४ विविधपूरदुग्धसातद्विज्ञातपूरदशामन-

विश्वपाक्ष्यानां समानां लक्षणम्

...

...

...

२६८

५ पाक्ष्यानां देवदेव सतिरेतान्तरवर्तनम्

...

...

...

२६९

६ दशानां सतिरेतान्तरां लक्षणमस्तावः

...

...

...

२७०

७ सतिरेतान्तरपूरदशामन-
विज्ञातपूरदशामन-
विज्ञातपूरदशामन-

विज्ञातपूरदशामन-

...

...

...

११

| विषयः | पृष्ठम् |
|--|---------|
| निषेवकनिषेधसिद्धसुप्रमाद्व्यानां लक्षणम् | २७१ |
| लोचनोत्सवविमानलक्षणम् | २७२ |
| अथ दशानां त्रिविष्टपविमानभेदानां लक्षण- | |
| प्रस्तावः | ११ |
| तत्र वज्रकनन्दनशङ्कुवामनमेखललयमहा- | |
| पद्मानां लक्षणम् | ११ |
| हंसविमानलक्षणम् | २७३ |
| व्योमचन्द्रोदयविमानयोर्लक्षणम् | ११ |

५०. प्रासादशुभाशुभलक्षणाध्यायः पञ्चाशः—

| | |
|--|-----|
| शुभकराणां प्रासादानां लक्षणम् | ११ |
| तद्विपरीतलक्षणेपु प्रासादेपु प्रत्येकं फलानि | २७४ |

५१. आयतननिवेशाध्याय एकपञ्चाशः—

| | |
|---|-----|
| उत्तमादिभेदेन त्रिधा भिन्नस्य नृपायतनस्य | |
| मानं विन्यासश्च | २७५ |
| नृपानुजीविनृपपत्नीगृहाणां देवविष्ण्यानां च | |
| दिग्भागादिकम् | ११ |
| मन्त्रिसेनानीप्रतीहारपुरोषःप्रासादानां | |
| दिग्भागादिकम् | ११ |
| राजमातृस्वस्रमातुलकुमारप्रासादानां दिग्भा- | |
| गादिकम् | ११ |
| द्विजमुख्यसामन्तकुञ्जरारोहमटपौरजनगृहाणां | |
| दिग्भागादिकम् | ११ |
| सर्वेषां गृहाणां सामान्यविधिः | २७६ |
| इतरेषां गृहाणां भूषणादिभ्यो राजगृहेः साम्य- | |
| माधिक्यं च परिहरेदिति वचनम् | ११ |
| अवशिष्टस्य भूभागस्य विनियोगः | ११ |

५२. प्रासादनात्यध्यायो द्विपञ्चाशः—

| | |
|----------------------------------|-----|
| वैराजविमानसामान्यविधिः | २७७ |
| वैराजविमानप्रभवाः प्रासादविरोधाः | ११ |

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| धाविषा अष्टौ शिखरोत्तमाः प्रासादाः | ... | ... | ... | २७८ |
| राजजन्मनां सर्वेषामेषां प्रासादानां सर्वकाम- | | | | |
| फलप्रदत्वकथनम् | ... | ... | ... | ११ |
| प्वन्यजातिदूषितेषु फलम् | ... | ... | ... | ११ |

५३. जघन्यवास्तुद्वाराध्यायस्त्रिपञ्चाशः—

| | | | | |
|-------------------------------------|-----|-----|-----|-----|
| जघन्यवास्तुद्वारममाणम् | ... | ... | ... | २७९ |
| त्र पेद्यापिण्डादीनां मानम् | ... | ... | ... | ११ |
| स्पशाखाखल्वशाखातुङ्गशाखानां मानम् | ... | ... | ... | ११ |
| ज्ञाया बाह्यतः क्रियमाणानां शाखानां | | | | |
| मानम् | ... | ... | ... | ११ |
| लोदयमण्टपादीनां मानम् | ... | ... | ... | २८० |
| उत्तममध्यमयोः प्रासादयोस्तलमानम् | ... | ... | ... | ११ |
| ह्मिकादिषु हीनाधिकमानकल्पननिषेधः | ... | ... | ... | ११ |

५४. प्रासादद्वारमानाद्यध्यायश्चतुष्पञ्चाशः—

| | | | | |
|-------------------|-----|-----|-----|-----|
| प्रासादद्वारमानम् | ... | ... | ... | ११ |
| पेद्यामानम् | ... | ... | ... | ११ |
| शाखामानम् | ... | ... | ... | ११ |
| उत्तराङ्गमानम् | ... | ... | ... | ११ |
| रूपशाखामानम् | ... | ... | ... | ११ |
| पीठबन्धमानम् | ... | ... | ... | ११ |
| मरणमानम् | ... | ... | ... | ११ |
| कपोतमानम् | ... | ... | ... | २८१ |
| रथिकामानम् | ... | ... | ... | ११ |
| द्वारभूषा | ... | ... | ... | ११ |
| कपोतादिविधानम् | ... | ... | ... | ११ |
| परिमण्डलीकरणम् | ... | ... | ... | ११ |
| पद्मपत्रिकामानम् | ... | ... | ... | ११ |
| रसनामानम् | ... | ... | ... | ११ |
| जहामानम् | ... | ... | ... | ११ |

| विषयः | पृष्ठम् |
|---|---------|
| खरुवशाखामानम् | २८१ |
| चाक्षशाखामानम् | ११ |
| द्वारशाखानां सङ्ख्या | ११ |
| शाखानां निर्गमविस्तारयोर्मानम् | ११ |
| पिण्डोदुम्बरमानम् | २८२ |
| तलन्यासमानम् | ११ |
| सिंहमुस्तमानम् | ११ |
| त्रिविधं षट्पिण्डमानम् | ११ |
| ह्यरग्रहणमानम् | ११ |
| कुम्भिकोत्कालकयोर्निवेशनप्रकारः | ११ |
| उत्तरपट्टतद्दीरयोर्मानम् | ११ |
| तदूर्ध्वभागपरिष्करणम् | ११ |
| सप्तानां लुमानां संज्ञाः | ११ |
| सत्र तुम्बिनीनिष्पादनप्रकारः | २८२ |
| अन्यासां लुमानां निष्पादनप्रकारः | २८३ |
| पञ्चविंशतिर्वितानानां नामानि | ११ |
| कोलदीनां नागबन्धान्तानां सप्तानां | |
| वितानानां रूपनिर्माणप्रकारः | २८४ |
| पुष्पकादीनां विद्युन्मन्दारकान्तानां तेषां रूप- | |
| निर्माणप्रकारः | २८५ |
| दशच्छापोदयाः | २८६ |
| सप्त षट्छापोदयाः | ११ |
| छापक्षेत्रानुसारेण कल्प्यानि लुमामानानि | ११ |
| छापलुमानां गण्डिकाच्छेदादिकम् | २८७ |
| उत्तमादिप्रासादानां छापनिर्गमाः | २८८ |
| सिद्धकर्णलक्षणम् | २८८-२९० |



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥

मन्त्रः ।

ममहृदयस्यैव भूतं हृदयं निजस्य ॥ ७ ॥

भगवद्भक्त्येवैव तत्तुना तत्तुनेतया ।

नमः श्री गुरुभ्यो नमः ॥ ८ ॥

नृपतन्त्रादिनि धेहिःप्राप्यतिगर्भादभौ ७५४ ।

भारतभद्रनरुद्वर्गः प्रद्योतनं प्रद्योतनं च ॥ ९ ॥

नगार्दनपय मिश्रः३निगम्भीरया निग ।

कुर्यन्मयानरंम्यानां यथाश्चनितान्द्रुतम् ॥ १० ॥

स्वयम्भिर जगतां नाथ ! जगतांऽधिपतिः कृतः ।

स्थानिनानि च भूतानि मत्संगपरि वने मय ॥ २२ ॥

तैत्तिरीयं मय विश्वेन ! वृद्धाग्निः वनराजिनी ।

सर्पाकरोवि पापाणामाप्तावस्थाः क्रियाधुना ॥ १२ ॥

प्यस्तानि धनुषा तान्द गौर्धून्नेयं पत्यायिता ।

दोग्धुकापेऽष्टमप्येनां निगमन्यगपं मदीम् ॥ १३ ॥

यत्रकापि भयान्तयेषा तत्र मागेर पदगनि ।

अपश्यन्त्यन्यतग्राणमदुग्धा न्यामुपस्थिता । १४ ॥

अस्यां वर्णाश्रमस्थानविभागश्च विशास्यते ।

इयं च दुर्गमानेकसोपीथिरकुल्लाकुल्ला ॥ १५ ॥

त्रिधास्येऽस्यां कथं त्वेतादिति म गाङ्गत मनः ।
१. ३५

पृथुनत्यथ विज्ञप्ता भगवानब्जसम्भवः ॥ १६ ॥

उवाच वधियन्त्रेण कृत्वा भूमिं च निभयाम् ।
 इदं गच्छ गच्छिष्यसि ! विधियन्त्रेण गच्छिष्यसि ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

यद्य तै स्यादभिप्रेतं स्थानाद्विविनिवेशनम् ॥ १०

14. A. $\frac{1}{2}$ B. $\frac{1}{3}$ C. $\frac{1}{4}$ D. $\frac{1}{5}$ E. $\frac{1}{6}$

तदप्यत्रिदशाचार्यः सर्वसिद्धिमवर्तकः ।

सुतः प्रभासस्य विभोः स्वस्तीयश्च बृहस्पतेः ॥ १९ ॥

विश्वातिशायिर्धृतिः सर्वं विश्वकर्मा करिष्यति ।

राजन्नसौ महेन्द्रस्य विदधावमरावतीम् ॥ २० ॥

अन्या अप्यमुना रम्याः पुर्यो लोकभृतां कृताः ।

त्वया क्षेत्रीकृतां मूर्तिं दृष्ट्वा साद्रिद्रुमामसौ ॥ २१ ॥

सन्निवेशान् पुरग्रामनगराणां विधास्यति ।

तद् गच्छ वत्स ! लोकानामितस्त्वं हितकाम्यया ॥ २२ ॥

भयोज्झिता त्वमप्युर्वि ! पृथोः प्रियकरी भव ।

काले स्मृतः स्मृतः पुण्यो राज्ञः प्रियचिकीर्षया ॥ २३ ॥

त्वमप्यखिलमेवैतद् विश्वकर्म(न्) ! करिष्यसि ।

इत्युक्त्वा गमनमुपेयुषि प्रजेशे स्वं स्थानं सितिभुजि चाश्रिते मुदोर्व्याम् ।

प्रालेयावनिभूतमाजगाम खेळत्सिद्धस्त्रीपरिगतमाशु विश्वकर्मा ॥ २४ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि चास्तुशास्त्रे

महासमागमनो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ विश्वकर्मणः पुत्रसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ पृष्टे हिमगिरेः शशाङ्गशुचिरोचिपि ।

सिद्धामस्वभूभुक्तमणिमञ्जुगुहागृहे ॥ १ ॥

विस्तीर्णासनमासीनं सर्वज्ञमथ संस्मृताः ।

आययुर्विश्वकर्माणं चत्वारो मानसाः सुताः ॥ २ ॥

जयो विजयसिद्धार्थो चतुर्थश्चापराजितः ।

तमुपागम्य शिरसा नेमुः प्राञ्जलयो मुनिम् ॥ ३ ॥

१. 'भुतप्रभावश्च विभोः प्रीतये ते बृहस्पतिः', २. 'पुराणामपि चान्येषां पु',
३. 'तत्राप्य', ४. 'विश्वकर्मा करिष्यति' क पाठः । ५. 'पृथिव्यास्त्वानां शास्त्रसंख्या,
(१) प्र' ख पाठः ।

‘वास्तु ब्रह्मा स(पर्याप्तार्जो)र्दा विश्वमप्यसिलं तथा ॥ ४ ॥

धर्म्यं कर्म तदा श्रेष्ठ्यप्राप्तये लोकावनांनि च ।

व्यवस्थाप्य चकारैष लोकपालः(श्रुत्य) कल्पनाम् ॥ ५ ॥

अहमप्यमुना विश्वनाथेनाम्बुजजन्मना ।

लोकानां सन्निधासार्थमादिष्टोऽस्मि स्वयम्भुवा ॥ ६ ॥

रम्याणि नगराद्यानसभास्थानान्यथा मया ।

सुरामुरोर्गादीनां निर्मितान्यात्मबुद्धितः ॥ ७ ॥

गत्वोर्वी * वेन्यनृपतेर्वत्साः ! प्रियचिकीर्षया ।

नगरग्रामखेटादीन् करिष्यामि पृथक् पृथक् ॥ ८ ॥

कार्ये त्वमुष्मिन् सकले मम विश्वसृजापिंते ।

सम्यग्साहायकैर्भाव्यं भवद्भिरिति नः स्थितम् ॥ ९ ॥

यतस्त्रिभुवनलोकप्रद्योतस्याब्जिनीपतेः ।

सहायतां तमश्छेदे कलयन्ति मरीचयः ॥ १० ॥

स्वयं करिष्येऽहमथो निवासाय पृथोः पुरीम् ।

विचित्रनगरग्रामखेटांमतिमनोहराम् ॥ ११ ॥

भवन्तः पुनरागत्य चत्वारोऽपि चतुर्दिशम् ।

तांस्तान् निवेशान् कुर्वन्तु पृथग्जनकृताश्रयान् ॥ १२ ॥

अन्तरेष्वध्वपाथोभिर्शैलानां सरितां तथा ।

विधातव्यानि दुर्गाणि नृपाणां भयशान्तये ॥ १३ ॥

वर्णप्रकृतिवेष्मानि संस्थानानि च लक्ष्मभिः ।

विधेयानि प्रतिग्रामं प्रतिपूः प्रतिपत्तनम् ॥ १४ ॥

१. ‘वास्तुब्रह्म सदा विश्वे व्याप्नोति सकलं जगत्’, २. ‘यानातिमनोहरान्’

पाठः । ३. ‘णि संजातमथ’ ख. पाठः ।

* वेन्यनृपतेः वेनयनोर्भूतनेः पृथोरित्यर्थः ।

तानित्यमात्मतनयानभिधाय सम्पक्
सारार्थभूतमपरिस्फुटतोञ्जितं च ।

स्थानापितोरुभरनिर्वृतचित्तवृत्ति-

स्तूष्णीं § प्रभासतनयो नयविज्जगाम ॥ १५ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीमोज्ज्वलदेवविरचिते समराङ्गप्रमुखधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

विश्वकर्मणः पुत्रसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ प्रश्नो नाम तृतीयोऽध्यायः ।

अथ तेषु जया नाम वाक्यं तद् विश्वकर्मणः ।

श्रुत्वा कृताञ्जलिः प्राह स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥ १ ॥

ज्ञानैकनिधिरप्यस्मान् यत् सहायतया किल ।

वृणोपि तेन न वयमात्मानं बहुमन्महे ॥ २ ॥

तदिदानीं हितार्थे नः प्रजानामपि च प्रभो ! ।

अप्रमेयप्रभावस्त्वं सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥

पूर्वमेकार्णवे जाते जगति प्रलयं गते ।

महाभूतामरपुरीज्योतिषां कथमुद्भवः ॥ ४ ॥

किमाकारा किमाधारा किममाणा च मेदिनी ।

विस्तृतिः परिधिश्चास्या बाहुल्यमपि कौतुहलम् ॥ ५ ॥

उच्छ्रायव्यासदीर्घत्वैः कैः केऽस्यां कुलभूभृतः ।

कति ख्यातानि वर्षाणि द्वीपा नद्योऽध्ययस्तथा ॥ ६ ॥

काः सूर्येन्दुग्रहक्षोदिगतेष्वथ पृथक्पृथक् ।

भूमेरुपरि किं चेषामन्योन्यं प्रोक्तमन्तरम् ॥ ७ ॥

१. 'स्थानार्पणातिशयनि', २. 'जयविजयसिद्धार्थपराजितमुतागमनो नाम'
क. पाठः । ३. 'प्रभोः' ख. पाठः ।

विभागां शिवा विभागाधिकं भवन्ति यः कः ।
 योके कार्यं मरुभूतान्कृत्वा शिवा विभागां विभागां ॥ ८ ॥
 युगवर्षेण्यवस्थाभिः काश्चादीं योऽवृत्तयः ।
 काश्चादिमन्त्राणां शास्त्रां शास्त्राणां विनिर्णयः ॥ ९ ॥
 कति देशाः कति भूतः दृष्टान्तेन निर्मितः ।
 कार्यः कः च कार्यं मन्त्रिचक्षुः जननादाश्रयः ॥ १० ॥
 स्वतन्त्रविदः स्वतन्त्रमन्त्रवर्णमन्त्रादिभिः ।
 काः शान्ता निन्दिताः काश्च पृथगागमि भूमयः ॥ ११ ॥
 कार्यं केन विज्ञानेन भूभृत्पुनर्विज्ञानम् ।
 किं कार्यं मुनिचिह्नं गमिनं दुर्निचिह्नं च किं पुनः ॥ १२ ॥
 कतिपक्षां दृग् च दृग्कर्माक्रमः कः ।
 किमप्रभुगमं गमनमनिर्णयं किं च निन्दितम् ॥ १३ ॥
 कथाप्रानुक्रमविधिः प्रमाणैरुपपादितः ।
 माकारगोपुगाद्यालपरिखायमकर्म च ॥ १४ ॥
 तमन्त्रनिर्गमद्वारमतान्यद्यालकादिभिः ।
 कीदृशः प्रविभागश्च स्थानान्वयवर्त्मभिः ॥ १५ ॥
 भूमिप्रमाणसंस्थानं सीमा च क्षेत्रादिवर्धः ।
 नगरग्रामखेतानां निवेष्टाः स्युः पृथक्पृथक् ॥ १६ ॥
 पुरस्याभ्यन्तरे पूर्वं कर्तव्यावयवकर्मः ।
 कस्मिन् स्थाने कथं कार्यं शक्यं जननिवेष्टनम् ॥ १७ ॥
 प्रतिसंवत्सरं तस्य नियुक्तस्य कथं पुनः ।
 हिताय नृपलोकानां विधातव्यो महोत्सवः ॥ १८ ॥
 गृहेषु केषु केष्वत्र कासु कासु ककुप्सु च ।
 भार्गवाद्यान्तरं कैः कैः कार्याः काः काश्च देवताः ॥ १९ ॥
 कैः कैर्यान्परीवारवर्णरूपविभूषणैः ।
 कार्याः कैः कैः सुरा वस्त्रवयोवेपायुधध्वजैः ॥ २० ॥

भजन्ते योगमन्योन्यं कानि द्वय्याणि कैः सह ।
 कानि योगं न गच्छन्ति कैर्वा कः यव वसेत् पुमान् ॥ ३३ ॥
 इष्टकाकर्म किं चेष्टं कीर्तिता कतिधा च भूः ।
 परिकर्मक्रमस्तासां वदद्यम्युपवनैश्च कः ॥ ३४ ॥
 गुरुवर्णिध्वजोर्वीशतद्रृत्यप्रतिमा(ः?) पुराम् ।
 वृक्षाः के के प्रयस्ताः स्युर्गृहार्थे के च गहिताः ॥ ३५ ॥
 तच्छेदसावसंभूतं शब्ददिवपातगर्भजम् ।
 विज्ञायते कथं कर्तृकारकादिशुभाशुभम् ॥ ३६ ॥
 प्रमाणं तक्षणच्छेदैः शोधितानां कथं भवेत् ।
 आहृत्य स्थापनं पूर्वं दारूणां स्थानके यव च ॥ ३७ ॥
 सामान्यतोऽग्निलानां काः काश्च जातेर्विशेषतः ।
 प्रशस्तैर्लक्ष्मभिर्युक्ता भूमयः परिकीर्तिताः ॥ ३८ ॥
 शल्योद्धारविधिः कीदृक् कीदृशं भूमिकर्म च ।
 दिग्ग्रहः मूत्रणं चाधिवासनं च कथं भवेत् ॥ ३९ ॥
 प्रमाणं मूलपादस्य शिलान्यासे च को विधिः ।
 विभज्यते कथं वेद्यं शालालिन्दविभाजनैः ॥ ४० ॥
 मानानि कानि भित्तीनां पीठानामुच्छ्रयाश्च के ।
 कथं तानि विकल्प्यानि वर्णानां मेखलादिभिः ॥ ४१ ॥
 समस्तकानां स्तम्भानां द्वारस्तम्भासनैः सह ।
 नागवीथ्युपधानानां समं कण्ठविनिर्गमैः ॥ ४२ ॥
 जयन्तीमद्ग्रहतुलाकार्याणां वास्तुनोऽपि च ।
 कीदृशं फलकानां च प्रमाणं परिकीर्तितम् ॥ ४३ ॥
 स्वमानान् सर्ववर्णानां तल्लोच्छ्रयास्तु कीदृशाः ।
 का गवाक्षकपोताल्लिखेदिकानाल्लक्रियाः ॥ ४४ ॥
 मृणा निमृष्टिसौन्मृका मृगा(न्यो?न्यु)पतुल्यमन्था ।
 सान्तःप्राणिशिरोवन्ताः किंप्रमाणाः प्रकीर्तिताः ॥ ४५ ॥

छाद्योदयाः कियन्तः स्युर्वृत्तच्छाद्यक्रमश्च कः ।
 व्यभ्राणां खण्डवृत्ताणां लुपानां च क्रियाः कथम् ॥ ४६ ॥
 सीमालिन्दशिर(स्त्वा?स्त्वा)सां कीदृशी चावलम्बना ।
 कनिप्रकाराः मासादशिरसां च विकल्पनाः ॥ ४७ ॥
 यचान्यदेवमादि स्यात् मासादभवनादिषु ।
 'द्रव्यकाष्ठकलासक्ति प्रमाणं तस्य कीदृशम् ॥ ४८ ॥
 शालालिन्दप्रमाणानि चतुःशालेषु धामसु ।
 ज्यायोमध्ययवीयसु मूपाभिः काष्ठकल्पना ॥ ४९ ॥ -
 एकद्वित्रिचतुःशालान्येषां संयोगतोऽपि च ।
 कथं कति च वेद्यमानि कल्प्यन्ते प्रविभागशः ॥ ५० ॥
 कथं च षोडशचतुःषष्ट्येकाशीतिषः शतम् ।
 संविभागाः पदानां स्युः कथमत्रामरस्थितिः ॥ ५१ ॥
 आद्यो नवपदो वास्तुरन्त्यः साहस्रिकः कथम् ।
 अहमत्यङ्गभागेषु केषु केषु क तस्थुषः ॥ ५२ ॥
 कथमेते मुराः सर्वे वास्तोरस्य व्यवस्थिताः ।
 एतद्वंशशिरैश्चक्षुःकुक्षिहृन्मूर्धमर्मसु ॥ ५३ ॥
 नायेत पीडा द्रव्येषु सन्निविष्टेषु कस्य का ।
 वास्त्वारम्भप्रवेशेषु यात्रायां स्थापनेषु च ॥ ५४ ॥
 दूतस्वप्ननिमित्ताद्यैः कथं ज्ञेयं शुभाशुभम् ।
 दारुकिपागु चित्रेषु तथा लेप्यक्रियासु च ॥ ५५ ॥
 'योग्यं किं किमयोग्यं च किं भूपभवनादिषु ।
 हस्तस्य लक्षणं मानमंज्ञा च जायते कथम् ॥ ५६ ॥
 किं द्रव्येष्वग्निलक्ष्य स्यात् किं च निर्मुक्तलक्षणम् ।
 अनुक्रमेण वर्णानां धनिकर्म च कीदृशम् ॥ ५७ ॥
 रिधेयं विधिना केन भवने च प्रवेशनम् ।
 पतिते स्तुतिने ज्ञेयं प्लुष्टे वज्राग्निसत्ते ॥ ५८ ॥

नियमप्रदानाद्यध्वप्राणायामं च नाम्नुत ।

मधुमन्थीकर्मभूता प्रविष्टे च दासि ॥ ५९ ॥

जायते किं कलं पुत्र प्रायश्चित्तेन को विधि ।

इत्येवमादिकमनेकविधं विधानं वैशंपायनं च पृथगाश्रयमभूतं च ।

अस्माग्ननल्पकृणार्द्रितनित्तृत्तिगोप्यातुमर्हसि गगन्मनुक्रमेण ॥ ६० ॥

इति महाभाष्येण तथैवोक्तं देवविहितं समस्तज्ञानपरायणतया विद्यायाः प्रामुख्येन

प्रश्नाध्यायस्तुतीयः ॥

अथ गहदादिनर्गश्रुतुर्थोऽध्यायः ।

जयस्येति समाकर्ष्य विश्वकर्मा च तद् वचः ।

जगाद् गर्जदम्भोदध्वनिगम्भीरया गिरा ॥ १ ॥

साधु वत्स ! त्वया सम्यक् प्रज्ञयातिविशुद्धया ।

प्रश्नोऽयमीरितो याम्नुविद्याञ्जवनभास्करः ॥ २ ॥

स त्वं निधाय प्रश्नानां समुदायममुं हृदि ।

वदतो मेऽवधानेन शृणु यद् ब्रह्मणोदितम् ॥ ३ ॥

इदमासीद् युगान्ताग्निप्लुष्टं संवर्तकादिभिः ।

समुत्सृजद्विरम्भांसि विश्वमेकार्णवीकृतम् ॥ ४ ॥

तमोभूते ततस्तस्मिन् भोगिपर्यङ्कमाश्रितः ।

हरिः सुप्वाप सलिले कृत्वोदरगतं जगत् ॥ ५ ॥

अथास्य नाभावम्भोजमभूत् तस्मिन्नजायत ।

सर्वज्ञानाश्रयः श्रीमांश्रतुर्वक्त्रः सुरेश्वरः ॥ ६ ॥

स कदाचिद् दधञ्चेतः प्रजासृष्टिं प्रति प्रभुः ।

महान्तमसृजन् तत्र पूर्वं विश्वस्य हेतवे ॥ ७ ॥

त्रिधादङ्कृतमेतस्मान्मनोऽभूत् सान्त्विकादतः ।
 राजमादपि चाभाणि तन्मात्राणि च नामसात् ॥ ८ ॥
 तेभ्यः पञ्च महाभूतान्पाविरासन्ननुक्रमान् ।
 व्योमादीनि धरान्तानि स्यः स्यैर्युक्तानि तैर्गुणैः ॥ ९ ॥
 अशरोत्तरभावश्च सम्यगेषामथोच्यते ।
 आर्द्रा पृथ्वी ततोऽव्यम्बादापन्तामां च पावकः ॥ १० ॥
 तम्पाप्यधस्तात् पवनमनः स्वमवकाशदम् ।
 भूतादिभ्यं वियन् मोऽपि यदता परिव्राजति ॥ ११ ॥
 यदांश्च विनति व्यक्तं व्यक्तमव्यक्तकं पुनः ।
 प्रादप्यप्रादप्यभावेन व्यक्तो भूतममुद्वहः ॥ १२ ॥
 आभाराधार्यभावश्च यथार्थां च स्थितिर्व्यर्था ।
 महाभूतानि सगुणान्येनं सृष्टा तवः प्रभुः ॥ १३ ॥
 मनः पुनरर्मां सर्वे भौतिके सम्यगादधी ।
 गुरागुरान् समन्धवान् यथार्थां पश्यमान ॥ १४ ॥
 'नामान् मुनीनप्सरसो मनसा समसीजन्तु ।
 भर्केन्दुं चक्षुः (पीडितो) जालो गगनभ्रमनक्षमा ॥ १५ ॥
 गात्रेभ्योऽपि च नक्षत्रचक्रमम्मादजायत ।
 इन्द्रियेभ्यश्च पञ्चभ्योऽभूत् सागप्रत्यक्षकम् ॥ १६ ॥
 प्रत्येकं पुनरेतेषामिन्द्रियप्रत्यक्षाद् विदुः ।
 गुणैर्नाराचिदानां विदुः सज्जानिनाम् ॥ १७ ॥
 भीमागनिभृतां पापीन् पञ्चभ्योऽभून्मेषां भवः ।
 विषमापृथ्व्यं कृत्स्नमादिसर्गांश्चार्द्धतया ॥ १८ ॥
 विजोषीरादन्निर्धमासी पादः सर्वोऽस्य ।
 पञ्चभ्योऽनिर्धोऽन्निर्धमासी पादः सर्वोऽस्य ॥ १९ ॥

तस्योपरिष्ठादम्भोधिरेधः कुण्डलितं ययुः ॥ २० ॥

विष्णोः (मन्याः शय्याः)न्याग्न्येह भक्तोऽनन्तोऽगिन्दी भुम् ।
न तमं येषु येष्वम्भः प्रदंशेधरैर्मग्निभिः ॥ २१ ॥

नीलं न नानिलैः शोभं तत्र तत्रान्ययोऽभवत् ।
महाम्भोधीचिराद्धाना विशिप्ताधग्दमारुतः ॥ २२ ॥

यत्र यत्रापूर्वयं ते तत्र तत्राद्रयोऽभवत् ।
निश्चलन्वार्थगवनिधर्मयद् धितवाथ नैः ॥ २३ ॥

शैलैः कीलैरिव स्थानेष्व्याचिना तेषु तेष्वियम् ।
एदिं गताद्रिनिःप्यन्दैर्भूभृतां प्रविभागता ॥ २४ ॥

निष्प्रगाभूत् ततोऽम्भोधिः कान्ता निम्नानुसारिणी ।
मेदिन्यन्तेषु जलधिषर्पन्तेषु त्रिनिर्षयुः ॥ २५ ॥

अम्भांसि यत्र यत्रासंस्तं द्वीपाधिप्ररूपिणः ।
सनिम्नगाम्बुधिद्वीपा विभक्ताखिलभूधरा ॥ २६ ॥

व्यक्ता दभूय कृत्स्नं भूमिभूतानि विभ्रती ।
स चक्रे रौरवादीनां निरयाणामधः क्षितेः ॥ २७ ॥

स्वकर्मफलभ्रुतस्यै स्थानं दुष्कृतकर्मणाम् ।
जरायुजाण्डजोद्भिज्जस्वेदजैः सह स प्रभुः ॥ २८ ॥

चतुर्थेत्यंष्टजलोके भूतग्रामं चराचरम् ।
द्वेधा जरायुजास्तत्र मनुष्याः पशवस्तथा ॥ २९ ॥

ग्राम्याः सप्ताभवंस्तेषु सप्तारण्यकृतालयाः ।
पुमान् गौस्तुरगच्छार्गा मेघो वेगसरः स्वरः ॥ ३० ॥

ग्रामवासैकनिरताः सर्पते परिकीर्तिताः ।
सिंहद्विपोष्ट्रमहिषा शरभो गवयः कपिः ॥ ३१ ॥

अरण्यगोचरा जीवाः सप्तैते वत्स ! निर्मिताः ।

धर्माधर्मविवेकित्वाच्छ्रेयान् ग्राम्येषु पूरुषः ॥ ३२ ॥

अरण्यचारिषु श्रेष्ठः सिंहः शौर्यवलादिभिः ।

सुपर्णा भुजगाः कीटाः येऽपि च स्युः पिपीलिकाः ॥ ३३ ॥

चतुर्धेत्यण्डजन्मानो जन्मिनस्ते प्रकीर्त्तिताः ।

हेन्दु (केपिकेश)समुद्भूताः कृमियूकादिजन्तवः ॥ ३४ ॥

सर्वेऽपि स्वेदजन्मानस्ते प्रजापतिना कृताः ।

उद्भिज्जाः पञ्चधा भूत्वा (त्या) निर्दिष्टाः स्थावराश्च ते ॥ ३५ ॥

द्रुमा बल्ल्यश्च गुल्माश्च वंशाः सतृणजातयः ।

छद्मान्तःकरणत्वं च स्वस्थानात्पाणितापि च ॥ ३६ ॥

छिन्नप्ररोहिता चैषां वैशेषिकगुणत्रयम् ।

गायत्री भूतसंज्ञै (पां? पा) चतुर्विंशतिपर्विका ॥ ३७ ॥

ज्ञात्वैनां पुरुषः पुण्यां भवति स्वर्गभाजनम् ।

भुवनभूजलवह्निमरुद्वियत्प्रमुख एष भवस्तव कीर्त्तितः ।

वसुमतीपरिमाणविनिश्चयं कथयतः शृणु सम्प्रति वत्स ! मे ॥ ३८ १/२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारपरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

महदादिस (ज्ञा? गर्) अध्यायश्चतुर्थः ॥

अथ भुवनकोशः पञ्चमोऽध्यायः ।

अथो यथाकमं भूमेः कृत्स्नायाः कथयामि ते ।

विष्कम्भपरिधी वत्स ! बाहुल्यमपि च स्फुटम् ॥ १ ॥

विष्कम्भोऽस्याः समुद्दिष्टो दशयोजनकोटयः ।

लक्षाण्यपि च मेदिन्यास्तद्वदेकोनविंशतिः ।

विष्कम्भत्रिगुणो यावद् विष्कम्भांश्च पञ्चमः ॥ २ ॥

प्राग्निर्वाग्निर्विमानः प्राग्निर्वाग्निर्विमानः ।
प्राग्निर्वाग्निर्विमानः प्राग्निर्वाग्निर्विमानः ॥ ३ ॥

अग्निर्विमानः गन्धर्वानां प्रदीपितः ।
गन्धर्वानां गन्धर्वानां विमानिर्वाग्निर्विमानः ॥ ४ ॥

इति याज्ञिक्येनस्याः क्षिप्रंवेत्तः तत्रादितम् ।
पतुर्णां मन्त्रिणादीनां भूनादेर्मन्त्रोऽपि च ॥ ५ ॥

उत्तमोत्तममूर्त्तानां मानं प्रमगुणं विदुः ।
गोपादिषु स्थितेयं भूधकृद् वृत्तगान्तिनी ॥ ६ ॥

पात्रस्थापेपात्रश्रीहोष्यन्त्यान्यपि क्रमात् ।
प्रमाणमिदमेतेषां क्षिप्र्यादीनां तत्रादितम् ॥ ७ ॥

दीपोदीनां तु पाथोधिनिवेशः पुनरुच्यते ।
दीपानामम्बुधीनां च सप्तानामपि मध्यगः ॥ ८ ॥

जम्बूदीपो भवेद् वृत्तः सदम्बर्जनविस्तृतः ।
हिमाद्रिर्हेमकूटाख्यो निषथो नीलसंज्ञितः ॥ ९ ॥

श्वेतः शृङ्गी च पडमी भवन्त्यस्मिन् कुल्याचलाः ।
एतस्मादुत्तरेणाद्रेस्तुगाराङ्कितगोखलात् ॥ १० ॥

पूर्वापरायताः सर्वेऽप्यद्रयो यावदम्बुधि ।
अन्तरा नीलनिषथौ जम्बूदीपस्य नाभिगः ॥ ११ ॥

वृत्तः पुण्यजनाकीर्णः श्रीमान् गेरुर्महाचलः ।
उदग्याम्यायते मेरोः प्राग्भागे माल्यवान् गिरिः ॥ १२ ॥

सेवितः सिद्धनारीभिरानीलनिषथायतः ।
सुमेरोः पश्चिमेनाद्रिर्गन्धर्वकुलसङ्कुलः ॥ १३ ॥

माल्यवत्सदृशायामो महीभृद् गन्धमादनः ।
पर्वतायुभयान्तस्थौ हिमवान् शृङ्गवांस्तथा ॥ १४ ॥

१. 'वर', २. 'हरि', ३. 'पावनपु पायोधेर्निवे' ल. ग. पाठः ।
४. 'समवि' क. पाठः ।

योजनानां सहस्रे द्वे^१ सार्धे स्यादुच्छ्रयस्तयोः ।

श्वेतश्च हेमकुटश्चेत्यन्तयोः पृथिवीधरो ॥ १५ ॥

योजनानां सहस्रार्धमेकैकस्योच्छ्रयस्तयोः ।

निपथाचलनीलाद्रिमाल्यवद्गन्गादनाः ॥ १६ ॥

सहस्रयोजनोच्छ्रयाश्चत्वारोऽमी पृथक्पृथक् ।

एतेऽष्टावपि शैलेन्द्राः सहस्रद्वयविस्तृताः ॥ १७ ॥

उच्छ्रयार्धमथवापि त्रिलम्बाः सह मेरुणा ।

मेरोः समुच्छ्रयोऽशीतिः सहस्राणि चतुर्षुता ॥ १८ ॥

षोडशाधः सहस्राणि द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतिः ।

जम्बूतर्गुणान् मध्ये सुमेरोर्निपथस्य च ॥ १९ ॥

द्वीपस्यामुप्य^२ ययोगाज्जम्बूद्वीप इति ध्रुतिः ।

शृङ्गेर्हिमशिलानद्भेदः सर्वतो हिमवानयम् ॥ २० ॥

महान्तो निवसन्त्यत्र पिशाचा यक्षराक्षसाः ।

हृत्तेर्हेमपर्वहेमकूट इत्यवनीधरः ॥ २१ ॥

यं सर्वतो निपेयन्ते सदा चारणमुखकाः ।

तरुणार्कप्रभाजालप्रतिमो निपथाचलः ॥ २२ ॥

निवसन्ति सुखं तत्र शेषवासुकितलकाः ।

हेमाब्जकर्णिकाकारः सुमेरुर्गणिकन्दरः ॥ २३ ॥

अत्रामराः साप्सरसस्तपस्विनश्च वसन्ति ते ।

वैवर्धनद्भेदः त्रिखरैर्नीलो नीलमहीधरः ॥ २४ ॥

कलयन्ति तपोनित्या यत्र ब्रह्मर्षयः स्थितिम् ।

श्वेतः स काञ्चनः शृङ्गेर्गगनोल्लेखिमिद्वृतः ॥ २५ ॥

दोर्दर्पशालिनां यत्र निवासस्त्रिदशद्विषाम् ।

महानीलमयो वर्द्धिपिञ्जुच्छ्रयो वर्द्धिगणान् ॥ २६ ॥

१. 'द्वे द्वे सार्धे उच्छ्रय' एत. म. पाठः । २. 'त', ३. 'ततो नि', ४. 'स्थिताः'

पितृणामालयः शृङ्गरुच्छ्रितः शृङ्गवान् गिरिः ।
हिमाचलस्य याम्येन क्षाराब्धिवृतमन्यतः ॥ २७ ॥

वर्षं स्याद् भारतं नाम प्रथमं कार्मुकाकृति ।
तुपारनिलयस्याद्रेर्हेमकूटाचलस्य च ॥ २८ ॥

मध्ये किंपुरुषं नाम द्वितीयं वर्षमीरितम् ।
अन्तरे हेमकूटस्य निपथस्य च भूभृतः ॥ २९ ॥

हरिवर्षमिति प्रोक्तं तृतीयं वर्षमुत्तमम् ।
निपथाचलनीलाद्रिमात्यवद्वन्धूभृताम् ॥ ३० ॥

चतुर्णां मध्यगं वर्षं तुर्यमस्मिन्निलावृतम् ।
उत्तरे नीलशैलस्य याम्ये च श्वेतभूभृतः ॥ ३१ ॥

पञ्चमं वर्षमत्यर्थरम्यं रम्यकसंज्ञितम् ।
श्वेतशृङ्गवतोः शैलराजयोरनयोरिह ॥ ३२ ॥

मध्ये षष्ठं हिरण्यांशुरम्यं हिरण्यकाहुयम् ।
अस्योत्तरे शृङ्गवतो याम्ये च क्षारवारिधेः ॥ ३३ ॥

कुरुवर्षाभिधं वर्षमुत्तरेण प्रचक्षते ।
अन्तरा नीलनिपथी प्राग्भागे माल्यवद्विरेः ॥ ३४ ॥

भद्राश्वमष्टमं वर्षं प्राक्समुद्रान्तमीरितम् ।
गन्धमादनशैलस्य प्रत्यक् प्राक् चापरांशुधेः ॥ ३५ ॥

नवमं वर्षमाचार्याः केतुमालं प्रचक्षते ।
इति प्रोक्तानि वर्षाणि नवामूनि मया तव ॥ ३६ ॥

साम्प्रतं पुनरेतेषां प्रमाणमवधारय ।
प्रमाणेन सदृष्टाणि चतुस्त्रिंशच्चतुर्दिशम् ॥ ३७ ॥

योजनानामिदं चतुरश्रमिलावृतम् ।
प्रारम्भत्यग्भागो वर्षे तस्योदयाम्पनः समे ॥ ३८ ॥

एकत्रिंशत्सहस्राणि किञ्चित् प्राक्प्रत्यगायते ।
 यान्युक्तानि षडन्यानि वर्षाण्येभ्योऽधराणि *ते ॥ ३९ ॥
 तेषां नवसहस्राणि प्रत्येकं विस्तृतिर्मता ।
 वर्षे किम्पुरुषे नार्यो नराश्च पुष्कभोजनाः ॥ ४० ॥
 जीवन्त्ययुतमन्द्रानां जात्यजाम्बूनदत्विपः ।
 हरिवर्षे नरा नार्यो वसन्तीधुरसाशिनः ॥ ४१ ॥
 सायुतं च सहस्रं ते जीवन्ति रजतत्विपः ।
 इलाहते नराः पद्मरागभासोद्गतास्तथा ॥ ४२ ॥
 जम्बूफलरसाहाराः सपादायुतजीविनः ।
 नास्मिन् मेरुतदच्छन्ने तारकाकेंदुरश्मयः ॥ ४३ ॥
 स्वाङ्गमभाभिः किन्त्वत्र कृतोद्द्योता वसन्त्यमी ।
 कैरवोदरसच्छाया भद्राश्चे साङ्गना नराः ॥ ४४ ॥
 नीलाम्रकफलाहारा भवन्त्यत्रायुतायुषः ।
 दलत्कुवलयश्यामाः केतुमाले शरीरिणः ॥ ४५ ॥
 शरदामयुतं तेषामायुः पनसभोजिनाम् ।
 श्वेताभो रम्यके रम्ये न्यग्रोधफलभृग् जनः ॥ ४६ ॥
 हरिवर्ष इव प्रोक्तमेतस्मिन् मानमायुषः ।
 श्यामत्विपः स्त्रियो वर्षे पुमांसश्च हिरण्यके ॥ ४७ ॥
 जीवन्त्ययुतमन्द्रानां सर्वेऽपि लकुचाशिनः ।
 कुरुष्वभीष्टर्दवृक्षैर्जीविन्ति स्त्रीयुता नराः ॥ ४८ ॥
 सपादमयुतं देवगर्भभा गौरकान्तयः ।
 पुष्पकर्मा वसत्येषु वर्षेषु नितिलो जनः ॥ ४९ ॥
 शोकव्याधिजरातङ्कशङ्कोन्मुक्तः सदासुखी ।
 वनैः फीर्णानि सर्वाणि कुसुमस्तवकान्तैः ॥ ५० ॥
 उद्भिजाद्भिर्नदीभिश्च तैस्तैस्तुङ्गैश्च पादपैः ।
 उद्भ्रष्ट्रीचिमालेन लावणेनाविना घटैः ॥ ५१ ॥

* ते तव ।

पश्चिमोऽप्यनुत्तरे जम्बूद्वीपे गणारिणः ।

द्वादशाभ्युनिधायत्र पृथग भूमिभूतः स्थिताः ॥ ५२ ॥

त्रयस्यस्यो दिशि दिशि स्फारोर्मिम्यागितोऽप्यः ।

मैनाक्षश्च यत्नारक्ष चकनापा च दक्षिणे ॥ ५३ ॥

नारदाग्या वगदाग्यः सौमकाग्यश्च पश्चिमे ।

उदगभागेऽपि च द्रोणकङ्कगन्धा इति त्रयः ॥ ५४ ॥

भूषको दृन्दुभिर्धनं सार्द्रकश्चेति पूर्वतः ।

सहस्रं योजनानां ते दीर्घास्तस्याभिमुच्छ्रिताः ॥ ५५ ॥

मघास्तदर्थमम्भोर्धो विस्तृताश्च पराधराः ।

जुष्टाः सर्वे सुरैः शृङ्गप्रोदिलीदाविहायसः ॥ ५६ ॥

ज्वलितोपधयः कान्तविचित्रद्रुमरीरुधः ।

द्वीपाः 'शाककुशक्रीडशाल्मल्य इति च क्रमान् ॥ ५७ ॥

गोमेदः पुष्कगाल्यश्च पटमी वायवतः स्थिताः ।

क्षीराज्यदधिमधेश्वरसस्यादम्भसोऽर्णवाः ॥ ५८ ॥

द्वीपान् शाक्तादिकानेते परिवार्य स्थिताः क्रमान् ।

स्वद्वीपतुल्याः सर्वे ते प्रमाणेन यथाक्रमम् ॥ ५९ ॥

अपी शाकादयो द्वीपा जम्बूद्वीपप्रमाणतः ।

यथाक्रमं स्युर्द्विगुणास्तथाम्भोनिधयोऽपि च ॥ ६० ॥

शाके सप्तद्वयस्तेषुदयो जलधरस्तथा ।

नारको रैवतः श्यामो राजतोऽथोऽम्बिकेयैकः ॥ ६१ ॥

चतुःसाहसिकस्तेषां विष्कम्भोऽर्थं समुच्छ्रयः ।

तदर्थं भूप्रदेशश्च सेवितानां सुरपिंभिः ॥ ६२ ॥

वृत्तानां द्वीपवत् तेषां बाह्यतोऽमून्यनुक्रमान् ।

वर्षाणि सन्निविष्टानि सप्त तानि ब्रवीमि ते ॥ ६३ ॥

जलदाख्यं कुमारं च सुकुमारं मणीचकम् ।

कुसुमोत्तरमोदाकीमहाद्रुमवनानि च ॥ ६४ ॥

कुम्भं विद्रुमहेमाख्यां शुनिमानथ पुष्पवान् ।
 कुम्भेभ्यो हरिश्चामुन्मन्दरश्च कुलाचलाः ॥ ६५ ॥
 विष्कम्भोऽष्टसहस्राणि तेषां प्रत्येकमीरितः ।
 तदर्धमुच्छ्रयस्तदुच्छ्रयार्थमधोगमः ॥ ६६ ॥
 उद्भिद्रं वेषुचत्मांत्रं 'सरान्मथ लम्बनम् ।
 वर्षं श्रीमन् प्रभाकृष कपिलं पद्मतामिधम् ॥ ६७ ॥
 कौशं कौशोऽन्धकारश्च देवो गोविन्दवामनौ ।
 दिविदः पुण्डरीकश्चेत्यस्मिन् सप्त कुन्दादयः ॥ ६८ ॥
 विष्कम्भोऽपुनमेतेषां विष्कम्भार्थं समुच्छ्रयः ।
 अधोगतिस्तदर्थं च वर्षाण्येषां तु यावतः ॥ ६९ ॥
 ह्रस्वन्दाख्याष्टवर्षाण्ये परापतमनानुगे ।
 मुनिवर्षान्धकाराण्ये सप्तमं दुन्दुभीति च ॥ ७० ॥
 गिरयः शान्मन्दिरीपे रक्तः पीतः मितस्तथा ।
 वैपुन्यमेषां द्वाविंशत्सहस्राणि प्रचक्षते ॥ ७१ ॥
 वैपुन्यार्थं समुच्छ्रायस्तदर्थमवर्तौ गतिः ।
 वर्षे शान्तभयं वीतभयं चेन्मित्र-संस्थिते ॥ ७२ ॥
 गोपेदे तु मुरधेति कुमुदधेति भूधरी ।
 योजनानां चतुःषष्टिस्तौ महमाणि विस्तृता ॥ ७३ ॥
 उच्छ्रायो विम्बरस्यार्थं तदर्थं चाण्यधोगतिः ।
 घानकीर्यण्डनामान्य मध्ये वर्षमुदीगतिम् ॥ ७४ ॥
 भ्रम्यद्भिः पुष्करटीपे घानगोत्रसंज्ञितः ।
 वायव्ये वर्षमेतस्य महारीतिमिति स्मृतम् ॥ ७५ ॥
 विम्बुतोऽष्टौ महमाणि सैन्धोऽर्धं द्वे त्रयापुनै ।
 सहस्रतनमन्यस्य मुरगिज्जपिमैरितः ॥ ७६ ॥
 घ्यागार्धेनोत्प्लवस्तस्य तदर्धेनाप्यधोगमः ।
 सुगन्धानां नगयोऽप्येव दत्ता वनतः निरोदिताः ॥ ७७ ॥

ऐन्द्री नमोऽरुणाया प्राण गायत्र्या मंगलनी नमः ।
 प्रानेतनी गुप्ता पञ्चात्र तथा गौम्युत्तरं विष्णु ॥ ७८ ॥
 धर्मरक्षार्थमेतासु चत्वारध्वजगृधराणि ।
 तथा लोकलवण्यार्थं तृथम् सारुभृतः स्थिताः ॥ ७९ ॥
 लोकालोकानलः स्वादुगन्धिलाह द्विगुणो वरिहः ।
 स्वादुदाग्निममाणान् म विष्णागद् द्विगुणोऽपिच ॥ ८० ॥
 समुच्छितोऽर्सा निपुतं निपुनार्थमथो गतः ।
 पञ्च कोणाः प्रतिदिनं निपुतानि तथा नव ॥ ८१ ॥
 तद्वत् निपुतस्यार्थं मेरुमध्यात् नदन्तरम् ।
 समुद्रासितदंढार्थस्तिग्मांशोः किरणरयम् ॥ ८२ ॥
 तत्समेन च भूम्यर्थेनाष्टतः परतः पुनः ।
 भौतान्यावरणान्पृथ्व्या यस्येतानि स्थितान्यथः ॥ ८३ ॥
 वायतोऽपिच भूम्यूर्ध्वं निविष्टानि तथानय ।
 इति षत्स ! तव मोक्तः सन्निवेशोऽखिलः शितः ॥ ८४ ॥
 स्थितिं गतिं च कथयाम्यर्कादीनामतःपरम् ।
 सूर्येन्दुधिष्ण्यश्वसितभौमाकिञ्चिदशार्चिताः ॥ ८५ ॥
 सप्तर्षयो ध्रुवश्चेति भूमेरूर्ध्वं क्रमात् स्थिताः ।
 चत्वारि द्वे तथा भूमेरूर्ध्वमा सूर्यनन्दनान् ॥ ८६ ॥
 षडेवमन्तराणि स्युः सहस्राणां शतं शतम् ।
 ग्रहान्तराणि यान्यन्यान्यवशिष्टान्यनुक्रमात् ॥ ८७ ॥
 तानि चत्वार्यपि द्वे द्वे लक्षे प्रोक्तानि मानतः ।
 धरित्रीध्रुवयोर्मध्ये योजनानां चतुर्दश ॥ ८८ ॥
 निपुतानि समुत्सेधस्रैलोक्यस्य मकीर्तितः ।
 एकाथ द्वे चतस्रोऽष्टावन्तरं कोटयः क्रमात् ॥ ८९ ॥
 महोजनस्तपःसत्यलोकानामुपरि ध्रुवात् ।
 ये स्थिताः सत्यलोकोर्ध्वमधस्तादण्डकर्षरात् ॥ ९० ॥
 एका कोटिर्भवेत् तेषां पञ्चाशन्निपुतान्वितो ।
 अथावरणयोगोऽस्य विहितः (स?प)व्रजन्मना ॥ ९१ ॥

यथैवाधस्तथा तिर्यक् तथैबोर्ध्वमपि क्रमात् ।
 वह्नेऽध्वाः प्रवहे मूर्यः स्थितः श्रीतांशुरुद्वहे ॥ ९२ ॥
 संवहस्थानि नक्षत्राण्यावहस्थाः पुनर्ग्रहाः ।
 सप्तर्षयः परिवहे ध्रुवश्चापि परावहे ॥ ९३ ॥
 प्रदक्षिणमयी सप्त मरुतो भ्रमयन्त्यमृन् ।
 मेधीभूतः स्थितो मध्ये सुमेरुश्चाभृति ध्रुवः ॥ ९४ ॥
 समस्तमपि तद्वद्धं ज्योतिश्चक्रं भ्रमत्यदः ।
 सप्ताश्वेनैकचक्रेण रथेन रथिनां वरः ॥ ९५ ॥
 ऋतेजोमयेन सततं भ्राम्यति ज्योतिषां पतिः ।
 केतुपाले (रजन्यर्थे?व्रजन्नूर्ध्वं) करोत्यस्तं कुरुष्वपि ॥ ९६ ॥
 मध्यन्दिनं च भद्राश्वे(ष्टद्विस्तं ग)च्छन् भारते रविः ।
 रसाब्धिपक्षसङ्ख्यानि योजनानि निमेषतः ॥ ९७ ॥
 सप्तविंशतिकां चाष्टौ भागान् सर्पत्यहर्षतिः ।
 योजनान्य(ध्विनन्दर्तु? विधनन्दर्तु) गुणसङ्ख्यानि काष्ठया ॥ ९८ ॥
 नवांशकचतुष्कं च कामत्यहिमर्दीधितिः ।
 बह्वथप्रिवसुखेन्द्रश्मासङ्ख्यातान्यज्जिनीपतिः ॥ ९९ ॥
 योजनस्य त्रिभागं च प्रयाति कलयैकया ।
 वियंत्स्वव्योमभूतान्ध्रिगुणपावकसङ्ख्यया ॥ १०० ॥
 योजनान्युष्णकिरणो मुहूर्तेन प्रसर्पति ।
 राज्यहेण सहस्राणि पञ्चाशन्नवकोटयः ॥ १०१ ॥
 लक्षाणि सप्तनवतिर्गतिः स्यान् तिग्मरोचिषः ।
 मध्येन पुष्करद्वीपस्पाको गल्यानया व्रजन् ॥ १०२ ॥
 नभस्तलेन पुनरप्युदयादुदयं श्रयेत् ।
 इत्थं गतिरिपं सम्पक् तिग्मभानो निरूपिता ॥ १०३ ॥
 गतिं चन्द्रप्रदक्षिणां भोगं चार्काद् विभावयेत् ।
 मोक्तं त्वेत्यहोरात्रप्रमाणमधुनानय! ॥ १०४ ॥

पश्यासन्नुवर्गोदीन् अथदाराय कन्ययन् ॥ १०४ $\frac{1}{2}$ ॥

इति निगदिन एष द्वीपशैल्याम्बुगीना-

मवनिवलयवर्षी कालम्पतः मप्रिवेशः ।

गनिरपि दिनभर्तुः फीणिता विश्वमानं

पुनरिह युगधर्मं कीर्त्यमानं निबोध ॥ १०५ $\frac{1}{2}$ ॥

इति महाशक्तिप्रियात्रयीभास्वदेवविरचिते समस्तज्ञानप्रभारतात्मनि वास्तुशास्त्रे

भुवनकांशाध्यायः पञ्चमः ॥

अथ सहदेवाधिकारः षष्ठोऽध्यायः ।

अथ प्राकथितादस्माद् भूतसर्गादनन्तरम् ।

मजासीदमरः सार्धमियं पूर्णजनाकुला ॥ १ ॥

शोकव्याधिजरातङ्कविमुक्तासिदशा इव ।

पुराभवन् कृतयुगे पुर्मासः स्थिरयवनाः ॥ २ ॥

ते निकुञ्जेषु शैलानां नदीषु च सरस्सु च ।

वनेषु च विचित्रेषु चिकीर्षुर्देवतैः सह ॥ ३ ॥

हेलया ते समुत्पत्य कदाचिदमरः सह ।

निरर्गलाः समासाद्य स्वविंचेरुः सुरा इव ॥ ४ ॥

चित्राम्बरावृताः सर्वे नानाभरणशालिनः ।

विमानाकृतयस्तेषामासन् कल्पद्रुमा द्रुमाः ॥ ५ ॥

मनोज्ञाभिः सह स्त्रीभिर्विचित्राभर(णास्त्रिणश्रि)यः ।

कल्पद्रुमेष्वकार्षुस्ते वासं क्रीडां च तेष्वथ ॥ ६ ॥

क्षुत्तृड्दुःखोज्झिताः सर्वे बभूवुरयुतायुषः ।

रत्नावदातदेहास्ते कदाचिद् भूरसाशिनः ॥ ७ ॥

रतिमायास्तदासंस्ते स्वेच्छाहारविहारिणः ।

स्त्रीकारविग्रहच्छेदविशदीकृतचेतसः ॥ ८ ॥

नास्मिन्नेतस्तपत्युग्रं न वाति प्रवलोऽनिलः ।
 नीहारच्छेदसुन्दर्यो निशाः पूर्णेन्दुभूषणाः ॥ ९ ॥
 भिन्नस्निग्धाञ्जनश्यामाः सतडिन्मन्द्रनिस्वनाः ।
 अचण्डाशनपथासन् कवरीकान्तपो घनाः ॥ १० ॥
 माद्यत्पिकवधूदष्टमाकन्दमुकुराङ्कुराः ।
 आसन् सदापुष्पफलाभोगा येषां वनालयाः ॥ ११ ॥
 एकोऽग्रजन्मा वर्णोऽस्मिन् वेदोऽभूदेक एव च ।
 ऋतुर्वसन्त एवैकः कुसुमायुधवान्धवः ॥ १२ ॥
 रूपधुतसुलैश्वर्यभाजस्ते निखिला अपि ।
 समत्वान्नाभवत् तेषामुत्तमाधममध्यता ॥ १३ ॥
 न खेटनगरग्रामपुरक्षेत्रखलादिकम् ।
 न दंशमशककव्याद्भयं वा न ग्रहादि च ॥ १४ ॥
 कल्पद्रुमाप्तभोगानां न चैषां प्रभुरप्यभूत् ।
 पुरास्मिन् भारते वर्षे तेषां निवसतामिति ॥ १५ ॥
 जगाम सुबहुः कालः सुरैः सार्धं सुर(स्त्रि?धि?)याम् ।
 अज्ञाततत्त्वमावानां सहसंवाससंभवा ॥ १६ ॥
 अथेषामभवद् देवादवज्ञा त्रिदशान् मति ।
 अपूज्यमानास्ते पूज्याः सर्वेऽप्यखिलवेदिनः ॥ १७ ॥
 आदाय तत्कल्पतरुं निपेतुर्घां दिवौकसः ।
 दिवंगमनशक्तिश्च दिव्यो भावश्च तद्वतः ॥ १८ ॥
 सरसः परमो भूमौ भूरसश्च न्यवर्तत ।
 स्मृत्वा कल्पद्रुमांस्तांस्तान् क्रीडास्ताश्च सुरैः सह ॥ १९ ॥
 व्यलपन् बहुधात्यर्थमनेर्धकृतचेतसः ।
 नतो विलपतां भूरि स्वरमाहारहेतवे ॥ २० ॥
 प्राणवाणार्थमेतेषामभूत् पर्यटको भुवि ।
 भूरसेनैव तेनैते कुर्वाणाः प्राणरक्षणम् ॥ २१ ॥

विना कल्पद्रुमैर्वासमन्यवृक्षेषु चक्रिरे ।

अर्थपां पश्यतामेव कदाचिद् भाग्यसंक्षयात् ॥ २२ ॥

विपर्ययाच्च कालस्य भूमेः पर्पटकोऽप्यगात् ।

ततः पर्पटके नष्टे तुपशूककणोज्झिताः ॥ २३ ॥

अकृष्टपच्या मेदिन्यामभवच्च शालितण्डुलाः ।

शाल्योदनेन तेनाथ सुस्वादुव्यञ्जनेन ते ॥ २४ ॥

परमां वृक्षिमासेदुः परितोपात्तचेतसः ।

तन्नाशशङ्कया शालितण्डुलानां द्रुमेष्वधः ॥ २५ ॥

ते व्यधुर्महतो राशींस्तत्क्षेत्राणि च चक्रिरे ।

अजायत ततो लोभो मात्सर्येर्ष्यापुरस्सरः ॥ २६ ॥

तत्र तत्र शनैश्चक्रे पदन्पासं च मन्यथः ।

द्वन्द्वमाप्त्या ततस्तेषां विश्रतामुत्तमां गतिम् ॥ २७ ॥

धैर्यध्वंसाद्भूत् स्त्रीषु भृशं रागतुरज्जमः ।

दारक्षेत्रनिमित्तानि भूयांस्येषामनन्तरम् ॥ २८ ॥

परिक्षेपैकमूलानि द्वन्द्वान्यासन् पृथक्पृथक् ।

ततः स्वकलृप्तमर्यादोच्छेदिष्वेप्सुजितात्मसु ॥ २९ ॥

अविनीतेष्वभाग्येषु स शालिस्तुपतामगात् ।

मष्टद्वरजसां तेषां सा पुण्यश्लोकता गता ॥ ३० ॥

मलमष्टतिरभवत् तुपधान्योपसेवया ।

तुपधान्ये ततो नष्टे परिभुवन्ते च सध्वये ॥ ३१ ॥

चीरवल्कलवस्त्राणां फन्दमूलफलाशिनाम् ।

कृतयः कालपर्यामात् पद् यमन्तादयोऽभवन् ॥ ३२ ॥

ततस्तेषामभूद् दोषरोगनांकाकुलं वपुः ।

मनश्च कामक्रोधेर्ष्यादैन्यामृषादिदूषितम् ॥ ३३ ॥

आधिदैवकमुष्णाम्बुगीतादिजनितं महन् ।

आधिर्मानिकपर्यासीद् दुःखं व्यालमृगादिजम् ॥ ३४ ॥

इत्थं दुःखत्रयार्त्तास्ते व्यवयाद्यभिगुप्तये ।
 द्विपनीहारशीताम्बुवाताद्यापच्छिदेऽपि च ॥ ३४ ॥
 अजातप्रीतयो वृक्षैः कुट्टिमानि गृहाणि (तेऽत्र) ।
 व्यधुद्विच्छन्वाश्मभिर्वृक्षानन्यान् दुःखार्त्तचेतसः ॥ ३५ ॥
 स्मृत्वा कल्पद्रुमाकारांस्तद्रूपाणि गृहाणि ते ।
 एकद्वित्रिचतुःसप्तदशशालानि चक्रिरे ॥ ३६ ॥
 शब्दाः (प) प्राकारपरितेष्वाच्छन्नेषु तृणादिभिः ।
 हृष्टास्तेष्वनयन् फालभाक्षेषु गृहमेधिनः ॥ ३७ ॥
 इत्यमीषु गृहिणो गृहेषु ते शीतवातजलतापनाशिषु ।
 हर्षसंवलितमानसाधिरं सन्निरस्ताविषदोऽवसन् सुखम् ॥ ३८ ॥

इति महाशयाभिराजभ्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणमुद्रकायपरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

सहदेवाधिकारो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ वर्णाश्रमप्रविभागः सप्तमोऽध्यायः ।

अयामरण्यः सार्धमाजगाम पितामहः ।
 दुःखच्छेदाय मर्त्यानामादाय नृपतिं पृथुम् ॥ १ ॥
 स तान्त्र्ये मधुर्वोऽसौ परनामिव वासवः ।
 दण्डधारी च दुष्टानां प्रभावे लोकपालवत् ॥ २ ॥
 मतापनापितारोत्तिसिंहः सिंहपराक्रमः ।
 युष्माकमाधिपत्येऽस्तावभिपिक्तो मया पृथुः ॥ ३ ॥
 रक्षाकृत् सर्वसिंष्टानामुच्छेत्ता दुष्टचेतसाम् ।
 वृत्तितो भीतिहर्ता च भविष्यत्येष यो नृपः ॥ ४ ॥

भवति नैव दायनं मरिचकं ममाजया ।

गमिष्यन्त्येव यो नीम्या वानुगंगोभगमिनीः ॥ १५ ॥

उत्सवेति मन्त्राणि मने नाथमागच्छ मेत्य तम् ।

भवेन्ननु दृग्गता दृग्वाट्टमाना यावत् नः प्रभोः ॥ १६ ॥

फलपट्टमाम्बलकान् द्रव्वातिं स्थान्नेनमः ।

धमनार्णवनिर्घ्रान् पाहि नः पृथिवीपते ॥ १७ ॥

अगो पृथुस्त्वारिजान् वा भद्रं मुग्धमाश्रयताम् ।

दृग्वाण्यपक्षिण्यापि कश्चिन्ने च मुग्धानि नः ॥ १८ ॥

ततः स चतुर्गे वर्णानाश्रमांश्च व्यभाजयन् ।

तेषु ये वेदनिग्नाः स्यान्नागः संयतेन्द्रियाः ॥ १९ ॥

मूरयथावदानाथ ब्राह्मणाम्नेत्रवन्मदा ।

यजनाध्ययने दानं याजनाध्यापनाधिनाः ॥ २० ॥

धर्मास्तेषां विमुच्यन्त्यांस्त्रीस्तुन्वाः क्षत्रवैद्ययोः ।

ये तु शूरा महोत्साहाः शरण्या रक्षणक्षमाः ॥ २१ ॥

दृढव्यायतदेहाश्च क्षत्रियान्त इहाभवन् ।

विक्रमो लोरुसंरक्षाविभागो व्यवसायिता ॥ २२ ॥

एतेषामयमप्युक्तो धर्मः शुभफलोदयः ।

निसर्गार्घ्यपुणं येषां रतिर्वित्तार्जनं प्रति ॥ २३ ॥

श्रद्धादाक्ष्यदयावन्तो ? चा) वैश्यांस्नानकरोदत्ता ।

चिकित्सा कृषिवाणिज्ये स्थापत्यं पशुपोषणम् ॥ २४ ॥

वैश्यस्य कथितो धर्मस्तद्वत् कर्म च तैजसम् ।

नातिमानभृतो नातिशुचयः पिशुनाश्च ये ॥ २५ ॥

ते शूद्रजातयो जाता नातिधर्मरताश्च ये ।

कलारम्भोपजीवित्वं शिल्पिता पशुपोषणम् ॥ २६ ॥

वर्णव्रितयशुश्रूषा धर्मस्तेषामुदाहृतः ।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थस्तथा यतिः ॥ २७ ॥

इत्याश्रमाः पृथक् तेन चत्वारः पविभाजिताः ।

गुरुशुभ्रपणं भक्षं व्रतचर्यामिकर्म च ॥ १८ ॥

स्वाध्यायश्चाभिपेक्ष्य धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणः ।

पूजाग्नयनिधिदेवानां स्वपृथ्वा जीवनं दमः ॥ १९ ॥

असमानपिमोत्रेषु विवाहः ऋतुगामिता ।

परस्परं स्त्रीषु वैमुल्यं परानुग्रहशीलता ॥ २० ॥

विनिवृत्तिरकार्येभ्यो धर्मोऽयं गृहिणां कृतः ।

देयतानिधिसत्कारो ब्रह्मचर्यं वने स्थितिः ॥ २१ ॥

बल्काजिनजटाचरधारणं जपनं भुवि ।

उपोषणं व्रतं देहकर्मनं नियमस्तथा ॥ २२ ॥

आहारोऽष्टपचर्यश्च धर्मोऽयं वनवासिषु ।

वैराग्यमिन्द्रियजयश्चिन्तात्यागः प्रशान्तता ॥ २३ ॥

आकिक्षन्त्यमनारम्भो यतिधर्मः सदा स्मृतः ।

क्षमत्वं गुर्वधीनत्वं शौचं स्वाध्यायनिन्यता ॥ २४ ॥

विशुद्धिर्व्यवहारेषु शिष्यधर्मोऽयमस्तिरितः ।

शुचित्वं वात्सल्यकार्यः पतिशुभ्रपणं क्षमा ॥ २५ ॥

पूजनं पतिपूजयानां शीघ्रमः शौचमेव च ।

एवं वर्णाश्रमान् सम्पदं कृत्वा वर्णाभ्युदयवान् ॥ २६ ॥

विभज्य तेषां चैक्येन ते ते धर्माः प्रणीतिताः ।

एभिः कर्माणि रतेषां पृथगुत्तिष्ठ्य मोक्षमवाप्नुवन् ॥ २७ ॥

स्वधर्मावस्थितानां यो भाति लोकद्वयं सुखम् ।

य एतां स्थितिमुदाहृत्य मोक्षमवाप्नुवन् विभज्यति ॥ २८ ॥

तस्याहं यमवन् बुद्धः परित्याग्यनुशासनम् ।

युक्तानां यमेषु तेषु द्वैतार्थं भवतामसम् ॥ २९ ॥

श्रेयस्त्रायवेद्यानि विभाग्यानि पुराणि च ।

इत्युक्त्या तानेषां शोभ्यां दाम्बुक्कम् पृथुतेव ॥ ३० ॥

विषयो गान्ध्यायाग दृष्टिर्वा दृष्टविरुद्धः ।

तन्नादंशेन गौर्भूता नश्यन्ती तेन मेदिनी ॥ ३१ ॥

विषेर्निर्गोपाद् दूरे साधु मग्गानि भूतये ।

कन्तिताग्नेन गन्तानां मग्गिताग्नेर्गु च ॥ ३२ ॥

गमेण चावसागेण पुगदीनां निमक्तयः ।

तेन सीगप्रहृष्टं धान्यैर्गर्गभाविधि ॥ ३३ ॥

मसम्या क्रियते धोणी भगवन्मन्दुदागमे ।

इगुज्जनां निगदिनः प्रथमो गृहस्य

धर्मेण सार्धमपिचाध्रमवर्णभेदाः ।

प्रोक्ताः कृषिज्यनिकरोऽपि न दर्शितम्ने

कान्स्वर्गेन वन्तः ! गृणु देशविभागभूमिम् ॥ ३४^१ ॥

इति महाभारताधिराजभीमोज्ज्वलदेशविश्रिते समराज्यपूज्यपातरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

वर्णाश्रमप्रविभागो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ भूमिपरीक्षा नामाष्टमोऽध्यायः ।

देशाथ देशभूष्यथ समासात् तव सम्प्रति ।

तत्सङ्ख्या तद्विभागाथ प्रोच्यन्तेऽवहितः शृणु ॥ १ ॥

देशः स्याज्जाङ्गलानूपसाधारणतया त्रिधा ।

त्रिविधस्याप्यर्थतस्य यथावल्लक्ष्म कथ्यते ॥ २ ॥

दूराम्बुरिरिणप्रायो ह्रस्वकण्टकिपादपः ।

रुक्षोष्णचण्डपवनः कृष्णमृत् तेषु जाङ्गलः ॥ ३ ॥

निम्नो भूरिजलः स्निग्धो बहुमत्स्यामिपो हिमः ।

स्यादनूपः सरित्प्रायः स्निग्धोच्छ्रितबहुद्रुमः ॥ ४ ॥

यः पुनर्नातिशीतोष्णः स्याद् देशद्वयलक्षणः ।

स साधारण-इत्युक्तो देशो देशविशारदैः ॥ ५ ॥

जाग्रन्नादिषु देशेषु त्रि(पुण्येष्वप्ये)षु स्वलक्षणैः ।
 युक्ताः षोडश चित्रेषा भूमयः प्रविभाजनः ॥ ६ ॥
 बालिशस्वामिनी भोग्या सीतागोचररक्षिणी ।
 अपाश्रयवती कान्ता स्वनिमत्स्यान्मधारिणी ॥ ७ ॥
 वणिक्प्रसाधिता द्रव्यसम्पन्नामिश्रपातिनी ।
 आश्रेणीपुरुषा श्रव्यसामन्ता देवमातृका ॥ ८ ॥
 धान्या हस्तिवनोपेता सुरक्षा चेति षोडश ।
 भुवः संज्ञाभिरुद्दिष्टा लक्ष्मासामथ कथ्यते ॥ ९ ॥
 भृशुजा बालिशेनापि शक्यते या प्रज्ञासितुम् ।
 या च भद्रजना सा स्याद् बालिशस्वामिनी क्षितिः ॥ १० ॥
 विनरन्त्यधिकं यस्यां भागभोगादिकान् करान् ।
 नरा भूरिश्रियः सात्र भोग्येति क्षितिरुच्यते ॥ ११ ॥
 यस्यां नदाश्च नद्यश्च निरिर्मध्येऽथवा बहिः ।
 विभक्तधेरसीमा सा सीतागोचररक्षिणी ॥ १२ ॥
 सरिदद्रिपनाथेषु ग्रामाद् यस्यां विवेक्षणः ।
 जनापाश्रययोग्यत्वादपाश्रयवतीति सा ॥ १३ ॥
 वनोपवनवन्यद्रिमरिक्कुञ्जमनोहरा ।
 देहिनी सम्यग्वृत्ता या सा कान्तेति कीर्तिता ॥ १४ ॥
 यस्यां मर्देव जायन्ते कल्पार्थादिपातवः ।
 स्वरणानि च भूयामि मातुः स्वनिमतीति ताम् ॥ १५ ॥
 बाल्यन्तं नानुपदेत दण्डकोशामनादिभिः ।
 स्त्रीतन्त्रोपाश्रया या च सा स्याद् भूरात्मधारिणी ॥ १६ ॥
 प्रमिष्यन्त्यसहृद् यत्र वण्णोपक्रपाविक्रपाः ।
 वणिक्प्रसाधितेन्पुनः सा भूरिणिगण्यहृता ॥ १७ ॥
 शाकाभक्षार्णसदिरर्धीदर्जीस्यन्दनामनः ।
 सैष्वेवश्रवरायम् युक्ता द्रव्यवतीति भूः ॥ १८ ॥
 यस्यां जनरदाः साधु विभक्त्यान्वयश्रवित्रपाः ।
 योगं बालि च विशाणि स्याद् भूः साविदपातिनी ॥ १९ ॥

न शुभ्रं चन्दिनो गम्यां दूर्गन्धमन्मथयाः ।
 भूः माध्वगीमन्नुपेति विनीतगमिना जनेः ॥ २० ॥
 मन्त्रोन्माहादिर्वमुत्पद्य गम्यां माध्वन्मभूतः ।
 मजन्ते मा स्मृता अरयमाध्वना भूः समन्ततः ॥ २१ ॥
 जीवन्ति धेयिगो गम्यां न दीदोनगादिवारिभिः ।
 गा देवमावृकेत्याहुर्मन्त्रेधितरादिदाम् ॥ २२ ॥
 निष्पद्यन्तेऽधिकं गम्यां पीतान्पुष्पान्गमन्ततः ।
 कृष्टानुपहतधेया धान्या मा पान्यशादिनी ॥ २३ ॥
 पर्यन्तेऽप्यद्रयो गम्यां मा च हस्तिचनोधिना ।
 मा हस्तिचनवन्पूर्वा भूतः सन्यवधिनी ॥ २४ ॥
 दुष्प्रभृष्यं या नित्यं विषमन्नादराणिभिः ।
 निष्पाद्रिसरिद्गुप्ता मा गुग्धेति भूः स्मृता ॥ २५ ॥
 पोड्योत्पुदिता भूम्यः प्रविगागाद् यथातथम् ।
 अन्या जनपदादीनां मयः सम्मिश्रलक्षणाः ॥ २६ ॥
 धातुस्पन्दोद्भूतकुञ्जगुल्मद्रुमलतावृतः ।
 उत्सङ्किताः पृथुशिल्पः समन्तादवनीधरः ॥ २७ ॥
 तीर्यावतारकान्ताभिः स्वादुतोषाभिरावृताः ।
 नदीभिः पुलिनप्रान्तैर्विचित्रद्रुमशालिभिः ॥ २८ ॥
 फोकिलालापमुभर्गमधुमत्तालिशालिभिः ।
 विचित्रफलपुष्पाद्वयैः कान्तैरुपशोभिताः ॥ २९ ॥
 दलत्कुवलयश्रेणीववणन्मधुपहारिभिः ।
 सरसीदेवखाताद्यैर्भूषिताः प्राज्यवारिभिः ॥ ३० ॥
 समैः सुगन्धिभिः स्वादुशीतैः कान्तैरभङ्गुरैः ।
 क्षेत्रैरक्षतसीमान्तैः सस्यनिष्पादिभिर्वृताः ॥ ३१ ॥
 निष्कण्टकाश्मवल्मीकैः प्रभूतयवसेन्धनैः ।
 विभक्तक्षेत्रसीमान्तैर्गोचरैरुपशोभिताः ॥ ३२ ॥

मयं नृपममुद्राणामन्तरं वसुधराः ।
 प्रमथ्यन्ते समामग्न्यादूर्धानलधारयः ॥ ३३ ॥
 दुर्गात्मनामवृष्या याम्बधानेकाश्रयान्विताः ।
 संस्मरामनिर्मृतं मनश्च स्मयन्ति याः ॥ ३४ ॥
 तात्पर्यं गुणयुक्तासु मरीचु विनिवेनयेत् ।
 यथास्थानं जनरदान् सेंट्रामपुगादि च ॥ ३५ ॥
 पुत्रा मरीचिमृदाभ्यः स्यू शारङ्गिस्तु पृथक्पृथक् ।
 पतयः र्वाविता धन्या भूमयो दुर्गेतवः ॥ ३६ ॥
 दूरांगोरया दूरे दृष्टित्तय स्वान्ततः ।
 गमयुष्टन्दुः। युक्तोर्वा मिग्दिगार्वाविनेचेत् ॥ ३७ ॥
 कालकिट्टमनीम्प्रताराजानदे माभ्यमि जानने ।
 सुदप्रवेशमागं भूमिदुर्गेनि र्वाविता ॥ ३८ ॥
 द्वीपेषु स्वादुतोयेषु बहणाग्रजला हरिः ।
 अभ्यावरानेत्या स्वाज्ञायदुर्गा च मेदिनी ॥ ३९ ॥
 श्लिष्ठाः शाकभूनः मुखाः प्रक्षिप्तजनानयाः ।
 बहुदकान्तच्छल्पा निर्विदाः मायुदकधराः ॥ ४० ॥
 दूर्वाग(स्त्री)स्त्री शरीमुञ्ज हुरन्दहुन्नवनार्थः ।
 ललिः ललिदाथ स्वादुदकच्छिद्यगोदकाः ॥ ४१ ॥
 बागुवक्रामरभावाभावमपोमानमेभुता ।
 नराकचार्यधार्मिक दाः जयन्तादनरहरताः ॥ ४२ ॥
 वा कारवानां मुखता विधुनानां परिमताः ।
 दुर्गाय नाः प्रजापते भूमयो जिनधिपः ॥ ४३ ॥
 सुरदुर्गासुर बुद्धिसूर्यकायनर्मज्जिभिः ।
 मुक्तता विजिनेभिः दूरागर्वा सपुनरा ॥ ४४ ॥
 अनामसायानादीमलानीयमर्वादी ।
 अनामसायानादीमलानीयमर्वादी ॥ ४५ ॥

गामूत्रगोमयशीतद्रविमन्नाग्न्यगन्धमाह ।

सामानगन्धा मदिरामार्ज्वीकेभ्यमदागर्वः ॥ ४६ ॥

शान्तिपिष्टकगन्धैश्च पान्यगन्धैश्च या तथा ।

प्रशम्नाग्निस्त्वर्णानामीरगन्धा वगुन्धरा ॥ ४७ ॥

सिता रक्ता च पीता च कृष्णा चैव कमान्मही ।

विप्रादीनां हि वर्णानां सर्वेषामथवा हिता ॥ ४८ ॥

स्वादुः कपाया तित्ता च कटुका नेत्यनुक्रमात् ।

वर्णानां स्वादतः शम्ता सर्वेषां मधुमाथवा ॥ ४९ ॥

गर्मागमे हिमस्पर्शा या स्यादुष्णा हिमागमे ।

मादृष्युष्णाहिमस्पर्शा सा प्रशम्ता वगुन्धरा ॥ ५० ॥

मृद्वक्ष्णलुकीवेषुदुन्दुभीनां समा ध्वना ।

द्विषा(ध्वाप्य?श्वाग्नि)ममम्वाना चेति स्युर्भूमयः शुभाः ॥ ५१ ॥

इदानीमप्रशस्तानां ध्रुवां लक्ष्माभिद्धम्हे ।

पुरादिसन्निवेशार्थं परित्याज्या भवन्ति याः ॥ ५२ ॥

भस्माहारकपालास्थितुषकेशविषाद्विषाभिः ।

मूषकोत्करवल्मीकशर्कराभिश्च निर्भरा ॥ ५३ ॥

रुक्ता प्ररोहिणी निम्ना भङ्गुरा सुपिरोपरा ।

वामावर्तजलास्त्राविण्यसारा विषमोन्नता ॥ ५४ ॥

कटुकण्टकिनिःसारशुष्कनिष्फलपादया ।

क्रव्यात्पक्षिर्सेमाकीर्णा कृमिकीटवती च या ॥ ५५ ॥

सुकृतान्यपि भोज्यान्नभक्ष्यपानानि तत्क्षणात् ।

यस्यां विनाशमायान्ति सह तूयादिनिस्वनैः ॥ ५६ ॥

सरित् पूर्ववहा यस्यां पुरार्थं तामपि त्यजेत् ।

बहुनापि यतस्तत्र कालेनायाति सा पुनः ॥ ५७ ॥

वसासृद्धमज्जविष्मूत्रमलको(थीश)पतत्रिणाम् ।

समगन्धा त्यजेदुर्वी तैलस्य च शवस्य च ॥ ५८ ॥

सदैव धूम्रवर्णा या मिश्रवर्णाववा मदी ।
 विवर्णा रुक्मवर्णा वा सा न स्यादिष्टदायिनी ॥ ५९ ॥
 निक्तामेलजवणा चापि भूमिर्षा स्येदन्ता भवेन् ।
 तां श्लोकविद्वेषकरीं त्यजेन् पुरनिवेशने ॥ ६० ॥
 या रुक्ताग्रसंस्पर्शा सदैवोष्णा हिमाववा ।
 अनिष्टगुणसंस्पर्शा या स्यान् नामपि सन्त्यजेन् ॥ ६१ ॥
 क्रोष्टृभस्त्रस्वाना या च निक्षीरनिम्बना ।
 भिन्नभाण्डममरुद्भ्यनितापिच नेप्यते ॥ ६२ ॥
 इति गन्धादिभिर्भूमिः कथितेयं शुभाशुभा ।
 इत्येन कृष्यमाणायां भूमौ कृष्टे समुत्थते ॥ ६३ ॥
 विशाद् मयं वह्निभरमिष्टकायां धनागमम् ।
 पाषाणेषु तु कल्याणं बुल्मध्वंसमस्मिन् ॥ ६४ ॥
 सरागृपेषु सर्वेषु स्नेहेभ्यो मयमादिशेन् ।
 अनूरा पदुवृणा गस्ता स्निग्धोत्तरा ॥ ६५ ॥
 मार्गीशानवरा मर्वरा वा दर्पणादरा ।
 शुभेज्ज्योषोपितः स्नातः शुभिः शुभस्वगम्बरः ॥ ६६ ॥
 स्वस्ति विनान् वाचयित्वा बाम्बुदेवान् ममर्च्य च ।
 करममाणं कुर्यात् ररातं नद्रूमिष्यगम् ॥ ६७ ॥
 तत्रस्तन्मृदमाहृष्य तन् तर्पयानुपूर्वयेन् ।
 रराताधिरुमृदुता भूः धेष्टा मज्जा च मग्ममा ॥ ६८ ॥
 मरीणवातमृन् भोणी ईना मग्ना न मा गृणाम् ।
 सन्त्यमाने यद्वा ररागे तन्मृदोऽन्विष्योरयते ॥ ६९ ॥
 मणिमृदुररात्यादि मृदातिथेयतां त्रितिः ।
 मापि ममरयते भूमिपेयतां रतुः गरातांगवः ॥ ७० ॥
 तुपकेनांरन्ताशारमग्नादिस्त्ररातिताः
 भूत्यादिः ररातापुणे तस्मिन् ददन्तं मजेन् ॥ ७१ ॥

तारायदागमः भूः स्थानं नदा भूः गारापिनी ।
 मध्यमाग्र महीणे स्थानं नदां हीनतरेऽपि ॥ ७२ ॥
 स्थाने मित्यादिमान्यानि गम्यां निगुणितानि च ।
 गद्वर्णानि न शुभगन्नि गा नदणेंद्रा मदी ॥ ७३ ॥
 स्थानग्यादवमभृतिपु दिक्षु प्रग्यालगीत वा ।
 दीपान् गम्यां चिं निष्टेन् नदणेंद्रा दि गा ॥ ७४ ॥
 इत्येवं कीर्तिताः कान्म्यादिभूमिः पुम्भूमयः ।
 खर्वदग्रामवेदानामेता एव स्मृता दिताः ॥ ७५ ॥
 वर्णितां वर्णेशास्त्रां च शिखिगणां च सर्वदा ।
 मासादयज्ञवादानामेता एवेष्टा भुवः ॥ ७६ ॥
 इत्येवमादिभिर्गि (यंभाः) शुभलक्ष्मयुक्ता
 भूमयः शुभा निगदिता नगरादिहेतोः ।
 आभ्यः परेण बहुधा परिकल्प्यमानं
 मूमस्त्रिधा स्थितवतोऽपि कस्म्य मानम् ॥ ७७ ॥

इति महाराजाधिराजभीमोजदेवधिरचिते समराज्यगुणधारापरनाभि वास्तुशास्त्रे
 भूमिपरीक्षा नामाष्टमोऽध्यायः ॥

अथ हस्तलक्षणं नाम नवमोऽध्यायः ।

हेतुः समस्तवास्तूनामाधारः सर्वकर्मणाम् ।
 मानोन्मानविभागादिनिर्णयैकनियन्धनम् ॥ १ ॥
 परिध्युदयविस्तारदर्घ्याणां स्फुरमी यतः ।
 ज्येष्ठमध्याधमा भेदा यं च ज्ञात्वा न मुह्यति ॥ २ ॥
 हृदानीं तस्य हस्तस्य सम्यङ् निश्चयसंयुतम् ।
 कथ्यते त्रिविधस्यापि लक्षणं शास्त्रदर्शितम् ॥ ३ ॥
 रेण्वष्टकेन वालाग्रं लिङ्गा स्यादष्टभिस्तु तैः ।
 भवेद् युकाष्टभिस्ताभिर्यवमध्यं तदष्टकान् ॥ ४ ॥

अष्टाभिः सप्तभिः पदभिरह्युद्धानि यत्रोद्भूतः ।

उपेष्टमध्यफानिष्ठानि तत्रतुर्विंशतिः करः ॥ ५ ॥*

सोऽप्यभिः पर्वभिर्वृत्तः करः कार्यो विज्ञानता ।

परस्यार्थं ननुःपरं शेषं व्याद् भक्तमहर्गुणः ॥ ६ ॥

तथाग्रं परितेखाः स्युस्मिन् पुण्यकमुनिताः ।

शेषास्वहृद्गुल्मेभ्यामु पुण्याणि विद्वशीत न ॥ ७ ॥

अथार्थं मध्यतः शायं देशा पञ्चममहर्गुलम् ।

मध्यं त्रिषाष्टमे कार्यं चतुर्था द्वादशं ततः ॥ ८ ॥

इमः स्वादगुल्मानेन विषयादगुल्/मि?इ,प्यने ।

ननु सार्धं द्विगुणं चापि चाद्गुण्यं तु नदर्थनः ॥ ९ ॥

स्थितः करभेदोऽयमद्विगुणानां विभेदतः ।

तस्य निर्माणदाम्नि देवताश्च प्रचक्ष्महे ॥ १० ॥

सादिग्राह्यनवजाति शत्रुक्षणे हीरे मनोरमम् ।

सारथ्य भवेद्विष्टं दाम हस्तमयल्लभ ॥ ११ ॥

ग्रन्थिः लघु निद्रंशं तीक्ष्णं विष्कृतिः तथा ।

अहं पादगन्तव्यं दास्ये तस्मात् नश्यत ॥ १२ ॥

शिवस्यैवाप्यथनस्य परम्यागु दयताः ।

१ मन्वादादिभ्यः णिङ्याः प्रथमं नञ् बाध्यताः ॥ १२ ॥

ॐ प्रत्यक्षं वादप्रमाणं विपरिक्तं नापि च पार्थिवान् ।
साधार्थनाशितं यदां गिरिधामे नमस्तुभ्यः ॥ १

शास्त्रप्रवृत्तिविभागेऽपि प्राप्तेऽपि न निश्चितः ।

माग्भेत् यतो मानं वन्द्येन देवताग्नयः

1. 'ལྷན་སྐྱོད་' རྒྱ་བརྒྱུད་།

† 'ਸ਼ਾ'ਵਾ'ਰ੍ਹਿ'ਯ' ਟ'ਥ'ਰ੍ਹਿ'ਯ' ਟ'ਥ'ਰ੍ਹਿ'ਯ'

[illegible][illegible]

1. 1992-1993

2019 10 10 10:10:10

विद्धेथ द्रव्यमध्यैथ देवताभिश्च 'पीडिते ।

प्रत्येकं त्रिदशस्थाने यथोक्तं फलमादिशेत् ॥ १६ ॥

शिरोत्तिरनलप्लोपो मरणं स्थपतेर्वधः ।

अतिसारो मरुद्वाधाधिरर्थभ्रंशो भयं नृपात् ॥ १७ ॥

कुलपीडा च महती कर्तृकारकयोरिति ।

यथाक्रममी दोषा ब्रह्मादीनां निपीडनात् ॥ १८ ॥

ब्रह्मानलकयोर्मध्ये यदा हस्तं तु धारयेत् ।

कर्मस्वधिगतस्तेषां पुत्रलाभो भविष्यति ॥ १९ ॥

कर्मणः सुष्ठुनिष्पात्तिः (स्तिष्ठतेभोगः स्थपतेर्भोग्यः) भक्षयम् ।

ब्रह्मा यमस्तयोर्मध्ये यदा हस्तं तु धारयेत् ॥ २० ॥

कर्ता सशिल्पकश्चैव (अः न) चिरेण विनश्यति ।

विश्वानलकयोर्मध्ये हस्तमूत्रं यदा धृतम् ॥ २१ ॥

सुं (घु) कर्मणि मध्यान्तं निष्पन्ने पुरष्टद्धिता ।

यमजलदयोर्मध्ये मध्यमं च विनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥

पवनो विश्वकर्मा चोभयोर्मध्ये च धारणम् ।

यदा तु तत्र कर्मान्तं शुभं तत्सर्वकामदम् ॥ २३ ॥

नीरधनदयोर्मध्ये मध्यमं च विनिर्दिशेत् ।

एषां मध्ये यदा वत्सहस्तं तत्र यदा धृतम् (?) ॥ २४ ॥

अनाष्टिभयं लोके देशभङ्गो न संशयः ।

रुद्रपवनयोर्मध्ये रुचिहस्तं तु धारयेत् ॥ २५ ॥

तत्र लक्ष्मीवतस्तस्य कार्यसिद्धिर्न संशयः ।

विष्णुधनदयोर्मध्ये यदा पाणिकरायतः ॥ २६ ॥

विविधास्तत्र भोगाश्च भ्रंशापन्ते नरस्य हि ।

ज्येष्ठादीनामर्थतेषां संज्ञाभेदा विधीयन्ते ॥ २७ ॥

यद्य येन भवेद् द्रव्यं मेयं तदपि कीर्त्यते ।

यथाष्टकाद्गुल्लः कट्टमः प्रकर्षेणायतः किल ॥ २८ ॥

१. 'पीडितेः' । २. 'रविः' । ३. 'कार' । ४. 'सुमतिर्म-
दिमध्यन्तं' । ५. 'रदेत्' । ६. 'सुमन्तं सर्वं' । ७. 'रमन्तः' । ८. 'तदा येन
संज्ञाभेदः' । ९. 'यः' ।

ज्येष्ठो हस्तः स विद्वद्भिः प्रोक्तः प्राशयसंज्ञितः ।
यः पुनः कल्पितः सप्तयववल्गुमैरिहाङ्गुलैः ॥ २९ ॥
तज्ज्ञैः स मध्यमो हस्तः साधारण इति स्मृतः ।
मात्रेत्यल्पं यतः प्रोक्तं हस्तश्च शय उच्यते ॥ ३० ॥
तेन मात्राशयः स स्याद्वस्तो यः षड्ववाङ्गुलः ।
विभागपामविस्ताराः खेटग्रामपुरादिषु ॥ ३१ ॥
प्रासादवेश्मपरिखाद्वाररथ्यासभादिषु ।
मार्गाश्च निर्गमा(यैश्चै)षां सीमन्तेत्रान्तराणि च ॥ ३२ ॥
वनोपवनभागाश्च देशान्तरविभक्तयः ।
योजनक्रोशगव्यूतिप्रमाणमपि चाध्वनः ॥ ३३ ॥
प्राशयेन प्रमातव्याः स्वातक्रकचराशयः ।
तलोच्छ्रयान् मूलपादान् जलोद्देशानथः क्षितेः ॥ ३४ ॥
तथा दोलाम्बुशस्त्रादि पातमानविनिर्णयम् ।
शैलस्वातनिकेतानि सुल्लङ्घ्यमानमान्तरम् ॥ ३५ ॥
साधारणेन बौद्धध्वमानं च परिकल्पयेत् ।
आयुधानि धनुर्दण्डान् चानं शयनभासनम् ॥ ३६ ॥
प्रमाणं कूपवापीनां गजानां वाजिनां वृणाम् ।
अरघट्टेभ्युपन्त्राणि घुगपूपहलानि च ॥ ३७ ॥
शिल्पपुष्करनौछत्रध्वजातोद्यानि यानि च ।
वृषीधर्मोपकरणपट्टयानादिकं च यत् ॥ ३८ ॥
मैल्यदण्डांस्तथा मात्राशयहस्तेन मापयेत् ।
भेदत्रयान्वितमपि प्रोक्तं हस्तस्य लक्षणम् ॥ ३९ ॥
संज्ञाभेदोऽथ सामान्यमानानां प्रतिपाद्यते ।
स्यादेकमङ्गुलं मात्रा फला मोक्तादङ्गुलद्वयम् ॥ ४० ॥
पर्वं त्रीण्यङ्गुलान्पादुमुष्टिः स्याच्चतुरङ्गुला ।
नलं स्यात् पञ्चभिः षडभिः करपादाङ्गुलैर्भवेत् ॥ ४१ ॥

१. 'तथायानि', २. 'तनिगेतानि' ख, ग, पाठः । ३. 'पार्थे च मा'
क, पाठः । ४. 'वर्तिषेत्' ख, ग, पाठः । ५. 'भारद' क, पाठः ।

पुंस्ते ज्येष्ठं विद्वन्मो गो मध्यमेर्धरोग्निर्गता ।
 मध्यमादर्धहस्तेन द्वीर्मा स्यान्मो कनीयसि ॥ १३ ॥
 पुरस्यान्तर्गता कार्या मध्यमार्गा तथागर्ग ।
 राजगार्गमुणोर्गता प्रमाणेन च तद्विर्गता ॥ १४ ॥
 प्राक्प्रत्यगायताः समद्वय मार्गा द्वीर्गताः ।
 याम्योत्तरायतास्तद्वन्धे स्पृम्नत्यमाणतः ॥ १५ ॥
 पण्ड्यमार्गप्रमाणेन पण्ड्यमार्गस्य वाद्यतः ।
 समन्ततो वप्रभुर्गं स्थापयेन् तद्विधानमिति ॥ १६ ॥
 मक्षरध्याप्रमाणेन तद्भूमेर्वाद्यतम्नतः ।
 व्यासत्वात्तान्तरैः साधं विधेयं परिखात्रयम् ॥ १७ ॥
 स्वातोत्पादोऽग्निनं कार्यं मध्यमेनार्धतोऽग्नि वा ।
 व्यासतः स्यादग्नेयेण मूलतस्तद्वन्धे तन् ॥ १८ ॥
 कुर्याद् वप्रं स्वभूभागे परिखोत्पानपा मृदा ।
 सोत्सर्जं गजपृष्ठं वा गोत्रीयपदताडितम्* ॥ १९ ॥
 स्वातोद्भूतमृदा वप्रनिर्माणाधिकपा ततः ।
 भूमदेशान् पुरा निघ्नानापूर्थ समतां नयेत् ॥ २० ॥
 एवं संशोध्य परिखात्रितयं परितोऽध्वमभिः ।
 विधेयमिष्टकाभिर्वा सम्पग्वद्धतलं स्थिरम् ॥ २१ ॥
 सिरावारिभिरापूर्णं पूर्णं वागाभिनाम्भसा ।
 विचित्राब्जमनोहारि § ससंग्राहाम्बुनिर्गमम् ॥ २२ ॥
 सर्वपार्श्वेष्वथैतस्य गन्धान्वमधुपाङ्गनान् ।
 मुमनोविटपारामान् कुर्याद् वासान् समुत्सकान् ॥ २३ ॥
 वाद्यभागं पुनस्तस्य विदध्यात् सर्वतोदिशम् ।
 द्रुममूलैर्लताजालैः कण्टकैरपि संवृतम् ॥ २४ ॥

१. 'नवत्' ख. पाठः । २. 'व्यासः' ख. ग. पाठः । ३. 'गोत्रीय' क. पाठः ।
 ४. 'तलस्थितम्' ख. ग. पाठः । ५. 'द्वादशकच्छकान्' (१) क. पाठः ।

* गोत्रीयपदताडितं गोत्रा गोसमूहः तदीयैः पदैस्ताडितं महत्तम् ।

§ 'उमाहं साम्बुनिर्गमम्' इति पादः पाठ्यः ।

वमोर्ध्वभागं मध्यं स्थूलोपलंशिलाचितम् ।
 कुर्यात् प्राकारमुद्गमं यद्वा पक्वेष्टकापयम् ॥ २५ ॥
 ज्योपान् करद्वादशभिर्दशभिर्मध्यमः स्थितः ।
 कनीयानष्टभिर्हस्तैर्विस्तारः स्यात् त्रिधेत्यसौ ॥ २६ ॥
 उच्छ्रायः सप्तदशभिः करंज्यापान् प्रशस्यते ।
 मध्यमः पञ्चदशभिस्त्रयोदशभिरन्तिमः ॥ २७ ॥
 ऊर्ध्वं न सप्तदशकान्न त्रयोदशकादधः ।
 प्राकारोच्छ्रापमिच्छन्ति नापि युग्मकरोन्मितम् ॥ २८ ॥
 हस्तैर्हस्तेऽङ्गुलद्वन्द्वमायतः सम्यगुच्छ्रायात् ।
 यस्य वा द्वादशकरा मूले भवति विस्तृतिः ॥ २९ ॥
 चतु(रस्रोर्हस्तो)च्छ्रितस्तस्य शिरः स्याद् दशविस्तृतम् ।
 हस्तोच्चं कपिशीर्षं स्याद् द्विहस्ता काण्डवारिणी ॥ ३० ॥
 कार्याः कर्णार्थितर्द्धारकर्णान्तस्थंश्च संयुताः ।
 प्राकारेऽष्टालकास्तस्मिन् दिक्षुदिक्षु चतुर्दिशम् ॥ ३१ ॥
 द्विभौमांश्चरिकोर्ध्वं च प्राकारोच्छ्रायविस्तृतीन् ।
 नदर्थं निर्गमान् कुर्यात् ससालाष्टालकानथ ॥ ३२ ॥
 शतं शतं स्याद्वस्तानां मिथथाष्टालकान्तरम् ।
 इत्थं पुरमगम्यं स्यात् पत्त्यश्वरथदन्तिनाम् ॥ ३३ ॥
 चरिकां संचरद्वारां सुखारोहां सवेदिकाम् ।
 ससोपानां सनिर्घृहां कुर्यात् सकपिशीर्षकाम् ॥ ३४ ॥
 राजमार्गमहारध्यासंश्रितानि चतुर्दिशम् ।
 ग्रीणि ग्रीणि विधेयानि पुरे द्वाराणि तद्विदा ॥ ३५ ॥
 राजमार्गमहाद्वारचतुष्कं विस्तराच्च ।
 अष्टौ सप्त करानोर्ज्या द्विगुणं विकरोज्झितम्(१) ॥ ३६ ॥
 महारध्याधयं द्वारं तत् पदपञ्चचतुष्करम् ।
 उच्छ्रायात् सार्धसार्धैकहस्तोनं विस्तरेण तत् ॥ ३७ ॥

१. 'ज्येष्ठः क' क. पाठः । २. 'एतद् स्यात्', ३. 'हस्ता', ४. 'चरोहिणम्'
 छ. ग. पाठः ।

कुर्यात् प्रतोलीः सर्वेषु महाद्वारेष्वथो द्वाः ।
 द्वाद्वर्गलाधेन्द्रकीलाः कषाटपरिधान्विताः ॥ ३८ ॥
 राजमार्गसर्गा शाला स्यात् प्रतोलीविनिर्गमा ।
 तदर्थं कोष्ठकान्तः स्याद् व्यासोऽध्यर्थं तयोः स्मृतः ॥ ३९ ॥
 चतुरश्रमिति न्यस्य प्रतोलीं चदनायताम् ।
 व्यासवस्व्यंशविन्यस्तमार्गा मृपाद्वयान्विताम् ॥ ४० ॥
 अन्तर्भिर्त्तौ चतुर्द्वारं महाद्वारेण सम्मितम् ।
 विक्ल्पकोष्ठकान्तेषु दासभिस्तद् विभूषयेत् ॥ ४१ ॥
 द्वारे चोभयतःशाले द्वे द्वे द्वारं च मूपयोः ।
 ते कार्ये सम्पुरे व्यासोऽधिके द्विगुणोच्छ्रिते ॥ ४२ ॥
 (पति)दासमूपयोः पदमध्यं पञ्चकंगेच्छ्रितम् ।
 तद्वन् कार्या द्वितीया भूर्द्धात्रोपोदगोच्छ्रिता ॥ ४३ ॥
 बाहिर्द्वारविनिर्मुक्तां पूर्ववन् तां प्रकल्पयेत् ।
 पुरःसंरोधनसद्वर्गवार्ध्वं प्रतो युताम् ॥ ४४ ॥
 तलं ततो महाद्वारस्योर्ध्वं चदना तृतीयकम् ।
 रोधनद्वारयुगलम्यसंयुक्तं सपञ्चमम् ॥ ४५ ॥
 सान्यस्तस्तम्भवेयन्यदर्थं तस्योपकल्पयेत् ।
 व्यालजालप्रतङ्गमशस्त्रयन्त्रादिभिर्भुतम् ॥ ४६ ॥
 वृद्धिर्वाभाभिमुप्यथं पुरस्तादपरिकल्पयेत् ।
 वृद्धद्वाराणि परिनिर्मितानिः प्रतोलीभिः ॥ ४७ ॥
 प्रतोल्या दक्षिणाद् भागादुच्छ्रितां वामतो गतः ।
 यावद् द्वितीयं महाभमंरुः पातो बहिः स्थितः ॥ ४८ ॥
 द्वितीयो वामभागात् तु विनिर्वासेन यच्छ्रितः ।
 कार्यः स्यात्तदनुमानान्न प्राक्तनस्य बाहवः ॥ ४९ ॥
 एतयोस्तन्मालं च राजमार्गस्य गन्तिताम् ।
 प्रतोल्यां स्याद्विर्त्यं तु राजमार्गस्य गन्तिताम् ॥ ५० ॥

दृष्ट्वा दृष्टोपभोगार्हान् सरिद्धिरिज्ज्वाभयान् ।
 पक्षद्वाराणि कुर्वीत स्वैच्छया तत्र तत्र च ॥ ५१ ॥
 गलभ्रमान् पुरे कुर्याच्छिन्नादाकृतिरोद्दिनान् ।
 द्विकरान् कस्मात्तान् वा सान्भसोऽभिन् प्रदक्षिणान् ॥ ५२ ॥
 छिन्नकर्णं विकर्णं च यत्नं मुनीश्वरं तथा ।
 वर्तुलं व्यजनाकारं चात्ताकृतिभ्यं च यत्न ॥ ५३ ॥
 शकटद्विसमं यत्र विस्तामद् द्विगुणायतम् ।
 विद्विक्स्थं सर्पचक्रं च तत्र पुरं निदिधनं भवेत् ॥ ५४ ॥
 छिन्नकर्णं वसुलोकः पुरे तस्मिन् नो भवम् ।
 व्याधिभ्यो वापरेभ्यो वा प्राप्तेर्निति विनिदिधनम् ॥ ५५ ॥
 विद्विष्टस्वामिता सर्वलोकगर्शनपश्यता ।
 जायते स्वल्पायुष्यं विकर्णपुराविनाम् ॥ ५६ ॥
 स्त्रीजयं विपरोगांश्च भेदांश्च विविधांस्तथा ।
 जनो वसन्तवाप्नोति यद्वाकृतिभ्यं पुरं ॥ ५७ ॥
 व्रजन्ति प्राणिनो नाशं क्षुब्धपाविपरिपीडिताः ।
 निवसन्तः सदा मुचीमुत्पाकान्गमे पुरे ॥ ५८ ॥
 स्वामिना सह दीयन्ते सर्वतः सद्योऽजिताः ।
 स्वल्पायुषश्च जायन्ते जना दृजगुणश्रयाः ॥ ५९ ॥
 असत्यवादिनः स्वल्पायुषः पवनपीडिताः ।
 जनाः स्पृथलचिन्ताश्च नगरे व्यजनाकृतौ ॥ ६० ॥
 दूधरित्राक्षनायुक्तस्तथा यदुनपुंसकः ।
 चापाकारे पुरं लोकं निरगन् भरति ध्रुम् ॥ ६१ ॥
 रोगशोकानलस्तेनभयं तत्र प्रजायते ।
 शकटद्विसमोकारं पुरं तद् विनिर्वश्यते ॥ ६२ ॥
 आरम्भासिद्धिदं विद्वद्वत्तं ज्ञानिभेदम् ।
 पौराणां स्वामिनश्च सदा जनसहितधारयन् ॥ ६३ ॥

कुर्यान् प्रतोल्याः शोणं सप्तभिः शोणैः ॥ ३८ ॥
 दशभिः शोणैः शोणैः शोणैः शोणैः ॥ ३९ ॥
 राजमार्गयोगां धान्या मत्तः प्रतोलीनिर्गमो ।
 तदर्थं शोणैः शोणैः शोणैः शोणैः ॥ ४० ॥
 चतुश्चाभिनि न्यस्य प्रतोल्यां शोणैः शोणैः ॥ ४१ ॥
 व्यासगन्धं शोणैः शोणैः शोणैः शोणैः ॥ ४२ ॥
 अन्तर्भिर्चो चतुर्भां मत्तः शोणैः शोणैः ॥ ४३ ॥
 विप्लवशोणैः शोणैः शोणैः शोणैः ॥ ४४ ॥
 शोणैः शोणैः शोणैः शोणैः शोणैः ॥ ४५ ॥
 ने कार्ये सम्मुखे शोणैः शोणैः शोणैः ॥ ४६ ॥
 (पति) शोणैः शोणैः शोणैः शोणैः ॥ ४७ ॥
 तदन्तः कार्ये शोणैः शोणैः शोणैः शोणैः ॥ ४८ ॥
 बहिर्द्वारविनिर्मुक्तं पूर्ववत् शोणैः शोणैः ॥ ४९ ॥
 पुरःसंगेधनसङ्केतार्थं शोणैः शोणैः ॥ ५० ॥
 तलं ततो महाद्वारस्योर्ध्वं बहिः शोणैः शोणैः ॥ ५१ ॥
 रोधनद्वारयुग्मस्योर्ध्वं शोणैः शोणैः ॥ ५२ ॥
 सन्न्यस्तस्तन्मयेद्यन्वद्वयं शोणैः शोणैः ॥ ५३ ॥
 व्यालजालशतध्वजसङ्केतार्थं शोणैः शोणैः ॥ ५४ ॥
 बहिर्द्वारविनिर्मुक्तं पुरःसङ्केतार्थं शोणैः शोणैः ॥ ५५ ॥
 बहिर्द्वाराणि पश्चिमदिशि शोणैः शोणैः ॥ ५६ ॥
 प्रतोल्या दक्षिणाद वायादुच्छिन्नो वामतो गतः ।
 यावद् द्वितीयं तत्पश्चिमैः कार्यं बहिः स्थितः ॥ ५७ ॥
 द्वितीयो वामभागात् तु निर्गतवास्तव्यं वैष्टकः ।
 कार्यः स्यादा तदुत्थानात् प्राकारस्तस्य बाह्यतः ॥ ५८ ॥
 एतयोरन्तरालं च राजमार्गेण सन्निवन् ॥ ५९ ॥
 कर्तव्यं स्यादिदं तु वनद्वारस्तु तन्मयम् ॥ ६० ॥

१. 'मः' ख. ग. पाठः । २. 'मः' क, 'मान्' ख. पाठः । ३. 'शोणैः' ख. पाठः । ४. 'शोणैः' ख. ग. पाठः । ५. 'शोणैः' ख. ग. पाठः । ६. 'शोणैः' ख. ग. पाठः । ७. 'शोणैः' ख. ग. पाठः । ८. 'शोणैः' ख. ग. पाठः । ९. 'शोणैः' ख. ग. पाठः । १०. 'शोणैः' ख. ग. पाठः ।

दृष्ट्वा दृष्टोपमोपादीन् समिष्टिरित्याजयान् ।
 पक्षद्वाराणि कुर्वान् स्येच्छया नद्य नद्य च ॥ ५१ ॥
 जलभ्रमान् पुनरुत्थान्निष्ठादान्तिकोद्दिनान् ।
 द्विकरान् करमावान् वा नाज्यमोऽस्मिन् प्रदक्षिणान् ॥ ५२ ॥
 छिन्नकर्णं विकर्णं च दत्तं न दीयते तथा ।
 वर्तुलं व्यजनाकारं चासृजि न च स्रज् ॥ ५३ ॥
 शकटद्विसमं यद्य विस्वागाय द्विगुणायनम् ।
 विदिकुम्भं सर्वचक्रं च न पुनर्निर्दिष्टं भवेत् ॥ ५४ ॥
 छिन्नकर्णं समष्टिकः पुनर्नमस्तो नयन् ।
 व्याधिभ्यो वापमेभ्यो वा पातोऽस्ति विनिर्दिष्टम् ॥ ५५ ॥
 विदिकुम्भमिना सर्वलोकात्मनस्तथा ।
 नायने स्त्र्यन्तापुनरि रित्नापुनरिति तम् ॥ ५६ ॥
 ग्रीज्यं विषमोपांशं भट्टांशं विद्विषां तथा ।
 जनो वसन्तसमोति राजास्ति न च पुनः ॥ ५७ ॥
 प्रजन्ति प्राणिनो नाम ध्रुवस्यास्तिर्षादिनाः ।
 निवसन्तः सदा शर्वाणुगतास्तत्र पुनः ॥ ५८ ॥
 स्वाभिना सह दीयन्ते सवतः सद्यचोदिताः ।
 न्यन्तापुनश्च नायन्ते न च न्यन्तापुनः ॥ ५९ ॥
 भ्रमस्तदादिनः स्त्र्यन्तापुनः परन्तोदिताः ।
 जनाः स्युधत्यचिन्ताय नयने स्त्र्यन्तापुनः ॥ ६० ॥
 दृष्ट्वा दृष्टोपमोपादीन् समिष्टिरित्याजयान् ।
 पक्षद्वाराणि कुर्वान् स्येच्छया नद्य नद्य च ॥ ६१ ॥
 जलभ्रमान् पुनरुत्थान्निष्ठादान्तिकोद्दिनान् ।
 द्विकरान् करमावान् वा नाज्यमोऽस्मिन् प्रदक्षिणान् ॥ ६२ ॥
 छिन्नकर्णं विकर्णं च दत्तं न दीयते तथा ।
 वर्तुलं व्यजनाकारं चासृजि न च स्रज् ॥ ६३ ॥
 शकटद्विसमं यद्य विस्वागाय द्विगुणायनम् ।
 विदिकुम्भं सर्वचक्रं च न पुनर्निर्दिष्टं भवेत् ॥ ६४ ॥
 छिन्नकर्णं समष्टिकः पुनर्नमस्तो नयन् ।
 व्याधिभ्यो वापमेभ्यो वा पातोऽस्ति विनिर्दिष्टम् ॥ ६५ ॥
 विदिकुम्भमिना सर्वलोकात्मनस्तथा ।
 नायने स्त्र्यन्तापुनरि रित्नापुनरिति तम् ॥ ६६ ॥
 ग्रीज्यं विषमोपांशं भट्टांशं विद्विषां तथा ।
 जनो वसन्तसमोति राजास्ति न च पुनः ॥ ६७ ॥
 प्रजन्ति प्राणिनो नाम ध्रुवस्यास्तिर्षादिनाः ।
 निवसन्तः सदा शर्वाणुगतास्तत्र पुनः ॥ ६८ ॥
 स्वाभिना सह दीयन्ते सवतः सद्यचोदिताः ।
 न्यन्तापुनश्च नायन्ते न च न्यन्तापुनः ॥ ६९ ॥
 भ्रमस्तदादिनः स्त्र्यन्तापुनः परन्तोदिताः ।
 जनाः स्युधत्यचिन्ताय नयने स्त्र्यन्तापुनः ॥ ७० ॥

पररात्रम्य भुज्यन् ननु पुरं चल्दनाञ्जलिः ।
 द्विगुणायतसंस्थानं यन् क्वचिद् विनिवेश्यते ॥ ६४ ॥
 जनक्षयोऽग्निदादश्च स्त्रीकृतानि मयानि च ।
 पुरं भवति दिङ्मूढं न च नियोगमेति तन् ॥ ६५ ॥
 शस्त्रानिन्द्रपिशाचाप्रिभूतयक्षमयाङ्किताः ।
 रत्नपीडिताश्च नश्यन्ति भुजङ्गकुटिले जनाः ॥ ६६ ॥
 पुराणामप्रशस्तानि संस्थानानीदृशानि यन् ।
 एकस्मिन्नपि तेनैषां न पुरं विनिवेशयेत् ॥ ६७ ॥
 संस्थानमेकमप्येषां प्रमादत् क्रियते यदि ।
 तदा राष्ट्रं निपीड्येत क्षुद्रद्विपद्भ्यतिमृत्युभिः ॥ ६८ ॥
 शास्त्रघ्नः स्थपतिस्तस्मात् प्रयत्नपरया धिया ।
 यथावत् कथितं चौरु नगरं विनिवेशयेत् ॥ ६९ ॥
 वेदीनिवेशयात्रायां देवागाराभिचारयोः ।
 नदीकर्मणि मंत्रे च शान्तिं कुर्याच्छ्रेमेषु च ॥ ७० ॥
 यज्ञे पुरनिवेशे च स्थापने प्रयतः सुधीः ।
 कुर्यात् तथाभ्युदयिकं यद्वान्यदपि किञ्चन ॥ ७१ ॥
 पुरे भीतिकरं शब्दनायुष्यमर्षाष्टिकम् ।
 कृतमप्रयतः कर्म नृपतिर्न च जायते ॥ ७२ ॥
 विदितं यदशास्त्रैर्वेष निर्लक्षणः कृतम् ।
 कृतमप्रयतैर्वेष तदशस्तं फलोद्भिन्नम् ॥ ७३ ॥
 शास्त्रघ्नः स्थपतिर्गोतिविदा तद्वत् पुरोधसा ।
 अपिष्टिः पुरे कर्म विदध्याच्छान्तिकेषु च ॥ ७४ ॥
 पुरोहितोऽग्निं तुदुपाद् दद्यान्मार्हात्तिकः स्थिरम् ।
 स्थपतिश्च यन्मि दद्याद् योजयेदिति शान्तिकम् ॥ ७५ ॥
 तदा गमिन् पुरं शान्तिर्यत्र मर्मस्थिताः गुराः ।
 पूज्यन्ते गतर्तं पौरिधन्वरस्थापिनस्तथा ॥ ७६ ॥

१. 'सर्वमयः' ३१, २. 'वह्निर्द्विपद्भ्य' ल. ग. पाठः । ३. 'यात्र न' क.

४. 'वा वेदया' ग. पाठः । ५. 'वैः कर्म त' क. पाठः । ६. 'तम्' ल. ग. पाठः ।

चतुःप्रकारं स्थापत्यमष्टधा च चिकित्सितम् ।
 धनुर्वेदश्च सप्ताङ्गो ज्योतिषं कमलालयात् ॥ ७७ ॥
 सामान्यलक्षणोत्पातनिमित्तानि च सर्वशः ।
 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्यजन्त्येते न तत् पुरम् ॥ ७८ ॥
 नगरस्य विभागोऽयं यथावत् समुदीरितः ।
 खेटं तदर्धविष्कम्भमाहुर्ग्रामं तदर्धतः ॥ ७९ ॥
 योजनेन पुरात् खेटं खेटाद् ग्रामं प्रचक्षते ।
 गव्यूतिपरिमाणेन ग्रामाद् ग्रामं प्रचक्षते ॥ ८० ॥
 द्विक्रोशाद् विषये सीमा तदर्धेन पुरस्य सा ।
 खेटके पुरसीमार्धं ग्रामे खेटार्धतः स्मृता ॥ ८१ ॥
 त्रिंशद्भनूपि विष्कम्भः पुरे दिग्वर्त्यसु स्मृतः ।
 विंशतिः खेटके मार्गो ग्रामे दश च दक्षितः ॥ ८२ ॥
 नैव ग्रामसहस्राणि नवति(श्चैश्च) प्रचक्षते ।
 चतुःषष्टिमपि ग्रामान् ज्यायो राष्ट्रं विदुर्बुधाः ॥ ८३ ॥
 देशार्धं च सहस्राणि ग्रामाणां त्रिंशती तथा ।
 ग्रामाश्चतुरशीतिश्च मध्यमं राष्ट्रमीरितम् ॥ ८४ ॥
 सहस्रमेकं ग्रामाणां तद्वच्च शतपञ्चकम् ।
 म्यूना च ग्रामपञ्चाशत् कनीयो राष्ट्रमुच्यते ॥ ८५ ॥
 अर्धसहस्रचर्यतेषां ज्येष्ठमध्यकनीयसाम् ।
 विधाय नवर्धकैकं विभजेद् विधिवत् सुधीः ॥ ८६ ॥
 राष्ट्रेष्वेवं विभक्तेषु यथाभागं विधानवित् ।
 निवेशयेत् पुराण्येषु सप्त सप्त यथागमम् ॥ ८७ ॥
 विभागश्च प्रमाणं च लक्षणं चादिमस्य यत् ।
 जातिवर्णाधिवासश्च यथावत् तदिहोच्यते ॥ ८८ ॥
 सुवर्णकारानाम्रेण्यां तथा वहन्त्युपजीविनः ।
 निवेशयेत् कर्मकरानन्यानपि विधानवित् ॥ ८९ ॥

१. 'तत्र मा', २. 'दश देव', ३. 'न्यूनाय मा' ख, ग. पाठः । ४. 'क्रम'

वैश्यानामक्षधूर्तानां चक्रिकाणां च दक्षिणे ।

नद्यानां नर्त्तकानां च गृहाणि विनिवेशयेत् ॥ ९० ॥

निवेशयेत् सांकरिकान् मे(यी?पी)कारान् मृगच्छिदः ।

कैवर्तान् नैर्ऋताशयां दमनाधिकृतांस्तथा ॥ ९१ ॥

रथेषु कौशलं येषां येषां स्यादायुधेषु च ।

वारुण्यां दिशि तान् सर्वान् पुरस्य विनिवेशयेत् ॥ ९२ ॥

कर्मस्वधिकृता ये च ये चापि परिकर्मिणः ।

शौण्डिका ये च तान् सर्वान् वायोर्दिशि निवेशयेत् ॥ ९३ ॥

यतीनामाश्रयान् ब्रह्मवत्सानां च तथा सभाम् ।

प्रपाश्च पुण्यशालाश्च कुर्याद् दिशि धनेशितुः ॥ ९४ ॥

घृतविक्रयिणो ये च फलविक्रयिणश्च ये ।

निवेशिताः प्रशस्यन्ते पुरस्येशानदिग्गताः ॥ ९५ ॥

पूर्वभागे बलाध्यक्षान् राज्ञो मुख्यांस्तथा बले ।

निवेशयेत् तथाग्नेय्यां बलं नानाविधं मुधीः ॥ ९६ ॥

श्रेष्ठिनो दक्षिणाशयां तथा देशमहत्तरान् ।

याम्येकहारान्(?) कुर्वीत तथा ककुभिर्निर्ऋतेः ॥ ९७ ॥

कोशपालमहामात्रादेशिकान् कारुकानपि ।

नियामकांश्च कुर्वीत सलिलाधिपतेर्दिशि ॥ ९८ ॥

वायोः ककुभिर्कुर्वीत दण्डनाथान् सनायकान् ।

पुरोहितज्योतिषिकानुत्तरस्यां निवेशयेत् ॥ ९९ ॥

विप्राः साम्यां दिशो भागे क्षत्रियाः शक्रदिग्गताः ।

वैश्यशूद्रास्तु कर्तव्या दक्षिणापरयोः क्रमात् ॥ १०० ॥

निधेया वणिजो वैद्या मुख्याश्चापि चतुर्दिगम् ।

चतुर्दिशं विशेषेण स्थापयित यत्नानि च ॥ १०१ ॥

नगरस्य बहिः प्राच्यां त्रिजम्भान् विनिवेशयेत् ।

द्वयानानि तथा तत्तरान् याम्यायां स्थपतिः मुधीः ॥ १०२ ॥

सर्वतोदिशमुद्दिष्टो विभागो नगरे यथा ।
 तथा ग्रामेषु खेटेषु सेनायाश्च निवेशने ॥ १०३ ॥
 नगराभिमुखं कार्यां संपूर्णाहमहोदर्या ।
 द्वारे द्वारे सौम्यमुखं लक्ष्मीविश्रवणौ शुभौ ॥ १०४ ॥
 राष्ट्रं खेटमथ ग्रामं ऽ पश्यन्तेतपुरं महत् (?) ।
 तन्नारोग्यार्थसंसिद्धी प्रजाविजयमादिशेत् ॥ १०५ ॥
 छेदयन्धवधैर्लौकाः स्युर्मिथः भूतहिंसकाः ।
 ग्रामं खेटं पुरं राष्ट्रं यदेतौ नैव पश्यतः ॥ १०६ ॥
 स्थाप्यन्ते ये यथा देवा नगरे सर्वतोदिशम् ।
 वायान्तरासु भूमीषु धूमहे तानतः परम् ॥ १०७ ॥
 चतुर्दिशं सपारभ्य प्राकारपरिस्वान्ततः ।
 वहिः शतं शते सार्धं धनुषां द्विशतेऽपि च ॥ १०८ ॥
 धनुःशतमितैः शुद्धरनिन्द्यैर्धरणीतलैः ।
 स्वस्वभासाद्युक्तानि स्वस्वानुगृहैः सह ॥ १०९ ॥
 निवेशनानि कुर्वीत विदशानां यथाक्रमम् ।
 नगराभिमुखं चित्रवनभास्त्रि शुभानि च ॥ ११० ॥
 याम्योत्तरायतं वंशं विकल्पपुरमध्यगम् ।
 वहिरन्तश्च कुर्वीत देवानां विनिवेशनम् ॥ १११ ॥
 प्राच्यां प्रत्यङ्मुखान् कुर्यात् प्राङ्मुखान्श्चाम्बुभृदिभिः ।
 याम्योदक्पार्श्वयोस्तस्य प्रादक्षिण्येन वंशगान् ॥ ११२ ॥
 दक्षिणस्यां न कुर्वीत विदशानप्युदङ्मुखान् ।
 चैत्यशान्तिसभा यज्ञमातृप्रथमयान्विताः (?) * ॥ ११३ ॥
 इत्यमी कथिताः सम्यग् ये यथादिङ्मुखाः सुराः ।
 दिक्षु दिक्षु बहिर्ये स्पृस्नानिद्रानां प्रचक्ष्महे ॥ ११४ ॥

१. 'सहोदरी'. २. 'अन्तेयेते पु'. ३. 'प्राद' ख. पाठः । ४. 'प्रमथया क. पाठः ।

१ 'पश्यतस्तौ पुरं च यत्' इति पठनीयं भाति ।

* 'प्रमथयान्विताः' इति पठनीयं भाति ।

विशोर्दिनाविनाशस्य माभननस्य च ।

पदस्य च विनाशस्य दिशि पात्नी निरननम् ॥ ११५ ॥

मनसुपागमाविशोर्दिना माभननस्य च ।

पूर्वदिशिदिग्भागे विदधीत निरननम् ॥ ११६ ॥

गर्भमपानुभूतानां माभे प्रनरेनेदम् ।

भद्रकान्याः विदधीत द्याद वेम मेभ्ये च नैके ॥ ११७ ॥

सागस्य नदीनां च दिग्दिग्भुः प्रनारः ।

निलये यधिमपानां विदधीत वरुणस्य च ॥ ११८ ॥

कणिनां भवनं कार्यमपानेतरदिग्भुम् ।

नर्नधरस्य चार्धेय कान्यायन्याध मन्दिम् ॥ ११९ ॥

विज्ञासस्वकन्दसोमानां गथा गथापिण्य च ।

पृथरपृथग् विधान्याः प्रागादाः गीर्ग्यदिग्भुताः ॥ १२० ॥

नगहुरोर्पदेशस्य भिगो वदध मन्दिम् ।

पूर्वाणिरस्यां ककुभि मविधुयं मनोरमम् ॥ १२१ ॥

नदीनामम्पुधीनां च सपन्तामगरस्य च ।

कान्तारेष्वदिगु स्थानं गर्वेषुमुमापतेः ॥ १२२ ॥

निवेश्यन्ते स्वदिग्भागेष्वेवं यस्मिन् गुरोत्तमाः ।

सम्यक्समृद्धिमासाय चिरं नन्दति तत्पुरम् ॥ १२३ ॥

नगरस्य विदूरेऽपि ककुप्सु निखिलास्यपि ।

वाद्यतोऽभिमुखं देवाः शस्यन्ते न परास्मुखः ॥ १२४ ॥

क्रियते यदि भूभागे वंशेन स परास्मुखः ।

विधिमेनं तदा तस्मिस्तज्ज्ञः शास्त्रोक्तमाचरेत् ॥ १२५ ॥

तद्वेपवर्णभूपास्त्रवाहनैरन्वितं मुरम् ।

तद्विचौ प्रकटाकारं नगराभिमुखं लिखेत् ॥ १२६ ॥

वैकङ्कतशमीविल्वैः धीरकण्टकिभिर्द्रुमैः ।

उदपानान्यगारेषु स्यान् दोषोऽन्तरस्थितैः ॥ १२७ ॥

अर्चाश्रितेष्वयं प्रोक्तो विधिर्नालेख्यवर्तिषु ।

क्याः सर्वतोवक्त्रास्तस्माच्चित्रगताः मुराः ॥ १२८ ॥

विधानं यद् यथा प्रोक्तं सुरधाम्नां पुराद् बहिः ।
तत् तथाभ्यन्तरेऽपि स्यात् कार्यं स्वस्वदिगाश्रयम् ॥ १२९ ॥
मध्ये पुरस्य कर्तव्यं गृहमम्भोजजन्मनः ।
निवेशनं तथेन्द्रस्य तथैव हलिकृष्णयोः ॥ १३० ॥
मातृयक्षगणाधीशान् शिवकान् भूतसंज्ञकान् ।
विनापि वेदमभिः कुर्यात् पुरे चत्वरमार्गगान् ॥ १३१ ॥
राज्ञा वर्णाश्रमकलापण्यशिल्पोपजीविनः ।
स्वदिवपदस्थाः कर्तव्यास्ते देवाश्चेच्छता श्रियम् ॥ १३२ ॥
प्रासादे सति भर्ताच्छाशक्तियुक्तो यदापरम् ।
प्रासादं कारयेत् पूर्वं न तदा पीडयेत् सुधीः ॥ १३३ ॥
भतिवेदम प्रतिग्रामं भतिदेवकुलं तथा ।
कुर्यात् भतिपुरं चापि न ग्राह्यमानगुणाधिकम् ॥ १३४ ॥
पूर्वप्रासादतो रुद्रसोमयोर्व्रक्ष्णोऽथवा ।
प्रासादे विहितेऽन्यस्मिन् भवेत् पीडाग्रजन्मनाम् ॥ १३५ ॥
कृते धाम्न्यधिकेऽन्यस्मिन् बद्धैर्वाचस्पतेरुत ।
पुरोधसां भयं विद्याद् ध्रुवं ज्योतिर्विदां तथा ॥ १३६ ॥
धनाधिपामराधीशयमानां वरुणस्य वा ।
अधिके विहिते धाम्नि भयं विद्यान्महीपतेः ॥ १३७ ॥
स्कन्दधाम्नां अधिकेऽन्यस्मिन् विहिते तस्य वेदमनि ।
सेनापतेर्बलानां च पीडा सञ्जायते ध्रुवम् ॥ १३८ ॥
मनापतेरभ्यधिकं हरेर्वान्यत् कृतं गृहम् ।
कर्तुः कारयितुश्च स्याद् वन्धायं च विनष्टये ॥ १३९ ॥
गणेशयक्षकणिनामधिकोऽन्यः कृतो यदि ।
प्रासादः स्यात् तदा नित्यं सेनाशानां महज्जयम् ॥ १४० ॥
स्त्रीनाम्न्यो देवतास्तासां पीडयन्ते यदि वेदमभिः ।
मृत्यानां पुरनारीणां तदा कुर्वन्त्युपद्रवम् ॥ १४१ ॥

पूर्वामरंषु सर्वेषु पीडितेष्वमरालयः ।

अन्यैस्तद्विभिनां पीडा चैतर्ह्यर्था चैतयपीडितः ॥ १४२ ॥

हीनाधिकप्रमाणेषु दुर्निविष्टेषु धामसु ।

कर्तुः कारयितुः पीडा स्यान्न पूजा तथास्य च ॥ १४३ ॥

नैवातिसंभृतं कुर्यात् स्वल्पमल्पामरालयम् ।

पुरं चानाश्रितं कुर्याद् वेधभागाश्रितं नच ॥ १४४ ॥

ज्येष्ठमध्यकानिष्ठानि नवपदत्रिपदान्तरे ।

सुरवेष्मानि कुर्वीत दोषायापरथा पुनः ॥ १४५ ॥

कथितोऽयं विधिः स्वैः स्वैस्त्रिदशानां निवेशने ।

यद्दिनिवेशनात् स्वेच्छं विदध्यादमरालयम् ॥ १४६ ॥

नगरेषु समग्रेषु ग्रामेषु निखिलेषु च ।

खेटकेषु च सर्वेषु सामान्योऽयं विधिः स्मृतः ॥ १४७ ॥

इत्युक्त एष नगरोपगतः सुराणां

स्वस्वभगविहितः पदसन्निवेशः ।

ब्रूमो विभागमधुना गृहदेवतानां

सम्यक् शुभाशुभफलप्रविभागयुक्तम् ॥ १४८ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणयज्ञधारापरनाम्नि वास्तुशाले

पुरनिवेशो दशमोऽध्यायः ॥

अथ वास्तुत्रयविभागो नामैकादशोऽध्यायः ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विभक्ते नवधा ततः ।

मध्ये महाद्युतिर्गङ्गा विधेयो नवभिः पदैः ॥ १ ॥

तस्मादनन्तरं प्राच्यां पश्यद्दः कीर्तितोऽयमा ।

आग्नेयकर्णे सवितृसावित्री पदिकायुग्मा ॥ २ ॥

ब्रह्मणोऽनन्तरं याम्ये विवस्वान् पदपदाधितः ।
 नैर्ऋते पदिको कर्णे जयेन्द्रो कथितायुभौ ॥ ३ ॥
 पदपदः स्यात् ततो मित्रः काष्ठायां पत्युरम्मसः ।
 कर्णेऽपरोत्तरे यक्ष्मा रुद्रश्च पदिकायुभौ ॥ ४ ॥
 पद्भिः पदेस्ततः सौम्ये निधनः पृथिवीधरः ।
 ओषस्तेषांपवत्सश्च पदिकावीशदिग्गता ॥ ५ ॥
 इत्यन्तःसंश्रया देवाः श्रोक्ता ब्रूमो बहिःस्थितान् ।
 ज्ञेयं प्रदक्षिणं तेषां स्थानं पूर्वोत्तरादितः ॥ ६ ॥
 अग्निस्तदनु पर्जन्यो जयन्तश्चेन्द्र एव च ।
 रविः सत्यो भृशश्चेति नमस्तस्मान् नतोऽनिलः ॥ ७ ॥
 पूषाख्यो वितथाख्यश्च गृहक्षतयमावध ।
 गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगः पितृगणम्वतः ॥ ८ ॥
 दौवारिकोऽयं सुग्रीवः पुण्ड्रन्तो जलेभ्यः ।
 असुरः शोपनामा च पापयक्ष्मा नवः परम् ॥ ९ ॥
 रोगो नागश्च मृग्यश्च महादः सोम एव च ।
 परकोऽयादिर्निर्दत्त्यमानेति पददेवताः ॥ १० ॥
 बह्वर्वायाः पितृणां च व्याधेर्धैव क्रमाद् बहिः ।
 चरफी च विदारी च पूतना पापराक्षसी ॥ ११ ॥
 पदभोगोऽस्मि नैनामा म्यान्मेव हि केवलम् ।
 पदभोगमथ ब्रूमो बहिःस्थानां नमःसदाम् ॥ १२ ॥
 तत्रार्ष्टो द्विपदार्ष्टिना जयन्तो भूज एव च ।
 विनयो भृङ्गसुग्रीवगोपमुग्याम्वतथादितः ॥ १३ ॥
 एभ्यः क्षेपा बहिर्ये तु नैभ्यः पदभूजः सुगः ।
 एषान्तीतिपदे मोक्तो देवतानां पदप्रमः ॥ १४ ॥
 पुरुरभीकृते धेये दक्षधा मविमानिने ।
 धेरेऽप्यनपरो वास्तुर्ब्रूमोऽन्दाप्यमगमिनिम् ॥ १५ ॥

दिष्टगुणिते माये पदमर्तं विनामदः ।

भुवने भनयते पाप्मा पतुर्गुणितमर्गमा ॥ १६ ॥

विचरन्तांश्च मित्रस्य नद्वयं वृष्टिर्गामृतः ।

भोगमिच्छन्ति न तेनामर्गस्य इव मृत्युः ॥ १७ ॥

सविप्रायापचन्मान्ता ये च मीनाः गुणैरमाः ।

गर्भकानीनिहं नद्वयं तेषां भोगः पटाष्टकम् ॥ १८ ॥

अन्यन्तरिक्षपचना मृगयं विर्गोर्गितः ।

रोगोर्जितिनस्तथाभ्यर्गदभानां परिः स्थिताः ॥ १९ ॥

पतुर्विगतिकृता ये पर्मन्यायाः गुणैरमाः ।

अदिग्यन्ता द्विपदिकांस्ते जेषं प्राक् प्रमायितम् ॥ २० ॥

पतुस्त्रीकृते शेषं पूर्ववद् भानितेष्टमिः ।

पतुःपष्टिपदो वाम्तुधतुःपष्ट्या पदभवेत् ॥ २१ ॥

अस्मिन् पदानि चत्वारि भुनक्त्यन्नः विनामदः ।

अर्यमायाः गुणश्चायं द्वे द्वे मध्यगताः पदे ॥ २२ ॥

मध्येष्टां वाद्यतोष्टां ये स्थिताः कर्णेषु चाष्टगु ।

ये देवाः सर्व एवात्र ते पदार्थभुजः स्मृताः ॥ २३ ॥

पर्मन्योश्च भृशः पूषा भृशर्दोवारिको तथा ।

शोपनागादितिप्रान्ताः स्युरध्यर्धपदसृष्टः २४ ॥

जैयन्तादिषु § वाद्येषु चरकान्तेषु कीर्तिता ।

मत्येकं षोडशस्वत्र सुरेषु द्विपदस्थितिः ॥ २५ ॥

सिरां वह्निपदादूर्ध्वं नयेत् पितृपदान्ततः ।

वाद्याशानिर्गतां चैनां रोगनामानमानयेत् ॥ २६ ॥

द्विनाम्रः प्रापयेद् मृगं भृक्षात् सुग्रीवमानयेत् ।

ततोऽदिति तां गमयेद् द्विनामानं प्रवेशयेत् ॥ २७ ॥

१. 'रः धयः ।', २. 'स्तोः' क. पाठः । ३. 'द्विनामादि' ख. पाठः ।

§ 'द्विनामादिस्थिति'ति पाठे द्विनामशब्दो जयन्तपर्यायः ।

सौराद् याम्यं पदं नीत्वा वारुणं प्रापयेत् ततः ।

नयेत् पदं ततः सौम्यं तत आदित्यमानयेत् ॥ २८ ॥

भृशदानीय वितथं शोपाख्यं वितथादथ ।

शोपान्मुख्यं समानीय नयेत् तस्मात् पुनर्भृशम् ॥ २९ ॥

ये विमागाः समुद्दिष्टा यथासङ्ख्येन तैरिह ।

यज्ञामरवृणां वास्तुं समस्तं विभजेत् सुधीः ॥ ३० ॥

देवैः सर्वैरप्यमीभिर्विशोकः प्रीत्युत्कर्षादित्यमालोक्यतेऽसौ ।

कृत्स्नानेपोऽप्यञ्जपत्रापताक्षः पश्यत्येतान् स्फारितेनेक्षणैः ॥ ३१ ॥

इति मदारजाधिराजश्रीभोजदेवधिरचिते समराङ्गणस्वधारापरलाक्षि वास्तुशास्त्रे

वास्तुत्रयविभागो नाम एकादशोऽध्यायः ॥

अथ नाड्यादिसिरादिविकल्पो नाम द्वादशोऽध्यायः ।

अर्थाभिधीयते वास्तुः कनीयान् षोडशास्पदः ।

पदैः षोडशभिः स स्यात् तत्र देवान् प्रचक्ष्मेह ॥ १ ॥

भुङ्क्ते मध्ये स्थितो मुख्यः पदमेकं सुरोत्तमः ।

क्लृप्तं पदचतुर्भागीश्चतुर्भिश्चतुराननः ॥ २ ॥

पदार्धभागभोक्तारश्चत्वारोऽपि सुरोत्तमाः ।

अर्यमा च विवस्वाश्च मित्रश्च क्षमाधरोऽपि च ॥ ३ ॥

सवित्राद्यापवत्सान्ता येऽष्टौ कोणेषु वेधसः ।

चतुर्भागेभ्यस्तैः स्युस्त्रिंशस्तपनत्वयः ॥ ४ ॥

चतुर्(र्धा?)र्षी(र्षी?)शादिकोणेषु ये स्थिताः क्रमशः सुराः ।

अष्टभागभुजस्तैः अष्टौ विनिर्दिष्टा मनीषिभिः ॥ ५ ॥

ये तथादितिपर्यन्ताः पर्जन्याद्याः सुरोत्तमाः ।

तेऽष्टौ चतुर्भागेभ्यो विद्वद्भिरिह कीर्तिताः ॥ ६ ॥

चरकान्ता जयन्ताद्या ये बाह्यस्थितयोऽमराः ।

भोगोऽर्धपदिकस्तेषां षोडशानामपि स्मृतः ॥ ७ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे त्रयस्त्रिंशद्विभाजिते ।

अन्त्यपद्विद्वयं सार्धं चरकयाद्यर्थमुत्सृजेत् ॥ ८ ॥

अन्तरे वीथिकामर्धपदिकामुत्सृजेत् ततः ।

मध्ये तु सप्तविंशत्या भागैर्वास्तु विभाजयेत् ॥ ९ ॥

एकोनत्रिंशता युक्तं पदानां शतसप्तकम् ।

यद् भवेत् तत्र गर्भे स्यादेकाशीतिपदः स्वभूः ॥ १० ॥

अष्टादशपदाश्चाष्टौ चापप्रभृतयः पृथक् ।

अर्थमाद्यं चतुःपञ्चाशत्पदं स्याच्चतुष्टयम् ॥ ११ ॥

ईशादयस्त्वदित्यन्ता बाह्या नवपदाः सुराः ।

देशानां सन्निवेशेऽसौ साहस्रो वास्तुरुच्यते ॥ १२ ॥

अथोच्यते वृत्तवास्तुवृत्तप्रासादहेतवे ।

एकश्चतुःपष्टिपदभागः शतपदोऽप्यैरः ॥ १३ ॥

अष्टधा भाजिते वृत्तविष्कम्भे भागिकान्तरान् ।

चतुरः परिधीन् कुर्यान्मध्यवृत्तं द्विभागिकम् ॥ १४ ॥

स्याद् बहिर्वृत्तबलयमष्टाविंशतिभागिकम् ।

तदन्तर्वृत्तबलयमष्टाष्टांशोज्झितं क्रमात् ॥ १५ ॥

एवं कृते भवेन्मध्ये ब्रह्मणस्तच्चतुष्पदम् ।

इत्थं चतुःपष्टिपदो वृत्तवास्तुरुदाहृतः ॥ १६ ॥

दशधा भाजिते वृत्तविष्कम्भे भागिकान्तराः ।

कार्याः परिधयः पञ्च मध्ये वृत्तं द्विभागिकम् ॥ १७ ॥

बहिस्थं बलयं तस्य भजेत् पदत्रिंशता ततः ।

शेषं चतुःपष्टिपदस्यत्या स्याच्छतवास्तुनि ॥ १८ ॥

देवतापदसदृशमिरनयोश्चतुरश्रवन् ।

एवं कार्यवशात् कार्या वास्तवोऽन्येऽपि धीमता ॥ १९ ॥

१. 'न्ते पदविक्रयं' क. पाठः । २. 'लायोः य' ३. 'सरः' ख. पाठः ।

४. 'वृत्तविष्कम्भे विभाज्य भा' ५. ए५, ६. 'स्याद्वृत्तवा' क. पाठः ।

ज्येष्ठे षष्ठे चाष्टमे षोडशांश्च वृत्तवत् ।
वृत्तायतेऽर्धचन्द्रे च वास्तौ पदविभाजनम् ॥ २० ॥

एक एव पुमानेषु बहुधा परिकल्पितः ।
सर्वस्मिन्नपि संस्थाने विभक्ते लक्षयेत् ततः ॥ २१ ॥

शरीरं वास्तुपुंसोऽस्य गुणदीपा भवन्ति यत् ।
मुखं मूर्धा ततः श्रोत्रे दृक्ताल्बोष्ठरदाः क्रमात् ॥ २२ ॥

वक्षः कण्ठः स्तनौ नाभिर्मेढ्रमुष्कावयो गुदम् ।
बाहू मवाहू पाणी स्निग्धगुह्यं पदद्वयम् ॥ २३ ॥

कल्पयेदेवमेतेन स भवेत् पुरुषाकृतिः ।
सिरावंशानुवंशाश्च सन्धयः सानुसन्धयः ॥ २४ ॥

मर्माण्यथ महावंशा लक्ष्या वास्तुशरीरगाः ।
सिराः कर्णगता याः स्युस्ता नाड्यः परिकीर्तिताः ॥ २५ ॥

पदस्य षोडशो भागस्तत्प्रमाणं प्रकीर्तितम् ।
महावंशौ भावप्रतीच्यौ याम्योदीच्यौ च मध्यगौ ॥ २६ ॥

प्रमाणं पञ्चमो भागः पदस्योदाहृतं तयोः ।
वंशास्तेऽस्मिन् समुद्दिष्टा रेखा याः स्युर्मुखापताः ॥ २७ ॥

यास्तिर्यगापता रेखास्तेऽनुवंशाः प्रकीर्तिताः ।
सम्पाता ये स्युरेतेषां मर्म तत् संप्रचक्षते ॥ २८ ॥

उपमर्माणिं तान्याहुः पदमध्यानि यानि हि ।
भागोऽष्टमोऽथ दशमो द्वादशः षोडशोऽपि च ॥ २९ ॥

पदतो मानमिष्टं स्याद् वंशादीनामनुक्रमात् ।
वंशाष्टकस्य यः सन्धिः स सन्धिरिति कीर्तितः ॥ ३० ॥

ये पुनः स्युस्तदङ्गानां प्रोक्तास्ते चानुसन्धयः ।
चालाप्रतुल्यं सन्धीनां प्रमाणं परिचक्षते ॥ ३१ ॥

तदूर्ध्वमनुसन्धीनां प्रमाणं समुदीरितम् ।
पञ्चैतानि सन्त्यज्य वास्तुविद्याविघ्नारदः ॥ ३२ ॥

द्रव्याणि प्रयत्ना नित्यं स्थपतिर्विनिवेशयेत् ।

महावंशस्य नाक्रान्तिं कुर्याद् द्रव्येण केनचित् ॥ ३३ ॥

इतरेषु पुनर्द्रव्यं मध्यवंशेषु सन्त्यजेत् ।

महावंशसमाक्रान्तौ भवेत् स्वामिवधो ध्रुवम् ॥ ३४ ॥

वर्षेण तपनाद् भीतिं वंशानां पीडनाद् विदुः ।

उपमर्माणि रोगाय मर्माणि कुलहानये ॥ ३५ ॥

उद्वेगायार्थनाशाय सिराश्च स्युः प्रपीडिताः ।

कलिः स्यात् सन्धिविद्धेषु पीडितेष्वनुसन्धिषु ॥ ३६ ॥

तस्मादेतानि सर्वाणि पीडितान्युपलक्षयेत् ॥ ३६ १/२ ॥

ज्ञात्वा सिराः सानुसिराश्च नाडीवंशानुवंशानपि वास्तुदेहे ।

यन्नेन मर्माणि फलानि चैषां वेधं त्यजेद् यस्तमुपैति नापत् ॥ ३७ १/२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

नाडीवंशानुवंशानां सिरानुसिरामर्मानुमर्मवेधविकल्पो नाम

द्वादशोऽध्यायः ॥

अथ मर्मवेधस्त्रयोदशोऽध्यायः ।

एकाशीतिपदो यः स्यात् तथा शतपदश्च यः ।

चतुःषष्टिपदो यश्च वास्तुरत्न त्रिभोदितः ॥ १ ॥

यद् येन विभजेत् तेषु तदिदानीं प्रचक्ष्महे ।

यानि मर्माणि चैतेषां कथ्यन्त इह तान्यपि ॥ २ ॥

वर्णिनां भवनादीनि निवेशा राजवेधनाम् ।

एकाशीतिपदेनेन्द्रस्थानं च विभजेत् गुप्तीः ॥ ३ ॥

मातादा विविधास्तद्वद् विविधाश्च मण्डपाः ।

तान् मापयेत् शतपदप्रविभागेन बुद्धिमान् ॥ ४ ॥

यः पुनः स्याच्चतुःषष्टिपदस्तेन विभाजयेत् ।
 नरेन्द्रशिखिरग्रामखेटादि नगरादि च ॥ ५ ॥
 अन्तस्त्रयोदश मुरा द्वार्त्रिंशद् वास्ततश्च ये ।
 तेषां स्थानानि मर्माणि सिरा वंशाश्च तेषु तु ॥ ६ ॥
 मुखे हृदि च नाभौ च मूर्ध्नि च स्तनयोस्तथा ।
 मर्माणि वास्तुपुंसोऽस्य पण्णहान्ति प्रचक्षते ॥ ७ ॥
 वंशानुवंशसम्पाताः पदमध्यानि यानि च ।
 देवस्थानानि तान्याद्ये पदपोडशकान्विते ॥ ८ ॥
 देवस्थानानि सम्पाताश्चतुःषष्टिपदे पुनः ।
 तथैकाशीतिपदिके पदान्तशतिकाऽपि च ॥ ९ ॥
 चतुर्ध्रुपि विभागेषु सिरा याः स्पृश्वतुर्दिशम् ।
 मर्माणि तानि चोक्तानि द्वारमध्यानि यानि च ॥ १० ॥
 भित्तिविस्तृतमध्येन यद्वा मध्येन दारुणः ।
 मर्म यत् पीड्यते येन गृहे तत्रोच्यते कलम् ॥ ११ ॥
 द्वारं वा भित्तिभिर्वापि मर्मणां परिपीडनात् ।
 दौर्गत्यं गृहिणः प्राहुः कुलहानिमथापि वा ॥ १२ ॥
 भवेत् स्वामिक्षयः स्तम्भस्तुलाभिः स्त्रीपरिक्षयः ।
 स्तुपावधो जयन्तीभिर्वन्धुनाशश्च सङ्ग्रहः ॥ १३ ॥
 मर्मस्थानगर्तः कार्यमर्तुः कायो निपीड्यते ।
 मुहुरिष्टैर्मिच्छन्ति सन्धिपालैश्च तद्विदः ॥ १४ ॥
 नागवागैर्धनोच्छेदो नागदन्तः मुहूर्त्तयः ।
 फलिच्छकैश्च मर्मस्थैः प्रेय्याणां क्षयमादिशत् ॥ १५ ॥
 पद्ददारुकाप्यनुसिरागवाक्षालोकनानि च ।
 मर्ममध्योपगान्येनान्पावहन्ति धनक्षयम् ॥ १६ ॥
 द्वारद्रव्यतुलास्तम्भनागदन्तगवाक्षकैः ।
 द्वारमभ्यादितं रोगकुलपीडाधनक्षयाः (१७) ॥ १७ ॥

तान् मापयेच्छतपदप्रविभागेन

प्रकः स्याद् दक्षिणे वामे भुजे सौमः प्रणिष्ठितः ।
 मोहन्द्रचक्रौ मापवन्मावम्भोग्मि स्थिता ॥ ३ ॥
 स्तनेऽर्ज्यमा दक्षिणे स्याद् वामे च पृथिवीधरः ।
 यक्ष्मा गंगध नागध मुल्यो भद्राद् दन्यमौ ॥ ४ ॥
 दक्षिणेनग्मेतस्य बाहुं देवाः समाश्रिताः ।
 गन्धो भृशो नभो वायुः पूषा चेन्मथ दक्षिणम् ॥ ५ ॥
 पश्चापि बाहुमेतस्य संश्रिताग्निदिर्वाक्रमः ।
 सावित्रमविनागं च रुद्रशक्तिधरावपि ॥ ६ ॥
 पञ्चारोऽग्नी क(लाधि?)पाणि)म्याः करयोद्दि च म्भूः ।
 वितर्थाक्रःधर्ता पार्श्वे दक्षिणेऽस्य व्यवस्थिता ॥ ७ ॥
 वामे पुनः स्थितावस्य देवा शोषामुगभिर्ता ।
 मित्राभिर्षो विरम्भाश्च द्वारपुण्ड्रमाश्रिता ॥ ८ ॥
 मेदमन्मिथ्यावस्य गुगर्चिन्द्रजपाभिर्षो ।
 यमश्च वरुणधोरोः प्रमाद दक्षिणवापयोः ॥ ९ ॥
 गन्धर्वभृङ्गो ममृगो जह्वां मज्जामधेनगम् ।
 द्वाग्धनुर्ग्रीवपुष्पाज्याः संश्रिताः पितरौर्जह्वाः ॥ १० ॥
 पृथ्वीनिषदस्येऽदिश्विनागाधिते शिरः ।
 मोहन्दीर्मथिते विद्याधनुःपद्मिपदस्य तु ॥ ११ ॥
 एकाशीनिषदज्ञातो वायुः प्रतपदाभिधः ।
 यः पोटप्रपदः स स्यादनुष्णाष्टिपदोऽवः ॥ १२ ॥
 वस्ये च एव देवानां स्थितो मध्याज्जमेधवः ।
 स सरस्माननोऽवेवन्मविभर्ता जगतां प्रभुः ॥ १३ ॥
 योऽग्रे वारिहोमः स सर्वभूतेशो हरः ।
 वज्रध्वजाय यथायं हृदिमान्मृदुर्दार्तरः ॥ १४ ॥
 जयन्तस्तु दिनामास्यः परवरो भगवानग्निः ।
 मोहन्तश्च गुगर्गीनो हनुमानो विषदेनः ॥ १५ ॥
 भार्गव्यं पुनोऽप्यग्निं विराजन्तपदस्यवदम् ।

ॐ नमः शिवाय ॥ ३ ॥ पादमय प्रवेशन ।

द्वारमध्येषु पदद्वारमध्येष्वपि च मुख्यः ॥ १८ ॥

कर्णद्रव्यादिभिर्विन्देऽन्वतदेव फलं विदुः ।

शय्यानुवंशविहिता गृहिणां कुलनाशिनी ॥ १९ ॥

क्षयावहा नागदन्ता भर्तुः शय्योचितानगाः ।

वातायनैरथ स्तम्भैर्यं विद्धा नागदन्तकाः ॥ २० ॥

ते शस्त्रभीतिदा भर्तुर्यद्वा चौरभयप्रदाः ।

द्रव्यधान्यविनाशाय शोकाय कलहाय च ॥ २१ ॥

गृहमध्यगतं द्वारं भवेत् स्त्रीदूषणाय च ।

द्रव्येणान्यतरेणापि महामर्म निपीडितम् ॥ २२ ॥

भवेत् सर्वस्वनाशाय गृहिणो मरणाय च ।

अंशुकाधोर्ध्ववंशाश्च तुम्बिकाः सेन्द्रकीलकाः ॥

पुरप्रासादगेहानां वेधेऽप्येते न दोषदाः ॥ २३ ॥

इत्थं सुरक्षितिपवर्णगृहाश्रितोऽयं

भेदः पदेऽखिलमर्मगतो व्यथश्च ।

उक्तः पृथक्पृथगमुष्य फलं च सम्यग्

ब्रूमोऽथ वास्तुपुरुषाद्भविभागमत्र ॥ २४ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्ग

मर्मवेधो नाम त्रयोदशोऽ

राजनिवेशः पञ्चदशोऽध्यायः ।



मिश्रो हलधरो माली रुद्रस्तूक्तो महेश्वरः ।

राजयक्ष्मा गुहः प्रोक्तः क्षितिध्रोऽनन्त उच्यते ॥ ३० ॥

चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी ।

रक्षोयोनिभवा धेता देवतानुचरीविंदुः ॥ ३१ ॥

इत्येष वास्तुदेवानां निघण्डुः परिकीर्तितः ।

धो मूर्ध्नि हो दशोर्मध्ये सो घ्राणे चिबुके तु पः ॥ ३२ ॥

दाः कण्ठे हृदये वः स्याल्लकारो नाभिदेशगः ।

रंफो वस्तौ यकारस्तु मेद्रे मः * (पुण्यमुष्क)कावुमौ ॥ ३३ ॥

नकार ऊरुर्णो जानु अकारः पिण्डिकाश्रितः ।

(डंङ्)कारो गुल्फयोरन्ते पकारोऽङ्गघ्नितले स्मृतः ॥ ३४ ॥

उक्तानि वास्तुपुरुषस्य यथावदित्थमज्ञानि वास्तुपददेवतनामभेदाः ।

वर्णाश्च वास्त्ववयवेष्विह पोदृशैव द्रूमोऽथ दैवतवशेन पुरे निवेशम् ॥ ३५ ॥

इति महाराजाधिराजभीमोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

पुरुषाङ्गदेवतानिघण्डुक्षराङ्गनिर्णयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥

अथ राजनिवेशो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

कृते पुरनिवेशेऽथ चतुःषष्टिपदाश्रये ।

नियुक्तपरित्वासालगोपुराट्टालकैऽपिच ॥ १ ॥

विभक्तमध्ये परितः प्रविभाजितचत्वरे ।

क्रमान्तर्बहिःकृत्स्नदेवतायतनस्थिता ॥ २ ॥

प्रागुदक्प्रवणे देशे प्राग्द्वाराभ्युन्नतेऽथवा ।

यद्गःश्रीविजयाधायि मैत्रं पदमधिष्ठितम् ॥ ३ ॥

यथावर्णैकमायातं चतुरर्थं समं शुभम् ।

पुरमध्यादपरतोदिक्स्थं कुर्यान्नुपालयम् ॥ ४ ॥

१. 'म' क. पाठः । २. 'अगुल्फगणकारोद्भोः सिकाण्डेऽर्धम (?)' ल. पाठः ।

३. 'निवासम्' क. पाठः । ४. 'वर्ण' ख. पाठः ।

पाञ्चनाभः स्मृता देवस्तत्रतः समुदाहृतम् ।
 पाञ्चनां वायुसिद्धिः पूषा मानसगः स्मृतः ॥ १७ ॥
 अथर्मा वितथाग्नयः स्यान् कच्छेप्रतिपः सुतः ।
 शृङ्गानः पुनर्गोत्र म चन्द्रतनयो वृषः ॥ १८ ॥
 प्रेताभिर्गो मतः श्रीमान् यमो वैवस्वतश्च सः ।
 गन्धर्वो भगवान् देवो नाभः पश्चिमीर्त्तिनः ॥ १९ ॥
 भूहगजमिहेन्द्रान्नि शासमं निर्ऋतेः सुतम् ।
 यो मृगोऽग्निधनन्तः स स्वयंभूर्धर्म इत्यपि ॥ २० ॥
 पितरस्तु स्मृता देवाः पितृशोकनिवागिनः ।
 स्मृता देवाग्निर्गो नन्दी प्रमथानामर्षीश्वरः ॥ २१ ॥
 आदिः मजापतिः मेघा मनुः सुग्रीव ईरितः ।
 पुष्पदन्तस्तु विनतातनयः स्यान्महाजवः ॥ २२ ॥
 वरुणः पाथमां नाथो न्योक्तापलः स कीर्त्तिनः ।
 असुरो राहुरेकन्दुमर्दनः सिंहिकान्मजः ॥ २३ ॥
 शोपस्तु भगवानेष सूर्यपुत्रः शनैश्चरः ।
 पापयक्ष्मा क्षयः प्रोक्तो रोगस्तु कथितो ज्वरः ॥ २४ ॥
 भुजङ्गमानामपिपः श्रीमान् नागस्तु वासुकिः ।
 त्वष्टा स्यान्मुख्यसंज्ञोऽय विश्वकर्माभिपथ सः ॥ २५ ॥
 चन्द्रो भन्वाट १ इत्युक्तः कुबेरः सोमसंज्ञितः ।
 चरको व्यवसायाख्यः श्रीरिहादितिसंज्ञिका ॥ २६ ॥
 दितिरवोच्यते शर्वः शूलभृद् वृषभध्वजः ।
 हिमवानाथ इत्युक्त आपवत्स उमा स्मृता ॥ २७ ॥
 आदित्यस्त्वर्यमा वेदमाता सावित्र उच्यते ।
 * देवी गङ्गाव विद्वद्भिः सवितेति प्रकीर्तिता ॥ २८ ॥
 मृत्युः शरीरहर्तासौ विवस्वानिति स स्मृतः ।
 जयाभिपस्तु वज्रीति-स्यादिन्द्रो बलवान् हरिः ॥ २९ ॥

१. 'भन्वाट' क. पाठः ।

§ 'भन्वाट' इति प्राक् पाठः ।

* इति आख्यायिका पञ्चकं ख. पुस्तके न पश्यते ।

राजनिवेशः पञ्चदशोऽध्यायः ।

मिश्रो हलधरो माली रुद्रस्तुक्तो महेश्वरः ।
राजयक्ष्मा गुहः प्रोक्तः क्षितिध्रोऽनन्त उच्यते ॥ ३० ॥
चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी ।
रक्षोयोनिभवा हेता देवतानुचरीविंदुः ॥ ३१ ॥
इत्येष वास्तुदेवानां निघण्डुः परिकीर्तितः ।
धो मूर्ध्नि हो दशोर्मध्ये सो घ्राणे चिबुके तु पः ॥ ३२ ॥
जः कण्ठे हृदये चः स्याल्लकारो नाभिदेशगः ।
रेफो वस्तौ यकारस्तु मेद्रे मः * (पुण्यमुष्क)काकुमौ ॥
नकार ऊरुणो जालु अकारः पिण्डिकाश्रितः ।
(ङँङ)कारो गुल्फयोरन्ते पकारोऽङ्घ्रितले स्मृतः ॥ ३४ ॥
उक्तानि वास्तुपुरुषस्य यथावदित्थमज्ञानि वास्तुपददेवतनामभेदा
वर्णाश्च वास्त्ववयवेऽपि षट् पोटशैव भूमौऽथ देवतवशेन पुरे निवेशम्
इति महाराजाधिराजधीमोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तु
पुरुषाङ्गदेवतानिघण्डुक्षराङ्गनिर्णयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः

अथ राजनिवेशो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

कृते पुरनिवेशेऽथ चतुःपट्टपदाश्रये ।
नियुक्तपरिखासालगोपुराट्टालकेऽपि च ॥ १ ॥
विभक्तमध्ये परितः प्रविभाजितचत्वरैः ।
क्रमादन्तर्बहिःकन्तदेवतायतनस्थितौ ॥ २ ॥
प्रागुदक्प्रवणे देशे प्राग्द्वाराभ्युक्षतेऽथवा ।
यद्वाःश्रीविजयाभायि मैत्रं पदमाधिष्ठितम् ॥ ३ ॥
यथावर्णक्रमायत्तं चतुर्ध्रं समं शुभम् ।
पुरमध्यादपरतोदिक्स्थं कुर्यान्नुपालयम् ॥ ४ ॥

१. 'म' क. पाठः । २. 'ङगुलमष्टकारोदोः विचारोऽङ्घ्रि (?)' ख. पाठः ।
३. 'निवासम्' क. पाठः । ४. 'वर्ण' ख. पाठः ।

याऽन्तारिक्षः स्मृता दयस्तन्मभः समुदाहृतम् ।
 मारुतो वायुरुद्दिष्टः पूषा मातृगणः स्मृतः ॥ १७ ॥
 अधर्मा वितथाख्यः स्यान् कलेशप्रतिपः सुतः ।
 गृहक्षतः पुनर्योऽत्र स चन्द्रतनयो बुधः ॥ १८ ॥
 प्रेताधिपो मतः श्रीमान् यमो वैवस्वतश्च सः ।
 गन्धर्वो भगवान् देवो नारदः परिकीर्तितः ॥ १९ ॥
 भृङ्गराजमिहेच्छन्ति राक्षसं निर्ऋतेः सुतम् ।
 यो मृगोऽस्मिन्ननन्तः स स्वयंभूर्धर्म इत्यपि ॥ २० ॥
 पितरस्तु स्मृता देवाः पितृलोकनिवासिनः ।
 स्मृतो दैवारिको नन्दी प्रमथानामभीश्वरः ॥ २१ ॥
 आदिः प्रजापतिः स्रष्टा मनुः सुग्रीव ईरितः ।
 पुष्पदन्तस्तु विनतातनयः स्यान्महाजवः ॥ २२ ॥
 वरुणः पाथसां नाथो लोकपालः स कीर्तितः ।
 असुरो राहुरर्केन्दुमर्दनः सिंहिकात्मजः ॥ २३ ॥
 शोषस्तु भगवानेष सूर्यपुत्रः शनैश्चरः ।
 पापयक्ष्मा क्षयः प्रोक्तो रोगस्तु कथितो ज्वरः ॥ २४ ॥
 भुजङ्गमानामधिपः श्रीमान् नागस्तु वासुकिः ।
 त्वष्टा स्यान्मुख्यसंज्ञोऽत्र विश्वकर्माभिधश्च सः ॥ २५ ॥
 चन्द्रो भल्वाटः इत्युक्तः कुबेरः सोमसंज्ञितः ।
 चरको व्यवसायाख्यः श्रीरिहादितिसंज्ञिका ॥ २६ ॥
 दितिरवोच्यते शर्वः शूलभृद् वृषभध्वजः ।
 हिमवानाप इत्युक्त आपवत्स उमा स्मृता ॥ २७ ॥
 आदित्यस्त्वय्यमा वेदमाता सावित्र उच्यते ।
 * देवी गङ्गाव विद्वद्भिः सवितेति प्रकीर्तिता ॥ २८ ॥
 मृत्युः शरीरहर्तासौ विवस्वानिति स स्मृतः ।
 जयाभिधस्तु बच्चीति स्यादिन्द्रो बलवान् हरिः ॥ २९ ॥

१. 'मत्ता म' क. पाठः ।

§ 'भल्वाट' इति प्राक् पाठः ।

* इति आख्यायिका न पठ्यते ।

राजनिवेशः पञ्चदशोऽध्यायः ।

मित्रो हलधरो माली रुद्रस्तूक्तो महेश्वरः ।
राजयक्ष्मा गुहः प्रोक्तः क्षितिधोऽनन्त उच्यते ॥ ३० ॥
चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी ।
रक्षोयोनिभवा हेता देवतानुचरीविंदुः ॥ ३१ ॥
इत्येव वास्तुदेवानां निघण्डुः परिकीर्तितः ।
धो मूर्ध्नि हो दशोर्मध्ये सो घ्राणे चिबुके तु पः ॥ ३२ ॥
शः कण्ठे हृदये वः स्याल्लकारो नाभिदेशगः ।
रेफो वस्तौ यकारस्तु मेद्रे मः * (पुण्यमुष्क)काबुर्मा ॥ ३३ ॥
नकार उरुर्णो जानु अकारः पिण्डिकाश्रितः ।
(हंङ्)कारो गुल्फयोरन्ते पकारोऽङ्घ्रितले स्मृतः ॥ ३४ ॥

उक्तानि वास्तुपुरुषस्य यथावदित्थमज्ञानि वास्तुपददेवतानामभेदाः
वर्णाश्च वास्तव्यवेष्विह षोडशैश्च त्रयोऽथ देवतवशेन पुरे निवेशम् ॥

इति महाराजाधिराजधर्मोन्नतदेवविरचिते समराङ्गणयज्ञधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

पुरुषाङ्गदेवतानिघण्डुक्षराङ्गनिर्णयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥

अथ राजनिवेशो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

कृते पुरनिवेशेऽथ चतुःषष्टिपदाश्रये ।
नियुक्तपरित्वासालगोपुराट्टालकेऽपिच ॥ १ ॥
विभक्तश्च परितः प्रविभाजितचत्वरे ।
क्रमादन्तर्बहिःकलस्रदेवतायतनस्थिता ॥ २ ॥
मागुद्वप्रवणे देशे प्राग्द्वाराभ्युच्यतेऽथवा ।
यज्ञःश्रीविजयाधायि मैत्रं पदमाधिष्ठितम् ॥ ३ ॥
यथार्चणक्रमायातं चतुरश्रं समं शुभम् ।
पुरमध्यादपरतोदिक्स्थं कुर्यान्तृपालयम् ॥ ४ ॥

१. 'म' क. पाठः । २. 'हगुल्लगलकारोऽतोः सिकारोऽङ्घ्रि (?)' ग.
३. 'निवासम्' क. पाठः । ४. 'यज्ञ' ख. पाठः ।

दुर्गेषु भवनानां कार्यं यदा दिशोऽपगच्छति ।

विवर्त्यतश्च भगवत्प्रां कार्यमन्तव्यं तदे ॥ ५ ॥

विनन्वाग्निं तथा युक्तं ज्येष्ठं व्याहृदं भुजःशतं ।

मध्यं शतं तु द्वापष्टिः शतं माष्टरमन्निमम् ॥ ६ ॥

ज्येष्ठे पुन विधानस्य ज्येष्ठं राजनिवेशनम् ।

मध्यमे मध्यमे कार्यं कर्तव्यं न कर्त्तव्यम् ॥ ७ ॥

प्राकारपश्चिमागुप्तं नारकान्ति ममन्तव्यः ।

तमहभ्रमनिर्गुहगुहदाद्यान्त्यकान्तिनम् ॥ ८ ॥

एकाग्राल्या पर्दभक्तं विधेयं नृपमन्दिरम् ।

राजमार्गं गमाधिन्य वास्तुद्वारमुदङ्मुराम् ॥ ९ ॥

युवत्यानयेन कर्त्तव्यमन्यदिवर्मभ्रमेऽपि न ।

भद्राक्षपदवर्त्मस्य गोपुरद्वारमिष्यते ॥ १० ॥

तत्पुर्णद्वारविस्तारोऽन्त्यायसम्मितमिष्टम् ।

महेन्द्रं द्वारमिच्छन्ति निविष्टस्य मदीयं ॥ ११ ॥

वैवस्वते पुष्पदन्तमर्यामिण च गृहक्षतम् ।

अन्येष्वेवामपस्तः प्रदक्षिणपदेऽप्यथ ॥ १२ ॥

अन्यान्यपि स्वासु दिक्षु द्वाराण्येवं प्रकल्पयेत् ।

आभिमुख्ये च सर्वेषां शस्यन्ते गोपुराणि च ॥ १३ ॥

तदीयनगरद्वाराद् विशत्यंशोज्जितानि वा ।

पञ्चद्वाराणि सुग्रीवे जयन्ते मुख्यनाम्नि च ॥ १४ ॥

वितथेऽथ भ्रमांस्तद्वद् विदधीत प्रदक्षिणान् ।

वास्तां विभक्ते पुरवत् क्लृप्तेऽपरपदव्रजेः ॥ १५ ॥

तत्र मैत्रपदस्थाने निवेशयावनीपतेः ।

प्रासादः प्राङ्मुखः कार्यो यथावत् पृथिविज्ञयः ॥ १६ ॥

श्रीवृक्षं सर्वतोभद्रं मुक्तकोणमथापरम् ।

यमिच्छेन्नृपतिः कुर्यात् प्रासादं शुभलक्षणम् ॥ १७ ॥

शालापरिक्रमोपेतकर्मान्तरपिचान्वितम् ।
 तत्र प्राच्यां भवेद् गेहमादित्यपदसंश्रितम् ॥ १८ ॥
 धर्माधिकरणं सत्ये व्यवहारेक्षणाय च ।
 भृशे च कोष्ठागारं स्यादम्बरे मृगपक्षिणाम् ॥ १९ ॥
 अग्नेः ककुभमाश्रित्य कार्यं वायोर्महानमम् ।
 सभाजनाश्रयं पूष्णि विदध्याद् भोजनास्पदम् ॥ २० ॥
 सावित्रे वायशाला स्यात् सवितृस्थाश्च वन्दिनः ।
 धर्माणि वितथे कुर्यात् तद्योग्यान्यायुधानि च ॥ २१ ॥
 स्वर्णरूप्यादिकर्मान्तान् विदधीत गृहक्षते ।
 याम्ये दक्षिणतो गुप्तिं कोष्ठागारं च कल्पयेत् ॥ २२ ॥
 प्रेक्षासङ्गीतकानि स्युर्गन्धर्वे वासवेष्टम् च ।
 कार्यो वैवस्वते शाला रथानां दन्तिनां तथा ॥ २३ ॥
 पश्चिमोत्तरभागस्थां वापीमपिच कारयेत् ।
 वा(यौ?)सुग्रीवपदयोर्गन्धर्वस्य च वाद्यतः ॥ २४ ॥
 कुर्यादन्तःपुरस्थानं प्राकास्वलपावृतम् ।
 कुर्यात् तद्गोपुरद्वारमुदगास्यं जयामिधे ॥ २५ ॥
 कार्यः स्थपतिना चैव प्रासादश्चापगाहमुखः ।
 क्रीडादोलालयान् भृङ्गे कुमारीभवनं तथा ॥ २६ ॥
 नृपान्तःपुरमिच्छन्ति मृगे पित्र्ये त्वरस्करम् ।
 नृपस्रीणामुपस्थानमृहमिन्द्रपदे विदुः ॥ २७ ॥
 सुग्रीवपदसंसक्तपरिष्ठागारमिष्टम् ।
 प्रास्थगुर्वावि(ध्यं?)शपधाद्भागं मनोहरम् ॥ २८ ॥
 विधेयानोकवनिका स्नानधाराशृङ्गाणि च ।
 सतापण्डपसंयुक्ताः स्युर्गर्वे च लताशृङ्गाः ॥ २९ ॥
 दाम्नाल्लाभ वाप्यथ पुष्पवीथ्यः मुकान्विताः ।
 पुष्पदन्ते भवेद् य(न?)न्व)कर्मान्तिः पुष्पवेष्टम् च ॥ ३० ॥

वसुणस्य पदे कुर्याद् वापीपानगृहाणि च ।

स्यान् कोष्ठागारमगुरे शोणे त्यायुधमन्दिरम् ॥ ३१ ॥

भाण्डागारं तु सौद्राग्न्ये विदध्यान् स्थपतिः श्रिये ।

उत्सृज्यलजिलायन्त्रभवनं पापयक्ष्मणि ॥ ३२ ॥

दारुकर्मान्तमप्याहुः श्रेयसे राजयक्ष्मणि ।

स्यादोषधेरधिष्ठानं रोगे दिशि नभस्वतः ॥ ३३ ॥

नागानां शस्यते स्थानं पदे नागस्य मूरिमिः ।

भवन्ति मुख्ये व्यायामनाट्यचित्रगृहाणि च ॥ ३४ ॥

गवां स्थानं तथा क्षीरगृहं भल्लाटनामनि ।

उदक्प्रदेशे सौम्यस्य पुरोधःस्थानमिष्यते ॥ ३५ ॥

राज्ञोऽभिषेचनं चात्र दानाध्ययनशान्तयः ।

चामरच्छत्रधाम स्यान्मन्त्रवेदम च भूधरे ॥ ३६ ॥

कार्यिणां चात्र कार्याणि स्थितः पश्येन्नराधिपः ।

विधेया मन्दुराश्वानामुत्तरं पार्श्वमाश्रिता ॥ ३७ ॥

महीधरपदस्यैव यथावद् दक्षिणामुखी ।

कार्या सर्वत्र चाश्वानां शाला राज्ञो यथागृहम् ॥ ३८ ॥

विशतो दक्षिणेन स्याद् वामेन च विपाणिनाम् ।

वैश्वानि राजपुत्राणां विदध्याचरकाभिधे ॥ ३९ ॥

अत्रैव विद्याधिगमशालार्थेषां निवेशयेत् ।

नृपस्य मातुरदितिस्थाने कुर्यान्निवेशनम् ॥ ४० ॥

पृथगत्रैव शिविकाशय्यासनगृहं विदुः ।

नृपद्विपानां शस्ता स्यादापे सदनकल्पना ॥ ४१ ॥

अभिषेचनकं स्थानैर्मिहैव स्याद् विपाणिनाम् ।

आपवेत्सपदे हंसक्रीश्वसारसनादिनाः ॥ ४२ ॥

स्युः फुल्लान्नवनाः स्वच्छसलिलाः सलिलाशयाः ।

पितृव्यमातुलादीनां कार्यं दिनिपदे गृहम् ॥ ४३ ॥

अन्येषामपि चात्रैव सामन्तानां महीपतेः ।
 ऐशान्यामनलस्थाने वोच्छिन्नस्तम्भवेदिकम् ॥ ४४ ॥
 कार्यं देवकुलं चारुं सुश्रिष्टमणिकुट्टिमम् ।
 पर्जन्यस्य पदे होराज्योतिर्विदग्धमिष्यते ॥ ४५ ॥
 जये सेनापतेर्वैश्वं विधेयं विजयप्रदम् ।
 द्वारं प्राकारमाश्रित्य पदेऽर्ज्यम्णः प्रशस्यते ॥ ४६ ॥
 प्राग्दक्षिणाश्रितं शस्त्रकर्मान्तं शस्त्रमत्र च ।
 विमुञ्चेद् ब्रह्मणः स्थानमिन्द्रध्वजयुतं नृणाम् ॥ ४७ ॥
 तत्राशुभानि वैश्वानि निवेशाश्चासुखावहाः ।
 गवाक्षस्तम्भशोभिन्वो विधेयाश्चानुकापतः ॥ ४८ ॥
 सभा यथादिवप्रभवा नृपवैश्वमाभिगुप्तये ।
 सर्वत्र नृपतेः सौधान् नृपसौधस्य सम्मुखा ॥ ४९ ॥
 पश्चाद्भागाश्रिता यद्वा शाला कार्या विपाणिनाम् ।
 इत्यास्पदं सुरपदास्पदकल्पमाद्य-
 मेतद् यथावदनुतिष्ठति यः सदैव ।
 स क्षामिमां भुजबलक्षपितारिपक्षः
 सप्ताम्बुराशिरशर्ना नृपतिः प्रशस्तिः ॥ ५० १/२ ॥

इति महाभारताधिराजभीमोजदेवविरचिते समराज्यवृत्तधारापरनामि धास्तुशब्दे

राजनिवेशो नाम षष्ठदशोऽध्यायः ॥

अथ वनप्रवेशो नाम षोडशोऽध्यायः ।

प्राग्बोदम्बापि गैहार्थं द्रव्यं विधिरदानयेत् ।
 गन्तव्यमेव पिण्येषु मृदुक्षिप्रचरेषु च ॥ १ ॥

१. 'नृप' क. पाठः ।

• पिण्येषु नृपरेषु ।

अकाले पुष्पफलिनो रोगैरपि च पीडितान् ।
 वासभूतानुत्कानां त्यजेदन्धानपीडितान् ॥ १५ ॥
 खदिरो धीनकः सान्द्रो मधुकः शाकटिश (पापि) ।
 सर्गाश्रुनाञ्जनाशोकाः कदरो मोहिनीनरः ॥ १६ ॥
 विकङ्कतो देवदारुः श्रीपर्णाशदपस्तथा ।
 कुटुम्बिनामपी श्रोतः पुष्टिदा जीवदास्तथा । १७ ॥
 वृक्षाणां लक्ष्यते येषां मास्वारिमहिष्मृता ।
 ते यथायोग्यमन्येऽपि नश्यन्ते गृहकर्मणि ॥ १८ ॥
 फणिकारधनप्रुधकापिन्धविषमन्तडाः ।
 निरीषोदुम्बराभन्यगेन्दुन्यग्रोषन्यराः ॥ १९ ॥
 निम्बाम्रकोविदारगंधव्याधिगानाथ गहिताः ।
 गृहकर्मणि नेष्टास्ते यनम्नेऽनिष्टदायिनः ॥ २० ॥
 नेष्टाः कण्टकिनः स्वादुःखाः क्षीरद्रुमाश्च ये ।
 गुग्गुन्यपथ ये तद्द्रु भुवं तेषु पशुधयः ॥ २१ ॥
 सप्तप्रमाणज्जाया तु नियते दृश्यते यदा ।
 द्रुमज्जाया तदा प्राया तन्यमाणस्तु स द्रुमः ॥ २२ ॥
 नक्षत्रे मध्ययेद् वृक्षे पूर्वस्यां दिशि नक्षत्रेः ।
 स्याद् मस्यापत्तरं यस्य तत्र जातं तदादिजम् ॥ २३ ॥
 क्षेप्यं न स्वायिनो वृक्षे शान्ता गावश्चमेव च ।
 भद्रान्विबोद्धं गिर्यमृजं सागमन्निवम् ॥ २४ ॥
 दीनवन्धे हरिद्वरं हृत्तं पांश्चर्यं पादपम् ।
 द्विजान् गन्तव्यं च स्वस्ति वाच्यं च गृहर्तव्यतः ॥ २५ ॥
 वहावशादिस्तद्वत् भूतनरैः गुग्गुमरैः ।
 गर्दभैः धूपदानैश्च हरिः दद्याद्विजायते ॥ २६ ॥
 अथवास्तु भूतानि दानि हृत्तानि च दि ।
 वन्ये वसिष्ठ्यादि द्विदशं वातपर्वतः ॥ २७ ॥

धन्यः शिवः पुष्टिकरः मजावृद्धिकरो भव ।

स्वस्ति (तेच)न्द्रानिलयमाः मूर्धेरुद्रानलास्तथा ॥ २८ ॥

दिशो नद्यस्तथा शैलाः पान्तु त्वामृषिभिः सह ।

जल्पेद् यो मानुषगिरा कम्पते वामिमन्त्रितः ॥ २९ ॥

स त्याज्यः स्यात् तथा म्लानप्रवालकुसुमथ यः ।

ततो भास्करमालोक्य वृक्षं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ३० ॥

स्वस्तिवाक्येन विमाणां छेत्ता स्थित्वोदगाननः ।

प्राङ्मुखो वा तहं छिन्याच्छस्त्रैः क्षौद्राद्रिताननैः ॥ ३१ ॥

शाखिनश्छिद्यमानस्य जायते यद्यसृक्क्षुतिः ।

कम्पनं वा ध्वनिर्वापि मृत्युः स्याद् गृहिणस्तदा ॥ ३२ ॥

यद्वा दधिमधुक्षीरघृतानि स्रवति द्रुमः ।

छिद्यमानस्तदा विद्याद् बन्धव्याधीन् कुटुम्बिनः ॥ ३३ ॥

अतीव यस्य स्रवति श्यामः स्नेहान्वितो रसः ।

सुगन्धिः स्वल्पमधुरः कपायः स प्रशस्यते ॥ ३४ ॥

प्राच्यां शुभस्तरोः पात उदीच्यां कर्मसाधकः ।

याम्यप्रत्यङ्निपाते तु शान्तिं कृत्वा द्रुपं त्यजेत् ॥ ३५ ॥

ज्ञातितः स्यात् तदा भीतिर्यदान्यं मर्दयेत् पतन् ।

दूरं दलति यो मू(लं)ले) छिन्नो वा धरणीरुहः ॥ ३६ ॥

कूजत्यतीव वायुश्च स्मृतः सोऽथ शुभप्रदः ।

खरोष्ट्रयोः शृगालानां दर्शनं भुजगस्य वा ॥ ३७ ॥

छेदे स्यात् कर्मविघ्नाय निगडैर्बन्धनाय वा ।

हलचक्रपताकाञ्जध्वजच्छत्रादिदर्शनम् ॥ ३८ ॥

श्रीवृक्षवर्धमानादिदर्शनं वा शुभप्रदम् ।

उत्क्षिप्यते यदिच्छेदात् तदग्निः स्यात् कुटुम्बिनः ॥ ३९ ॥

सर्वतः परिहानिः स्याच्छिन्नधाक्षिप्यते यदि ।

एकवृक्षे यथोदितलक्षणोत्क्षेपदर्शने ॥ ४० ॥

शेषान् दोषविनिर्मुक्तान् पादपानुपलभयेत् ।

धीरस्त्वं कल्पयेत् सम्पगनुलोमानर्बं तरुम् ॥ ४१ ॥

छिन्याचं शुभभार्गदशभागाधिकं कृतम् ।

तुङ्गीसायवमध्यश्च(?)सगर्भो धरणीरुहः ॥ ४२ ॥

ज्ञेयानि मण्डलान्यस्य त(त्क्षणोच्छे?क्षणे छे)दनेऽपि च ।

मञ्जिष्ठाभे विदुर्मेकं कपिलाभे च मृपकम् ॥ ४३ ॥

पीतमासि तथा गोधां सपे दीर्घसितायते ।

गुढच्छाये मधु मवेत् कृकलासस्तधारणे ॥ ४४ ॥

गृहगोधा कपोताभे गौधरो घृतमण्डभे ।

रसाञ्जनाभे शङ्खाभे कमल्योत्पलभासि च ॥ ४५ ॥

धातासियष्टिवर्णे च मण्डले जलमादिशेत् ।

आकारो यस्य सर्पस्य वर्णो वा सम्प्रदृश्यते ॥ ४६ ॥

तं सर्पगर्भितं वृक्षमादिशेदविचारयन् ।

तस्करेभ्यो मयं सौद्रे सलिले सलिलाद् भयम् ॥ ४७ ॥

विद्याद् सपे विषाद् भीतिं पापाणे भयमाप्तिः ।

अजाविगोपदिप्युष्टरासभादिनिषिद्धितम् ॥ ४८ ॥

गोधागौधेरमण्डककृकलासंश्च गर्भिते ।

मूषके पुनरिच्छन्ति मरणं वास्तुयेदिनः ॥ ४९ ॥

अमुनेव वदन्त्यन्ये गृहपीडां मनीषिणः ।

क्षेपेण यद्यविघ्नः स्यादसप्तश्रावणो यदि ॥ ५० ॥

वनान्तरे तदा क्षेमं मुनिभिः च समादिमेत् ॥ ५०^१/_२ ॥

अर्पदानविधिना विधानविद् द्रव्यमागतमिदार्चयेद् गृही ।

प्रत्युपेतं कृत्वा सुपञ्चमं द्रव्यमुज्ज्वलमुतावनीपतिः ॥ ५१^१ ॥

इति महासंज्ञाविगतर्भाभोऽष्टैवविधिर्ये समसाङ्गनृपपरायण्येति वाच्यतायै

वनप्रवेशो नाम षोडशाध्यायः ॥

१. 'शु' क. पाठः । २. 'सो', ३. 'शुनी' लक्ष्मण(१), ४. 'स' ल. पाठः ।

अथ इन्द्रध्वजनिष्पणं नाम गानदशोऽध्यायः ।

सुराणापमं गिद्वयं व गय न गुह्यदाम् ।
यथा प्रकृत्यतेऽंगाने प्राद वद्या नोत्पत्ते ॥ १ ॥
भगवन्मयाभ्योजयमं वनमतीतिः ।
प्रोवाच कथमिन्द्रेण तेनभ्यागिद्वयद्वि ॥ २ ॥
गोऽध्वरीन् सर्वभूतानां ध्वजं कुरुन महताः ।
ते चाभिवागिर्मर्मन्तुद्वन्द्वोऽभिमन्त्रितम् ॥ ३ ॥
स्मितं घोषमि गन्धस्य सम्यक् पश्चिमतान्त्रितम् ।
भद्रतो देवर्गन्धस्य नयन्नो तेभ्यम द्विः ॥ ४ ॥
महामभारमण्येकमन्यं विपुकुलान्त्रितम् ।
दिव्यरूपमयं प्रादाद् ध्वजमिन्द्राय दूर्ध्वम् ॥ ५ ॥
वीर्यमवर्धनी चेष्टिरेतदर्थं विधीयते ।
कर्मणानेन निःशेषात् शक्रः शत्रून् जयेदिति ॥ ६ ॥
जयंषी तमय क्षिप्रममृतघनेनमा ध्वजम् ।
यन्त्रस्थितं स येनाजावमोदयदरीन् हरिः ॥ ७ ॥
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवास्तथाभिर्ना ।
अलक्षकुस्तमालोचय मरुतश्च विभूषणैः ॥ ८ ॥
तेजो वीर्यं वपुधेष्टां बलमप्येष पश्यताम् ।
अहरच्छत्रुसैन्यानां तेजस्वी तरसा ध्वजः ॥ ९ ॥
तमभ्यर्च्य सुराधीशः शत्रून् बलवतोऽप्यसौ ।
विरात्रेणाजयद् युद्धे कुलिसेन बलाद् बली ॥ १० ॥
ततः प्रीतिस्तमृतेऽसौ वैष्णवे द्वादशे तिथौ ।
त्रैलोक्यराज्यं प्राप्याभ्यपिञ्चद् बलनिषूदनः ॥ ११ ॥
न सर्वलोकमभ्यर्च्य सर्वलोकाभिपूजितः ।
ध्वजमभ्यर्च्य तुष्टाव वाक्यैर्वृत्रनिषूदनः ॥ १२ ॥

ततस्तमन्त्रिके वीक्ष्य ध्वजं प्रोवाच वासवः ।
 इन्द्रध्वजोऽयं लोकाः करिष्यन्ति तवार्चनम् ॥ १३ ॥
 बीजमाणा निमित्तानि भूमिपालाश्च शास्त्रतः ।
 ततः प्रमृत्त्यर्त्ता लोके सर्वेऽलङ्गमंभृतः ॥ १४ ॥
 वरमदानादिन्द्रस्य नृपः शक्रध्वजोऽर्च्यते ॥
 दुर्गमायतनं वद्विशरणं वेदिकाः कृताः ॥ १५ ॥
 विविधाः स्थानिकापाका भक्षणानि यानि च ।
 एतान्पायतनान् प्राक् स्फुर्यद्दान्यानि प्रकुर्यते ॥ १६ ॥
 विजेतुं यदि वाञ्छास्ति दुर्धमान् द्वेपिणां रणे ।
 तेजो यत् यशश्चाजुं नद्वन्द्वं कारयेद् ध्वजम् ॥ १७ ॥
 सेनायां वा गुरे वापि मतिष्ठान्य पुरन्दरम् ।
 विजयार्थं मरीचादिरेभियन्तमनाय च ॥ १८ ॥
 यथा शक्रध्वजोऽयानविधानं तजतीध्वजः ।
 करिष्यन्ति तथा सम्यक् कान्क्षयेन मतिपायने ॥ १९ ॥
 यनादुपाहृतं द्रव्यमथ प्राग्विधिना गुरीः ।
 पाषाण्यादिमिरभ्यर्च्य सर्वसौमन्यस्यदहृतम् ॥ २० ॥
 द्विजान् सेवूय वा गुर्वां देवे सम्यक्प्रसादितः ।
 पूर्वोद्गमनागमं वा यजन्नादत्तनायेन् ॥ २१ ॥
 प्रागुद्ग वा पुष्पपात्रं मधुपानिः सर्वसार्थकम् ।
 पात्रयेन् सर्वपन्थाणि ध्वजपूराणि निन्दितभिः ॥ २२ ॥
 भ्रातृ ह्यविरुद्धा हर्षैर्विजया पुनराह्वयिभिः ।
 मानं वदन्मन्त्रये शत्रुं चतुर्गन्धर्वपापकम् ॥ २३ ॥
 मूलशिवविजयामादत्तमुत्तमं वरेवरे ।
 सिद्धिर्भवेत्तु यः मूलपात्रं ददूष्येत्तदहं वदित्वेत्थम् ॥ २४ ॥
 ध्वजपादपदीयानि विष्णुपादं हृत्पदीयम् ।
 विष्णुपादयेन च कुरुते कुरुतेऽसिमुपादहम् ॥ २५ ॥

ध्वजविस्तरवहलं साङ्गिवाहल्यविस्तृतम् ।

भ्रमपीठं विधातव्यं सार्धायामं शुभावहम् ॥ २६ ॥

सम्मितो ध्वजकुप्येण वेधः स्याद् भ्रमपीठगः ।

कुप्यकोट्यधिकावृत्तावधौ कोटिद्वयायता ॥ २७ ॥

कार्यावह्नी भ्रमस्थूलौ भ्रमविस्तृतिविस्तृता ।

तद्युक्तिवेधे तावेत(वि?द्वि)स्तृतेर्द्विगुणोच्छ्रिता ॥ २८ ॥

ध्वजायतिचतुर्भागात् पीठमत्र प्रकल्पयेत् ।

मल्लप्रतिष्ठितं मध्ये प्रान्तयोः स्तम्भधारितम् ॥ २९ ॥

तत्पीठस्तम्भनीयाभ्यां द्वाराभ्यामन्वितं दृढम् ।

याम्योत्तरप्रतिक्षोभं प्राङ्मुखं सुदृढार्गलम् ॥ ३० ॥

केतुव्यासार्धविस्तारं तदैर्घ्याष्टांशकोच्छ्रितम् ।

विस्तारसदृशायामं मध्ये स्याद् वज्रिणो गृहम् ॥ ३१ ॥

मल्लश्च पीठिकाङ्घ्री च बाहू स्तम्भविनिर्गतौ ।

शक्रमाता कुमार्यश्च ध्वजविस्तृतिविस्तृताः ॥ ३२ ॥

निम्नभागाश्च सर्वेषां स्वविस्तृतिचतुर्गुणाः ।

कार्या वा पञ्चगुणिताः सप्त (का?वा) मूलदेश(कैतः) ॥ ३३ ॥

कन्यानामुदयः प्रोक्तो यः प(ष्टयो?)ष्टांशस्त्रिसंगुणः ।

इन्द्रमाता तु सर्वाभ्यः स्यात् तदष्टांशतोऽधिका ॥ ३४ ॥

वेधः स्वविस्तरः सप्तभागे स्यात् कन्यकोदयात् ।

निर्वेधश्चतुरश्रः स्याल्लकटस्य समाहितः ॥ ३५ ॥

निर्वेधावस्य चोर्ध्वाधः सप्तांशान्तरवर्तिनौ ।

कार्या मूर्चीव्यधावन्यौ मूर्चीमानप्रमाणतः ३६ ॥

कन्याव्यासत्रिभागेन मूर्ची विस्तारतो भवेत् ।

पादोनवहला चारुदारुजा दृढसंहिता ॥ ३७ ॥

कुमारीन्याससंपुक्ता द्विगुणा लकटायतिः ।

एतद्वासान्तरं शाल्या यन्त्रं संयोजयेत् ततः ॥ ३८ ॥

तयोरधस्तदर्धेन गृगाल्यौ मूचिविस्तृतौ ।
 क्षेत्रस्य लेखितं कार्यं सम्बन्धे मूचिकन्ययोः ॥ ३९ ॥
 साङ्घिकेतनमूलार्थं लकटे विस्तृतायती ।
 अक्षभ्यां योजयेत् सम्यग् दृढं बाह्वक्षेत्रयोः ॥ ४० ॥
 पञ्चानामपि तुल्यैव कन्यानां स्वात् प्रकल्पना ।
 कृत्वानुपूर्व्या यन्त्राणि स्थापयेदखिलान्यपि ॥ ४१ ॥
 आश्विने मासि पक्षे च धवले प्रतिपत्तिथौ ।
 स्थिरोदयैर्ग्रहैः सौम्यैर्वाशिते त्वाष्ट्रभेषजिच ॥ ४२ ॥
 पौरजानपदैः सर्ववादित्रध्वनितेन च ।
 यन्त्राण्युत्तिष्ठ्य यष्टिं च कर्मस्थानान्नपेज्जलम् ॥ ४३ ॥
 चित्रप्रतिसराकीर्णां यष्टिं तवाङ्ग्यलेपिताम् ।
 चूर्णैः सर्वापधीभिश्च स्थपतिः स्नापयेत् स्वयम् ॥ ४४ ॥
 जलाशयात् समुत्तार्य नृणां कलकलस्वनैः ।
 प्राग्रां स्थापयेद् दारुहस्तिन्योः भावसमुन्नतम् ॥ ४५ ॥
 अहतेप्सितवासोभिराच्छाद्यार्च्यं स्रगादिभिः ।
 विशिष्य च वलिं दिक्षु द्विजातीन् स्वास्ति वाचयेत् ॥ ४६ ॥
 त्रिसन्ध्यं पूजितां तत्र सर्वप्रकृतिभिस्ततः ।
 पञ्चाहं वासयेद् यष्टिं गुप्तां चापधरैर्नरैः ॥ ४७ ॥
 तस्मिन्नेवाङ्घ्रि यन्त्राणि सर्वाण्यपिच यष्टिवत् ।
 स्नातान्याच्छादितानीन्द्रस्थानदेशं प्रवेशयेत् ॥ ४८ ॥
 मूर्ध्नितेज्य ध्वजस्थाने यष्टेरष्टांशदैर्ध्वतः ।
 तदर्धविस्तृते दिक्स्थे समे प्रागायते शुभे ॥ ४९ ॥
 विभक्तेऽत्र विभागानामेकाशीत्या ततः क्रमात् ।
 विन्यस्तास्त्वथ सर्वासु देवतासु यथातथम् ॥ ५० ॥
 प्राचि मध्ये मैत्रपदे तन्मध्यान्मरुतो दिशि ।
 महं निम्नप्रमाणेन पादकोणे निवेशयेत् ॥ ५१ ॥

6. 2. 19. 57.

स्पपतिर्वा पुरोधा वा शुचिः स्नातः समाहितः ।
 गन्धमाल्यार्चितान् निघ्रांस्तर्पयेद् दक्षिणादिभिः ॥ ६५ ॥
 ततो मद्गलघोषेण वादिश्रनिनदेन च ।
 पुण्यादजयशब्दैस्तमुत्क्षिपेयुः ममाहिताः ॥ ६६ ॥
 अलङ्कारभृतः पाराः प्रहृष्टमनसोऽग्नित्वाः ।
 नीरुजो बलिनः शक्ताः प्रकृत्यभिमतान् ये ॥ ६७ ॥
 स्तुवीरन् पुण्यमनसः स्तुतिभिः मृतमागधाः ।
 वन्देरन् वन्दिनधनं मेवेरन् गणिका अपि ॥ ६८ ॥
 प्रविशन्तं निजं स्थानमनुगच्छेच्चराधिपः ।
 गुलाधिपं बल्यमात्यर्षीगजानपदान्वितः ॥ ६९ ॥
 मोघत्कलकलारावमुस्वराः पुरुषा यटि ।
 उत्क्षिपेयुः प्रहृष्टा वा वटेषुर्वा गुलाधिपम् ॥ ७० ॥
 तदा भवति भूषालो जयी नन्दन्ति च मजाः ।
 राष्ट्रे सुखं पुरे हर्षो भवेन्नश्यन्ति चेतयः ॥ ७१ ॥
 मुञ्चत्युत्थापितः कृच्छ्राद् यटि शय्यां स गौरवान् ।
 तदा नृपतिरभ्येति महतीं विमनस्सनाम् ॥ ७२ ॥
 स्वलन्तो दुःखिता दीना निःश्वसन्तः पदे पदे ।
 वैचित्र्यमाजो गच्छेयुर्देवहानिस्तदा ध्रुवम् ॥ ७३ ॥
 भूमीं यदैकदेशेन जगितः(?)पतति ध्वजः ।
 न गुभिर्धं न च क्षेमो न शत्रो विजयस्तदा ॥ ७४ ॥
 दीर्घे भद्रेऽप्यपतिते कृन्ते चाग्निन् समुद्धृते ।
 स्थान्प्रपत्तपारनिष्ठाः सुतर्ध्वगोऽथवा मृतिः ॥ ७५ ॥
 वरान्मदकृतिमान्पानो हसन्तान् पतनादुत ।
 तारमदपरिधेयः पीगणो भवति ध्रुवम् ॥ ७६ ॥
 पुं भवति निःशब्दं शिष्टं वा भवेज्जने ।
 मनुजेषु वा शत्रव्य भद्रा नमानुजस्तति ॥ ७७ ॥

शक्रं स्वस्थानमानीतं शीघ्रं सुखमधिगतः ।
 प्राग्वत् प्रदक्षिणं न्यस्येत् प्रागग्रं शयने तिजे ॥ ७८ ॥
 कुर्यात् तत्रैव नक्षत्रे शय्यास्थस्यामरेशितुः ।
 भ्रमे कुप्ये च संयोगं यथाभागविकल्पितम् ॥ ७९ ॥
 कुप्ये संयोज्यमानश्चेद् ध्वजो निपतति क्षितौ ।
 तदा नरपतेः स्थानभ्रंशो भवति निश्चितः ॥ ८० ॥
 कुप्ययोगे यदा शक्रो वामतः परिवर्तते ।
 तदा स्यात् स्थपतेर्मृत्युर्भवेद् भङ्गश्च दक्षिणे ॥ ८१ ॥
 स्ववेधं प्रतिपद्येत तद्यष्टिर्यदि कृच्छृतः ।
 प्रमादिनस्तदा राज्ञो जायते व्यसनं महत् ॥ ८२ ॥
 निष्कुप्य योजितः शक्रध्वजो विघटते यदि ।
 विश्लिष्यति तदा सन्धिः सामन्तैः सह भूपतेः ॥ ८३ ॥
 स्फुटेद् भज्येत वा कुप्ये योज्यमानोऽथ सर्वतः ।
 तदा भङ्गे नृपव्याधिः स्फुटनादङ्गनावधः ॥ ८४ ॥
 अविदीर्णमपर्यस्तमव्यङ्गमविलम्बितम् ।
 यथावन्न्यासमायाति योगं चेद् वासवध्वजः ॥ ८५ ॥
 धनभृत्याङ्गनापत्यैः सामन्तैश्चान्वितोऽनुगैः ।
 निरातङ्गो बलाङ्गश्च वृद्धिमेति तदा नृपः ॥ ८६ ॥
 यत्नतो रक्ष्यमाणस्य शय्यास्थस्यैव वज्रिणः ।
 तस्याङ्गान्यखिलान्येव कुटन्वादीनि योजयेत् ॥ ८७ ॥
 ऐन्द्रं बलाङ्कं यक्षेशं सर्पमादं दिगाङ्गयम् ।
 मयूरं चेन्द्रशीर्षं च पिटकाष्टकमित्यदः ॥ ८८ ॥
 स्वप्रमाणेन कर्तव्यं स्पर्ष्टरूपसमन्वितम् ।
 तदाख्याश्चान्नरेष्वेषां सन्धयो बलनिर्मिताः ॥ ८९ ॥
 मूलादन्यप्रमायातैः स्ववंशविदलैर्दण्डैः ।
 गुणैश्च वेष्टयेदनं घर्जरशिथिलैर्ध्वजम् ॥ ९० ॥

१. 'कूप्ये' ख. पाठः । २. 'कुप्यायो' । ३. 'मवध' क. पाठः । ४. 'कु' ख.

पाठः । ५. 'जा' । ६. 'स्वेष्ट' । ७. 'दाधाधा' क. पाठः । ८. 'तेस्तं वं' ख. पाठः ।

मादप्रिणा ध्वजनाहेन मध्यंशेनाथ विम्बुनिः ।
 विधेया शक्रपिटरुम्पोन्द्रयस्तु तदर्थतः ॥ ९१ ॥
 अस्मिन्नष्टौ दिशः कृत्वा वंशव्यवहिते ततः ।
 न्यम्येद दिगीमांशतुम्भम्योपति यथादिशम् ॥ ९२ ॥
 पथमांगगते कृत्वाद् वज्रिणः पितृकं कृते ।
 शेषाण्यप्यष्टमांगानान्यस्मिन् न्यम्येद यथाक्रमम् ॥ ९३ ॥
 यथाकाशीनि विम्बुन्या यम्बोनानि वीक्षित्वा ।
 स्वरर्षयान्ति कृत्वा नि शमर्षावकावन्ति च ॥ ९४ ॥
 भद्रपातविषया मोहिम मिदयः पितृशोऽप्याः ।
 पीडाविम्बुन्येवैव्यर्षदेरुपस्य प्रसीर्तिताः ॥ ९५ ॥
 शुद्धान्तामाव्यविषानां यत्न्य यममोक्षे च ।
 यमुमन्याथ धास्रां च तुर्ये शङ्खमौषधम् च ॥ ९६ ॥
 केतुपटमागविम्बाग मन्त्रोऽष्टौ मुखनिधाः ।
 विधेयाः स्मृतेनायामत्रिगुणायनयो ह्यः ॥ ९७ ॥
 छादिनं च विदिदि दिः दुरं कृदनीयतिं शुभम् ।
 यमेनामस्तविभं विदुः पादमस्तविभम् ॥ ९८ ॥
 अवेन्दुप्रतापार्धं वेतुमुमेन्द्रार्धविभम् ।
 मादृक्कण्ठगुणं दण्डमवाहनांविभं शुभम् ॥ ९९ ॥
 ममादकण्ठगुणात् शुभमवयवदण्डम् ।
 दण्डमवयवदण्डादिः ममादकण्ठगुणः ॥ १०० ॥
 अथर्वं विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ।
 विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ॥ १०१ ॥
 अथर्वं विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ।
 विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ॥ १०२ ॥
 अथर्वं विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ।
 विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ॥ १०३ ॥
 अथर्वं विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ।
 विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ॥ १०४ ॥
 अथर्वं विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ।
 विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ॥ १०५ ॥
 अथर्वं विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ।
 विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ॥ १०६ ॥
 अथर्वं विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ।
 विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ॥ १०७ ॥
 अथर्वं विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ।
 विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ॥ १०८ ॥
 अथर्वं विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ।
 विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ॥ १०९ ॥
 अथर्वं विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ।
 विदुः पाद विभं शुभमवयवदण्डम् ॥ ११० ॥

प्रमोदगीतवादिननन्दनैरसंगुतः ।

तदग्रे नागरः कार्यः गमस्तामेव तां निशाम् ॥ १०४ ॥

पुणोदितमनो भास्वगुदिने प्रगतेन्द्रियः ।

अग्रेः पश्चिदं कृगोन्मृत्स्य प्रागुदन्दिनि ॥ १०५ ॥

कृतोपलेपनं तस्मिन्नुल्लेखाभ्युत्थणमनः ।

संस्कृत्याम्नीर्गं दर्भांश्च ज्वालयेत् तत्र पावकम् ॥ १०६ ॥

तत्राज्यपाद्याज्यार्घ्यं च गन्धांश्च कृगुमानि च ।

द्रव्याणि पाचनीयानि समिधश्च पलाशजाः ॥ १०७ ॥

गौवर्णां मूकसुखाविन्द्रभक्तं च यत्नयोजयिष्य ।

इत्येतत्सर्वमाहृत्य जुहुयात् पावकं ततः ॥ १०८ ॥

पुत्रदारपशुद्रव्यमन्ययुक्तस्य भूपतेः ।

विनयावाप्तिजनकैर्मन्त्रैः शान्तिविधायिभिः ॥ १०९ ॥

सुस्वनः सुमहार्चिश्च स्निग्धशब्दोऽपि च स्वयम् ।

कान्तिमान् गुरभिर्जिघ्रन् होतारं शस्यतेऽनलः ॥ ११० ॥

तप्तकाञ्चनसच्छायो लाक्षाभः किंशुकच्छविः ।

प्रवालविद्रुमाशोकमुरगोपसमधुतिः ॥ १११ ॥

ध्वजाद्भुशगृहच्छत्रयूपमाकारतोरणः ।

सदृशार्चिः प्रशस्तोऽग्निर्मातृल्यैरर्पस्तथा ॥ ११२ ॥

स्निग्धः प्रदक्षिणशिखो विधूमो विपुलोऽनलः ।

सुभिक्षक्षेमदः प्रोक्तो दीप्यमानधिरं तथा ॥ ११३ ॥

धूम्रो विवर्णः परुषः पीतो वा नीलकोऽथवा ।

विच्छिन्नो भैरवरवो वामावर्त्तशिखोऽल्पकः ॥ ११४ ॥

मन्दार्चिर्द्युतिमुक्तोऽसृग्बसागन्धः स्फुलिङ्गवान् ।

धूमावृतः सफेनश्च हुतधुग् न जयावहः ॥ ११५ ॥

दर्भाणां संस्तरं बद्धिर्होमाज्ञान्यपराणि वा ।

हवमानो दहति चेद्वानिस्तदभिनिर्दिशेत् ॥ ११६ ॥

होमे वोत्सर्पयेत् पीठं दह्यमानो(?)यदग्निना ।
 भूम्येकदेशनाशः स्याद्वाभः स्यादुपकर्षणान् ॥ ११७ ॥
 सर्वतो वाप्यगाधो यः स वर्धयति पार्थिवान् ।
 यां दिशं यान्ति च ज्वालास्तस्यां विजयमादिशेत् ॥ ११८ ॥
 दुर्वर्णाशुचि दुर्गन्धि मक्षिकासुविदम्बितम् ।
 आज्यं राज्यच्छिदे प्राहुर्हूयते यच्च भस्मनि ॥ ११९ ॥
 हीनाधिकप्रमाणाश्च विदीर्णा घृणभक्षिताः ।
 वातरूपद्रुमोत्थाश्च समिधोऽर्थक्षयावहाः ॥ १२० ॥
 सगर्भाश्च सपुष्पाश्च विच्छिन्नाग्रास्तृणान्विताः ।
 कुर्वन्त्युपद्रवं दर्भा दुष्पलनाश्च ये तथा ॥ १२१ ॥
 दुष्टानि पांसुकीर्णानि कीटजर्जरितानि च ।
 बीजानि बीजनाशाय स्युरपुष्टानि यानि च ॥ १२२ ॥
 माल्यं विगन्धि प्रम्लानं न पीतं न सितं च यत् ।
 कीटैः खण्डितपीतं च न जयाय न वृद्धये ॥ १२३ ॥
 विस्रावीण्युद्धतान्युग्रखण्डितस्फुटितानि च ।
 दुर्भिश्चरोगकारीणि प्राहुः पात्राणि सर्पिषः ॥ १२४ ॥
 अशुचौ पतिते च स्यान्मक्षिकाकीटदूषिते ।
 बलौ च शक्रमक्ते च क्षुन्मारः केशभाजि च ॥ १२५ ॥
 यथोदितान्यरूपाणि सर्पिरादीन्धनुक्रमात् ।
 भवन्ति राष्ट्रपुरयोर्मयाय निखिलान्यपि ॥ १२६ ॥
 वितीर्य गन्धमाल्यादीन् देवताभ्यां यथादिशम् ।
 पुरोधाः स्थपतिर्वाथ प्रीतचित्तः क्षिपेद् बलिम् ॥ १२७ ॥
 ध्वजनैर्कृतदिग्भागे द्विजमुख्यानुपस्थितान् ।
 शीलवृत्तपुतान् भूरिगन्धमाल्यैः स्वलङ्कृतान् ॥ १२८ ॥
 वृद्धान् पदकर्मनिरतान् सुहृदो वेदपारगान् ।
 मनःमिषान् पूर्णगात्रान् समर्थान् सर्वतः शुचीन् ॥ १२९ ॥

शुक्लाम्बरान् दशनीयान् गारप्रायान् बलान्वितान् ।
 अमुण्डाजटिलालीवा(न?)दीक्षितान् व्याधिताकृशान् ॥ १३० ॥
 यथेष्टं दक्षिणाभिस्तान् संयोज्याष्टशतेन वा ।
 साधतैः प्रीतमनसः कुमुभैः स्वस्ति वाचयेत् ॥ १३१ ॥
 शक्रं ते चाष्टभिः कुम्भैः मुहूर्द्धवारिपूरितैः ।
 स्वर्चितैरभिपिञ्चेयुर्मूले चोक्तृष्टमण्डलैः ॥ १३२ ॥
 स्तुतैर्वैजयिर्कर्मन्त्रैः स्तुतिभिश्च द्विजोत्तमैः ।
 राज्यमाघोपयेदेतैरात्मना च महीपतिः ॥ १३३ ॥
 कुर्वीत सर्ववन्धानां मोक्षं हिंसां समुत्सृजेत् ।
 दोषान् जनपदस्यापि दशाहं विपहेत वै ॥ १३४ ॥
 सुवासा भूषितः स्नातः सदाचारप्रयत्नवान् ।
 ध्वजोच्छ्रायं शुचिर्भूषः सवलः प्रतिपालयेत् ॥ १३५ ॥
 सोपवासः शुचिः स्नातः प्रयतो विजितेन्द्रियः ।
 कृताञ्जलिपुटश्चेमं मन्त्रं स्थपतिरुचरेत् ॥ १३६ ॥
 ओं नमो भगवति वागुले सर्वविट्प्रमर्दनि स्वाहा ।
 सुरामुराणां सङ्ग्रामे प्रवृत्ते त्वं यथोत्थितः ।
 तथा नृपस्य देवेन्द्र ! जयायोत्तिष्ठ पूजितः ॥ १३७ ॥
 स्तुत्येति स्थपतिस्तस्य कृत्वा चानुग्रदक्षिणम् ।
 कारयेद् देवराजस्य ध्वजदण्डसमुच्छ्रयम् ॥ १३८ ॥
 स्त्र्यलङ्कृतैः सितस्त्र्यन्धमाल्याम्बरविलेपनैः ।
 पार्वतीजनपदस्नद्वा प्रयतैः परिचारकैः ॥ १३९ ॥
 सान्निध्यप्रलुगीनद्वन्द्विद्विष्टमगोमुरैः ।
 हृष्टैरन्यथ वादित्रैर्वायमानैर्महास्त्रैः ॥ १४० ॥
 गायत्रिश्च नद्यत्रिश्च गायनैर्नटनैर्वकैः ।
 हृष्टैरन्यथोद्वानैर्गजस्यन्दनराजिभिः ॥ १४१ ॥

मानैर्विभूषणैर्धनैः शम्भुस्तथात्मनः ।
 यान्ति केतुस्फूर्तैर्न गतस्थानेष्वपि संशयम् ॥ १६८ ॥
 शीघ्रं नमोऽर्पितं कृतेभ्यः शम्भवेभ्य वा ।
 यस्यां कद्रुभि नवाहर्षानि पूरे विराडिभिः ॥ १६९ ॥
 भजे मृगार्ज्यान्कशाभागेत्यानामनुब्रूमात् ।
 पीडा मत्प्रापने वेद्यान्मन्त्रिभेष्टिगतिनाम् ॥ १७० ॥
 भद्रा भ्रमाधरादिर्वा मन्त्रमातृमासिकाः ।
 गच्छं हन्युर्नेन्द्रेभ्यः प्रियामानुमुनान् प्रमात् ॥ १७१ ॥
 निर्यातोऽननिम्नस्त वा धरेत् यदि पतेद् नदा ।
 भनाष्टदिग्भ्यं राशः परमपमथादिगेत् ॥ १७२ ॥
 कुर्वन्ति मक्षिकाः शुकं मधुस्तत्रं ममुच्छित्ते ।
 यस्मिंस्तत्र द्विपक्षेण क्त्वामाणादिगेत् पुनः ॥ १७३ ॥
 मक्षिका वा मया वा वेद् भ्रमेषुः पार्श्वतो हरेः ।
 प्रदक्षिणा वरिस्थानेमाणायादृष्टनदा मृनिम् ॥ १७४ ॥
 पृथग्भेदकशोनाधिहीयन्ते नममूर्धनि ।
 नदा कुर्वन्ति दूर्भिर्धविप्रदक्षिणैरुत्तमान् ॥ १७५ ॥
 यदि केर्ता निन्दीयन्ते कुरारोन्मुक्तायमाः ।
 राशः प्रमात् नदा हन्युर्मन्त्रिपुत्रपुत्रोभयः ॥ १७६ ॥
 मयूरा यदि वा हंतः समाश्रयति पागवम् ।
 समस्तजलशोषितस्तदा स्यान्मूर्धनेः मुनः ॥ १७७ ॥
 चक्री घन्टाका हंसी वा यदि केर्ता निन्दीयते ।
 नदा नरपतिर्मायोमवाप्तोऽपनिमुन्दरीम् ॥ १७८ ॥
 स्वर्गः मुष्टिजेज्जैः मुभिर्धं स्यात् फलाग्निभिः ।
 विष्टाग्निभिश्च दूर्भिर्धं भीतिः स्यात् पिशितासिभिः ॥ १७९ ॥
 यदि विप्रपटन्यस्ताः सुरयक्षोरगोचमाः ।
 विविधाकृतिमिर्मुक्ता बाहनायुधभूषणैः ॥ १८० ॥

छन्नं भूतुभिः पार्थर्यत् तद्यत्तुश्चालमुच्यते ।

त्रिमिस्त्रिशालं तत् प्राहुर्द्वाभ्यां तत् स्याद् दिशालकम् ॥ १८ ॥

एकशालकमेकेनच्छन्नं गृहमुच्यते ।

गृहमेकं तु यच्छन्नं सर्वं शालेति सा स्मृता ॥ १९ ॥

शालानां यत् पुनर्मध्यं वापी पुष्करिणी च सा ।

संछन्ना (चा?सा)पि यस्य स्यात् तद् गर्भगृहमुच्यते ॥ २० ॥

गृहे महाजनस्थानं त्रिकुड्यं यत् प्रकल्पितम् ।

उपस्थानं तदद्वाहुः स्याद्योपस्थानकं लघु ॥ २१ ॥

प्रासादस्तु स एव स्यादल्पा प्रासादिका स्मृता ।

दीर्घप्रासादिका यासां बलमीत्यभिधीयते ॥ २२ ॥

शालाग्रे बलमी या स्यादलिन्देति वदन्ति ताम् ।

शालां विना तु बलमी बलमेति निगद्यते ॥ २३ ॥

अल्पाल्पास्तु चतुष्कुड्या ये तेऽपवरका मताः ।

गृहे चाभ्यन्तरस्थानं शुद्धान्त इति कीर्त्यते ॥ २४ ॥

प्रतोलीं तां विदुर्लोकः सुरङ्गामिव यां वसेत् ।

सा कसेत्युदिता तज्जैर्यदवस्थान्तरं गृहे ॥ २५ ॥

यदुपस्थानकं नाम ये चापवरकास्तथा ।

ते कोष्ठका या तु कण्ठा कुड्यं भित्तिश्च यश्च सा ॥ २६ ॥

भेक्तशाला भवेद् या तु तन्महानसमुच्यते ।

यच्छन्नं द्वारदेशे तु तमाहुर्द्वारकोष्ठकम् ॥ २७ ॥

प्रवेशनमिति प्राहुर्द्वारनिर्गमनं तथा ।

जलनिर्गमनस्थानं विज्ञेयमुदकभ्रमः ॥ २८ ॥

भवनस्याङ्गणं यत् तदाहुर्भवनाजिरम् ।

वनाजिरं वनमही त्वाश्रमाजिरमाश्रमे ॥ २९ ॥

उत्तरोदुम्बरस्याधः श्लिष्टां मध्ये च कुंड्ययोः ।

तज्ज्ञास्तां देहलीत्याहुः कपाटाश्रयमेव च ॥ ३० ॥

अष्टौ च फकुभो मूर्ताः प्रवृत्ताश्चाप्सरोगणाः ।
 सग्रहास्तारका मेघाः स्फीता नद्यस्तथान्ध्रयः ॥ १८१ ॥
 वाप्यः पङ्केरुच्छन्ना हंसवन्ति सरांसि च ।
 फलपुष्पावतंसानि वनान्युपवनानि च ॥ १८२ ॥
 देवतायतना(न्याय?न्यट्र)गोपुराणि पुराणि च ।
 भवनान्यतिशुभ्राणि शयनासनवन्ति च ॥ १८३ ॥
 महृष्टाः पार्थिवा भृत्या बलवाहनशालिनः ।
 पौरा जानपदा लोकाः क्रीडाभाजः कुमारकाः ॥ १८४ ॥
 चत्वारो मुदिता वर्णा नटनर्तकशिल्पिनः ।
 सगोम्रजलतागुल्मद्रुमौषधिभृतो नगाः ॥ १८५ ॥
 मृगपक्षिगणाः शस्ता मङ्गलान्यखिलानि च ।
 विचित्रापानवसुधाः फलभक्षाश्च पक्षिणः ॥ १८६ ॥
 यथानिवेशं शोभन्ते तदा देशे पुरेऽपि च ।
 क्षेमरोग्यसुभिक्षाणि जयं राज्ञश्च निर्दिशेत् ॥ १८७ ॥
 एतेषां कुट्टने पाते छेदे नाशेऽथवा हृतौ ।
 ध्रुपे वाप्यशुभं वाच्यं यथायोनि यथादिशम् ॥ १८८ ॥
 स्थिते वा पतिते वापि चित्रपट्टे भुवस्तले ।
 उपप्लवो नरेन्द्रस्य भवेज्जनपदस्य च ॥ १८९ ॥
 राजते यद्यलङ्कारः सकलो यात्रदुत्सवम् ।
 अनस्तोऽविप्लुतथोर्वी तदा कृत्स्नां जयेन्मृगः ॥ १९० ॥
 नटनर्तकसङ्घेषु प्रवृत्त्यस्तु पठत्सु च ।
 शुभे शुभं समादेश्यमितरस्मिन्नशोभनम् ॥ १९१ ॥
 ये वर्गाः सम्प्रवृष्यन्ति मङ्गल्या गजवाजिनः ।
 सुवेपचेष्टालङ्काराः शुभं तेष्वंदिशेद् ध्रुवम् ॥ १९२ ॥
 अमङ्गलैपिणो ये स्युर्विकृता दीनचेतसः ।
 पुरुषा योपितो वापि निर्दिशेत् तेषु वैशसम् ॥ १९३ ॥

प्रभिन्नकरदा नागा बृहन्तस्तोयदा इव ।
 अदीनाश्च स्वतन्त्राश्च नृपतेर्विजयावहाः ॥ १९४ ॥
 आलिखन्तः सूरैः क्षोणीं दक्षिणैर्हृष्टचेतसः ।
 हेममाणा हयाश्चापि शंसन्ति नृपतेर्जयम् ॥ १९५ ॥
 सतद्विद्वर्जिताम्भोदा वृष्टिश्चेज्जायते तदा ।
 महीपतेर्जयं विद्यात् सुभिक्षं क्षेममेव च ॥ १९६ ॥
 अथार्धरात्रे सम्प्राप्ते रोहिण्यां दशमेऽहनि ।
 शक्रस्य पातमिच्छन्ति मुनयः प्रतिवत्सरम् ॥ १९७ ॥
 ततः समाजे निवृत्ते शक्रकेतौ प्रतिष्ठिते ।
 गन्धतोयैश्च पुष्पैश्च विदधीताम्बुसेवनम् ॥ १९८ ॥
 अमेध्यैर्वस्त्रखण्डैर्वा भस्मकेशास्थिकर्दमैः ।
 यदा क्रीडन्ति मनुजा दुर्भिक्षं जायते तदा ॥ १९९ ॥
 विप्राः प्राँच्यां विलम्बेभ्यः पतन्तं वासवध्वजम् ।
 सुभिक्षं क्षेममारोग्यमन्यथा स्याद् विपर्ययः ॥ २०० ॥
 अग्राहोक्तो ध्वजाङ्गे यो विशेषः सोऽथ कथ्यते ।
 पुरे ब्रह्मपुरात् प्राच्यामिन्द्रस्थानं विधीयते ॥ २०१ ॥
 मात्राशयेन हस्तेन प्रमाणं तस्य कीर्तितम् ।
 चतुःषष्टिसमायामं चतुरर्थं समन्ततः ॥ २०२ ॥
 एकाशीतिपदेनैव भजेत् क्षेत्रं विभागतः ।
 क्षेत्रस्यार्धेन कुर्वीत ध्वजायामं प्रमाणतः ॥ २०३ ॥
 ततो वृद्धिर्विधातव्या हस्ते हस्तेऽङ्गुलं बुधैः ।
 अर्धाङ्गुलं वा वृद्धिः स्याद् ध्वजस्येन्द्रस्य कुत्रचित् ॥ २०४ ॥
 तावद् वृद्धिर्विधातव्या यावत् क्षेत्रसमोऽङ्गुलैः ।
 ततः प्रमाणमार्धं यत् तत् पुनर्विनिर्जयेत् ॥ २०५ ॥
 प्रमाणमङ्गुलैः केतोः स्याच्चत्वारिंशता मितम् ।
 तस्य संवत्सरे वृद्धिः कर्तव्या द्वयङ्गुलैर्बुधैः ॥ २०६ ॥

१. 'यत', २. 'म्बुसेवनम्' ख. पाठः । ३. 'प्राक्तेविल' ख, 'प्राच्यां विज्ञे' क. पाठः ।

ग्रामस्थाने च कुर्यात् ग्रामात्तं विनियोगः ।

ग्रामाणाञ्जन्तरं ग्राम्या भवेद् दैवतपर्यया ॥ २०७ ॥

तत्र यन्त्रस्य पादा स्तः समुच्छ्रायेण गर्भः(पौर्वा?) ।

तस्यैव पश्चिमे भागे मित्रो भवति दैवता ॥ २०८ ॥

ततः प्रभृति यन्त्रस्य + + वेधो नतो भवेत् ।

पूर्वापरं च निम्नं स्यादेव यन्त्रविधिः स्मृतः ॥ २०९ ॥

यन्त्रस्य पश्चिमे भागे वरुणो दैवतं भवेत् ।

वरुणस्य पदान्ते च वंशस्थे द्वे कुमारिके ॥ २१० ॥

स्वानिले(?)चतुरो हस्तान् दशहस्तोच्छिन्ने च ते ।

रुद्रस्थाने च कर्तव्या कुमारी गुप्तिप्रतिष्ठा ॥ २११ ॥

सोमयोगे चतुर्थी स्यादापभागे च पञ्चमी ।

पृथ्वी च सवितुर्भागे यमभागे च सप्तमी ॥ २१२ ॥

इति महाराजाधिराजधीभोजदेवधिरचिते समराङ्गणपूवधारणरनाभि वास्तुशास्त्रे

इन्द्रध्वजनिरूपणं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥

अथ नगरादिसंज्ञा नामाष्टादशोऽध्यायः ।

नगरं मन्दिरं दुर्गं पुष्करं साम्परायिकम् ।

निवासः सदनं सप्त क्षयः क्षितिलयस्तथा ॥ १ ॥

यत्रास्ते नगरे राजा राजधानीं तु तां विदुः ।

शाखानगरसंज्ञानि ततोऽन्यानि प्रवक्षते ॥ २ ॥

शाखानगरमेवाहुः कर्वटं नगरोपमम् ।

ऊनं कर्वटमेवेह गुणैर्निगम उच्यते ॥ ३ ॥

ग्रामः स्यान्निगमादनो ग्रामकैलपो ग्रहस्त्वसौ ।

गोकुलावासमिच्छन्ति गोष्ठमल्पं तु गोष्ठकम् ॥ ४ ॥

१. 'द्व', २. 'द्वसंयदायो', ३. 'कस्यय' ख, पाठः ।

उपस्थानं भवेद् राज्ञां यत्र तत् पत्तनं विदुः ।
 बहुस्फीतवणिग्युक्तं तदुक्तं पुटभेदनम् ॥ ५ ॥
 विधाय कुटिका यत्र पत्रशाखातृणोपलैः ।
 पुलिन्दाः कुर्वते वासं पल्ली स्वल्पा तु पल्लिका ॥ ६ ॥
 नगरं वर्जयित्वान्यत् सर्वं जनपदः स्मृतः ।
 नगरेण सप्तं कृत्स्नं राष्ट्रे देशोऽथ मण्डलम् ॥ ७ ॥
 आवासः सदनं सग्न निकेतो मन्दिरं मतम् ।
 संस्थानं निधनं धिष्ण्यं भवनं वसतिः क्षयः ॥ ८ ॥
 अगारं संश्रयो नीडं गेहं शरणमालयः ।
 निलयो लयनं वेश्म गृहमोकः प्रतिश्रयः ॥ ९ ॥
 गृहस्योपरिभूमिर्या हर्म्यं तत् परिकीर्तितम् ।
 तस्यारोहणमार्गो यः सोपानं तत् प्रचक्षते ॥ १० ॥
 काष्ठकैर्यत्र रचितं स्थूणयोरधिरोहणम् ।
 सा निःश्रेणिरिति प्रोक्ता सोपानैर्विपुलैः पदैः ॥ ११ ॥
 स्मृतः काष्ठविट्क्लोज्जसौ यत् काष्ठैः संवृतं गृहम् ।
 सुधालिप्ततलं हर्म्यं सौधं स्यात् कुट्टिमं च तत् ॥ १२ ॥
 वर्षाभयेन या छान्ना तालशैकदलादिभिः ।
 स्मृताभिगुप्तिरन्तस्था सर्वोपरि गृहस्य सा ॥ १३ ॥
 वातायनं तु भित्तीनामवलोकनमुच्यते ।
 लघुर्वातयनो यः स्यादवलोकनकं हि तत् ॥ १४ ॥
 हर्म्यस्य मध्ये यच्छिद्रं स उलोक इति स्मृतः ।
 हर्म्यमाकारकः स स्यात् कण्ठा हर्म्यतलस्य या ॥ १५ ॥
 वितर्दिकाष्टमाला स्यात् सर्वतश्छेदमूलगा ।
 तत्स्तम्भेषु मृगा ये तु ते स्युरीहामृगा इति ॥ १६ ॥
 निर्युहो हर्म्यदेशाद् यः काष्ठानामुपनिर्गमः ।
 वलीकमिति विज्ञेयं काष्ठं छेदाद् विनिर्गतम् ॥ १७ ॥

छेदधत्तुभिः पार्श्वयन् तदुत्थालमुच्यते ।

त्रिभिस्त्रिनालं तत् प्राहुर्द्वाभ्यां तत् स्याद् द्विशालकम् ॥ १८ ॥

एकशालकमेकेनच्छन्नेन गृहमुच्यते ।

गृहमेकं तु यच्छन्नं सर्वं शालेति सा स्मृता ॥ १९ ॥

शालानां यत् पुनर्मध्यं वापी पुष्करिणी च सा ।

संछन्ना (चास्ता)पि यस्य स्यात् तद् गर्भगृहमुच्यते ॥ २० ॥

गृहे महान्नस्थानं त्रिकुड्यं यत् प्रकल्पितम् ।

उपस्थानं तदवाहुः स्याद्योपस्थानकं लघु ॥ २१ ॥

प्रासादस्तु स एव स्यादल्पा प्रासादिका स्मृता ।

दीर्घप्रासादिका यासां बलमीत्यभिधीयते ॥ २२ ॥

शालाग्रे बलमी या स्यादलिन्देति वदन्ति ताम् ।

शालां विना तु बलमी बलमेति निगद्यते ॥ २३ ॥

अल्पाल्पास्तु चतुष्कुड्या ये तेऽपवरका मताः ।

गृहे चाभ्यन्तरस्थानं शुद्धान्त इति कीर्त्यते ॥ २४ ॥

प्रतोलीं तां विदुर्लोकः सुरङ्गामिव यां वसेत् ।

सा कक्षेत्युदिता तज्ज्ञैर्यदवस्थान्तरं गृहे ॥ २५ ॥

यदुपस्थानकं नाम ये चापवरकास्तथा ।

ते कोष्ठका या तु कण्ठा कुड्यं मित्तिश्चयश्च सा ॥ २६ ॥

भैक्तशाला भवेद् या तु तन्महानसमुच्यते ।

यच्छन्नं द्वारदेशे तु तमाहुर्द्वारकोष्ठकम् ॥ २७ ॥

प्रवेशनमिति प्राहुर्द्वारनिर्गमनं तथा ।

जलनिर्गमनस्थानं विज्ञैर्यमुदकभ्रमः ॥ २८ ॥

भवनस्याङ्गणं यत् तदाहुर्मवनान्जिरम् ।

वनान्जिरं वनमही त्वाश्रमाजिरमाश्रमे ॥ २९ ॥

उत्तरोदुम्बरस्याधः श्लिष्टां मध्ये च कुड्ययोः ।

तज्ज्ञास्तां देहलीत्याहुः कपाटाश्रयमेव च ॥ ३० ॥

१. 'छि', २. 'सर्वशा' क. पाठः । ३. 'भ्येति विधीयते' ख. पाठः । ४. '२',
५. 'वृत्तिया' क. पाठः । ६. 'य उद', ७. 'विजयोः' ख. पाठः ।

कपाटे द्वारपक्षः स्यात् कपाटपुटमेव च ।

पक्षः पिधानो वरणो द्वारसंवरणं तथा ॥ ३१ ॥

कपाटं संपुटस्ते द्वे (!) कपाटयुगलं च तत् ।

कलिका द्वारवन्धार्था या स्यात् तामर्गलां विदुः ॥ ३२ ॥

सा स्यादर्गलमूनीति यदि दीर्घा प्रमाणतः ।

पुराणां सा तु परिधः फलिहो गजवारणम् ॥ ३३ ॥

छिद्रैर्गवाक्षप्रतिमैश्छिद्रितं सर्वतस्तु यत् ।

फलकं तद् गवाक्षः स्याज्जालमित्यपि कथ्यते ॥ ३४ ॥

हर्म्यद्वारे गृहद्वारे तथा हर्म्यावलोकने ।

प्राकारान्तरपृष्ठे तु या च प्रासादिका भवेत् ॥ ३५ ॥

पार्श्वयोरुभयोरेषां फलकद्वयमुच्छ्रितम् ।

उपर्युपरि संश्लिप्तमर्धचन्द्रद्वयाकृति ॥ ३६ ॥

आनने द्वे यथा चास्मिन् श्लिष्टैरर्धमहाधरैः ।

तयोरुपरि सन्ध्यां च तारकाकृति मण्डलम् ॥ ३७ ॥

तत् तोरणमिति प्रोक्तं यच्च तेन परिष्कृतम् ।

सुवर्णतोरणं च स्यान्मणितोरणमेव च ॥ ३८ ॥

पुष्पतोरणमप्येतन् क्रियते पुष्पकादिभिः ।

तोणामग्रे ठकारो यः सिंहकर्णः स उच्यते ॥ ३९ ॥

नाम्ना संयमनानीति गृहसञ्चरभूमयः ।

गृहस्य पार्श्वे यद्यस्मिस्तत् तत्संयमनं विदुः ॥ ४० ॥

भित्तेर्यद्वाथ दारुणां तरङ्गाग्रवद्भानतम् ।

मरालर्पाली सा हर्म्या(न्) मणाली निर्गमोऽम्भसः ॥ ४१ ॥

स च प्राकार इत्युक्तः कण्ठः स्पाद्गणस्य यः ।

द्वारस्ये तु समीपं यत् प्रद्वारं तदिहोच्यते ॥ ४२ ॥

१. 'नारणे' इति क. पाठः । २. 'कपटे', ३. 'ज्ञा' ख. पाठः । ४. 'वावन',
५. 'दानन' क. पाठः । ६. 'भित्तमामान्यं वाद्य परिमरो मयः । निर्मालंमुष्कृतं
मयी' (!) ख. पाठः । ७. 'स च समीपे यत्' क. पाठः ।

छेदभूतभिः पार्श्वर्यत् तप्तुग्गान्
 त्रिमिस्त्रिशालं तत् प्राहुर्द्वाभ्यां
 एकशालकमेकेनच्छन्नेन गृहमुख्यं
 गृहमेकं तु यच्छन्नं सैव शालेति
 शालानां यत् पुनर्मध्यं वापी पु
 सेच्छन्ना (चाँसा)पि यस्य स्यात्
 गृहे महाजनस्थानं त्रिकुड्यं यत्
 उपस्थानं तदताहुः स्याचोपस्था
 मासादस्तु स एव स्यादल्पा प्रा
 दीर्घप्रासादिका यासौ बलमीत्य
 शालाग्रे बलमी या स्यादलिन्द
 शालां विना तु बलमी बलमेति
 अल्पाल्पास्तु चतुष्कुड्या ये ते
 गृहे चाभ्यन्तरस्थानं शुद्धान्त इ
 प्रतोलीं तां विदुर्लोकः सुरङ्गाणि
 सा कक्षेत्युदिता तज्ज्ञैर्यदवस्थानं
 यदुपस्थानकं नाम ये चापवरक
 ते कोष्ठका या तु कण्ठा कुड्यं ति
 भेक्तशाला भवेद् या तु तन्महान
 यच्छन्नं द्वारदेशे तु तमाहुर्द्धारको
 प्रवेशनमिति प्राहुर्द्धारनिर्गमनं तथा
 जलनिर्गमनस्थानं विज्ञैर्यमुदकभ्रम
 भवनस्याङ्गणं यत् तदाहुर्मवनार्
 वनाजिरं वनमही त्वाश्रमाजिरमाश्
 उत्तरोदः

क्रीडागृहं यदत्रोक्तं क्रीडागारं तदुच्यते ।
 विहारभूमिराक्रीडभूमिरित्यभिधीयते ॥ ५६ ॥
 देवधिष्ण्यं सुरस्थानं चैत्यमर्चागृहं च तत् ।
 देवतायतनं प्राहुर्विबुधागारमित्यपि ॥ ५७ ॥
 छत्रं भवेद् यत्तु महाजनस्य स्थानं सभा सा कथिता च शाला ।
 गवां पुनर्मन्दिरमत्र गोष्ठमाचक्षते वास्तुनिवेशविज्ञाः ॥ ५८ ॥

इति महासज्जाधिपञ्चग्रीभोजदेवधिरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनामिन् वास्तुशास्त्रे
 नगरकर्त्रेऽग्रामगृहायतनसंज्ञा नामाष्टादशोऽध्यायः ॥

अथ चतुःशालविधानं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।

ब्रूमो नृपचमूनाथवर्णिनां भवनान्यथ ।
 मशस्तान्यप्रशस्तानि कृत्स्नान्यपि यथाक्रमम् ॥ १ ॥
 वेश्मनामेकशालानां शतमष्टाधिकं स्मृतम् ।
 द्वापञ्चाशद् द्विशालानां त्रिशालानां द्विसप्ततिः ॥ २ ॥
 चतुःशालानि वेश्मानि यानि तेषां शतद्वयम् ।
 पञ्चाशचाधिका पद्मिर्विज्ञातव्या मनीषिभिः ॥ ३ ॥
 सहस्रं पञ्चशालानां स्यात् तथा पञ्चविंशतिः ।
 पदशालानां पण्णवतिः स्यात् सहस्रचतुष्टयम् ॥ ४ ॥
 अष्टाङ्गे त्वेकशालस्य भेदाः पञ्चाशदीरिताः ।
 द्विशालानां तु सर्वेषां प्रभेदाः शतपञ्चकम् ॥ ५ ॥
 शतं शतं च प्रत्येकं त्रिशालानामुदाहृतम् ।
 द्विचत्वारिंशदधिकं चतुःशालैश्चतुष्टयम् ॥ ६ ॥
 दिनवत्युत्तराण्येवं शतानि दश सप्त च ।
 षोडशैव सहस्राणि षोडशोना चतुःशती ॥ ७ ॥

यदिष्टकचितं मृले द्वारस्य भवति स्थलम् ।

दीर्घं वा ह्रस्वमथवा तदास्थलकमिष्यते ॥ ४३ ॥

मूत्रभूमिरमेध्येति वर्चस्कोऽवस्करस्तथा ।

गृहाच्च भित्तिरामान्यं पादं पगिरसो मतः ॥ ४४ ॥

निस्तीर्णमुच्छ्रितं यन् स्याद् येष्व सोऽष्ट उदाहृतः ।

संक्षिप्तमेतदेवोक्तं तज्जोरट्टालकाख्यया ॥ ४५ ॥

तदेवात्यन्तसंक्षिप्तमट्टालीति निगद्यते ।

अट्टाली या तु नात्युच्चा तामत्राट्टालिकां विदुः ॥ ४६ ॥

एकनाडीगतच्छिद्रैः काष्ठनालैः परिश्रितम् ।

यत्र काष्ठप्रणालीति^१ छदपृष्ठेऽभ्यु धावति ॥ ४७ ॥

स्तम्भशीर्षकरूपाणि काष्ठमूत्राश्रितानि च ।

सुपिराणि प्रयत्नेन काष्ठनाडीमुखान्तरैः(?) ॥ ४८ ॥

रूपाणामथ तेषां तु स्तननासामुखाक्षिभिः ।

नानास्थानस्थितानां च वृषवानरदंष्ट्रिणाम् ॥ ४९ ॥

कृतमूक्ष्मान्तरच्छिद्रैः प्रवर्पति समन्ततः ।

तद् धारागृहमित्युक्तं धारागासदिनामभृत् ॥ ५० ॥

कांस्यैर्लोहैस्तथा पट्टैर्निर्मृष्टादर्शनिर्मलैः ।

निचिता यस्य भित्तिः स्वात् तद् दर्पणगृहं विदुः ॥ ५१ ॥

पक्षद्वारं तदत्राहुर्नमहाद्वारतोऽपरम् ।

यत् प्राकाराश्रितं द्वारं पुरे तद् गोपुरं विदुः ॥ ५२ ॥

निर्गताधोच्छ्रिताश्चैव प्राकारस्यान्तरान्तरा ।

उपका(ल्या?) इति प्रोक्ताः क्षौमाद्याट्टालका मताः ॥ ५३ ॥

चयप्राकारशालाः स्युः पुरीसंवरणाभिधाः ।

प्राकारादनुपालास्तु प्राकार उपनिष्कलाः(?) ॥ ५४ ॥

क्रीडागृहं यदारामे तदुद्यानं प्रचक्षते ।

तीरेऽम्भसो जलोद्यानं जलवेदमाम्बुमध्यगम् ॥ ५५ ॥

१. 'मौत्रभूमिरमेध्येति धान्तो व', २. 'कृतम्' ए. पाठः । ३. 'भिः' क. पाठः ।
४. 'धावति', ५. 'स्युः' ए. पाठः ।

कर्णमूत्राद् ग्रहिः स्तम्भान् न्यसेन् सर्वान् प्रयत्नतः ।

धान्नां पौडशहस्तानां पञ्चानां चतुरुत्तरा ॥ २१ ॥

वृद्धिः शालास्तु तेषां स्पृशतुरंगेन विस्तृताः ।

शालाव्यामार्थनोऽलिन्दः सर्वेषामपि वेष्मनाम् ॥ २२ ॥

तस्याः पौडशहस्ते स्यान् पञ्चमांगद्वयेन वा ।

सप्तमांगद्वयेण स्याद् द्वयोरपरवेष्मनोः ॥ २३ ॥

अन्त्ययोर्हस्तयोः स स्याद्यतुभिर्नवपांगकैः ।

पञ्चभिः पद्मभिरेभिश्च सार्धैः सौष्ट्विनगैः कर्णैः ॥ २४ ॥

दैर्घ्यं स्याद् दशभिः सार्धैः शालायाः पौडशादिषु ।

निवेगदशपांगो यः स युतः सप्तभिः कर्णैः ॥ २५ ॥

शालाया विस्तरः प्रोक्तः श्रेष्ठानामिह वेष्मनाम् ।

अलिन्दमानं प्रागेव प्रोक्तं निग्विलवेष्मनाम् ॥ २६ ॥

यच्छालालिन्दयोः शेषं भवेद् गर्भगृहे हि तत् ।

मृषापेच्छिन्नमिच्छन्ति शालादैर्घ्यं विवर्धितः ॥ २७ ॥

शालाव्यामप्रमाणा स्यान् सर्वेषामवकोमिता ।

दिनासु भवन्ते शाला विदिशार्कगतामयः(१) ॥ २८ ॥

कर्णशाला तत्रैतु या प्रोक्ता सा च शेषारकोमिता ।

अलिन्दशालयोर्मध्ये या स्यान्मृषेति सा स्यूता ॥ २९ ॥

• पूर्वद्वारं नियम्याद्रात्रादिमृषा तदुत्तरा ।

मृषा भद्रा इति प्राह्मन्मन्त्रेषामवधारणेन ॥ ३० ॥

यावन्मृषं भवेद् वेष्म तावद् भद्रं तदुत्तरे ।

भद्राम्रे शुकदिशस्थे गौम्यार्माम्ने यमाश्रिते ॥ ३१ ॥

शान्ताशान्ते मनीषीर्म्ये गौम्यादिर्म्ये गिरानिर् ।

अलिन्दा इति केज्याद्रुमृषा इत्यरे विदुः ॥ ३२ ॥

१. 'हस्त' क. पठः । २. 'स्तम्भ' ग. पठः । ३. 'विस्तृता' द. 'स्तम्भ' । ४. 'मृषा' । ५. 'मृषा' । ६. 'मृषा' । ७. 'मृषा' । ८. 'मृषा' । ९. 'मृषा' । १०. 'मृषा' । ११. 'मृषा' । १२. 'मृषा' । १३. 'मृषा' । १४. 'मृषा' । १५. 'मृषा' । १६. 'मृषा' । १७. 'मृषा' । १८. 'मृषा' । १९. 'मृषा' । २०. 'मृषा' । २१. 'मृषा' । २२. 'मृषा' । २३. 'मृषा' । २४. 'मृषा' । २५. 'मृषा' । २६. 'मृषा' । २७. 'मृषा' । २८. 'मृषा' । २९. 'मृषा' । ३०. 'मृषा' । ३१. 'मृषा' । ३२. 'मृषा' ।

पेष्मानि मसशालानि भवन्ति परिमहचया ।

पञ्चपट्टिसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ॥ ८ ॥

गृहाणामष्टशालानां पदविंशदपरा भवेत् ।

लक्षद्वयं सहस्राणि द्विपट्टिः शतमेव च ॥ ९ ॥

गृहाणां नवशालानां चत्वारिंशत्तुर्गुता ।

दशलक्षसहस्राणि चत्वारिंशत् तथाष्ट च ॥ १० ॥

शतानि दशशालानां पञ्च पदसप्ततिस्तथा ।

गृहद्वितययोगेन संयुक्ताख्यानि विंशतिः ॥ ११ ॥

गृहद्वितययोगेन द्वात्रिंशद्दिह पेष्मनाम् ।

दशपञ्च तथान्यानि भवन्ति हलकान्यपि ॥ १२ ॥

गृहमालाय सहस्रो गृहनाभिर्गृहाङ्गणम् ।

उद्भिन्नं भिन्नकक्षं च निलीनं प्रतिपादितम् ॥ १३ ॥

अन्यानि चाष्टभेदानि भवन्त्युत्तमवर्णिनाम् ।

लक्षणं नाम संस्थानं चैतेषां प्रतिपाद्यते ॥ १४ ॥

वर्णिनां स्याच्चतुःशालं मितं द्वात्रिंशता करैः ।

सेनापतेश्चतुःपट्टिस्तद्वदेव पुरोधसः ॥ १५ ॥

श्रेष्ठमष्टशतं राज्ञामेतानि तु यथाक्रमम् ।

चतुःषडष्टहान्या स्युः पञ्चमं च पृथक् पृथक् ॥ १६ ॥

विशोधयेत् कनीयोभिर्मध्यमानि यथाक्रमम् ।

नरेन्द्रपुरुषाणां स्युर्वेदमान्येतानि वृद्धये ॥ १७ ॥

गृहाणि शोधयेत् प्राग्वज्ज्यायांस्पपि च मध्यमैः ।

भवन्त्येतानि भूपानां रतिकोशप्रतिश्रयाः ॥ १८ ॥

दशांशयुक्तो विस्तारादायामो विमवेष्मनाम् ।

अष्टपदचतुरंशाढ्यः क्षत्रादित्रयवेष्मनाम् ॥ १९ ॥

यो विस्तारः स एव स्यादायामोऽस्मिन् यथाक्रमम् ।

विदशद्रयोः स्यादाधिक्यं मध्ये ज्येष्ठे च सप्तनि ॥ २० ॥

कर्णमृत्राद् बहिः स्तम्भान् न्यसेत्तु सर्वान् प्रयत्नतः ।

धाम्नां पौड्यदस्तानां पञ्चानां चतुरुत्तरा ॥ २१ ॥

वृद्धिः शालास्तु तेषां स्पृशतुरंगेन विस्तृताः ।

शास्त्राज्यासार्धतोऽग्निन्द्रः सर्वेषामपि वैश्वनाम् ॥ २१ ॥

तस्याः षोडशहस्ते स्यान् पञ्चमांशद्वयेन वा ।

मत्तमांशत्रयेण स्याद् द्वयोरपरवेद्यमनोः ॥ २३ ॥

अन्त्ययोर्हस्तयोः स स्याद्यतुभिर्नवमांशकैः ।

पञ्चभिः पद्मभिरेभिश्च सार्धं सौहृद्विन्नयः करैः ॥ २४ ॥

द्वैध्यं स्याद् दृशभिः मार्भैः शाल्यायाः षोडशादिषु ।

निवेद्यदशमांशो यः स युतः सप्तभिः करैः ॥ २५ ॥

शालाया विम्बरः श्रोतः श्रेष्ठानामिह वंशनाम् ।

अलिन्दमानं प्रागेव मृतं निगिर्येयम्नाम् ॥ २६ ॥

यन्तात्याल्लिन्द्याः शेषं भवेद् गर्भगृहे हि तन् ।

मृषावेच्छिन्नमपिच्छन्ति शाल्यादयं विषयिनः ॥ २७ ॥

शान्दाद्यामयमाणा स्यात् सर्वेषामवक्रोक्तिमा ।

दिनागु भवने प्राच्या विदिशारुर्णसामयः(१) ॥ २८ ॥

पर्णशाल्या (ततु) या प्रोक्ता या च शेषावहोगमिमा ।

भलिन्दशालयोर्मध्ये या स्थान्मृंसति या स्मृता ॥ २९ ॥

० पूर्वक्षरं नियम्यादावादिमृषा नदनरा ।

मृगा भद्रा इति प्राहुर्मन्त्रमग्न्यामन्त्रशास्त्रम् ॥ ३० ॥

याचन्मृगं भवेद् वैष्णव तत्रिह मद्रं तदुत्पत्ते ।

भद्राभदे शुकश्चिह्नये गौड्यागौड्ये यमाश्रिते ॥ ३१ ॥

शान्ताशान्ते प्रतीर्षाम्ये गौम्यद्विरस्ये शिरागिरे ।

अलिन्दा इति केज्याहृमता इत्यसौ रिदुः ॥ ३२ ॥

१. 'सुखे' क. वाच्यः । २. 'सुखं' क. वाच्यः । ३. 'सुखम्' क. वाच्यः ।
४. 'सुखे' क. वाच्यः । ५. 'सुखं' क. वाच्यः । ६. 'सुखम्' क. वाच्यः ।

भद्रा इति जगुः केचिदन्ये परितरा इति ।

एकद्वित्रिचतुःपञ्चदशगता(ष्टौष्ट)क्रमेण याः ॥ ३३ ॥

मूपास्नागां प्रवहणामेहाः स्युर्वंश्मनामिह ।

तासामाद्याः प्रवहणाः स्युरप्रवहणास्ततः पराः ॥ ३४ ॥

नामतो गुणतश्चैव शुभाशुभकण्ठोदयोत् ।

अष्टावादा गुरुन् न्यस्येत् ततश्चाथगुरोरथः ॥ ३५ ॥

लघुं न्यस्येत् ततः शेषान् विदधीत यथोपरि ।

गुरुभिः पूरयेदादिं यावत् स्युर्लघवोऽखिल्याः ॥ ३६ ॥

§ आद्यपङ्क्तौ गुरुश्चैको लघुश्चैको यथाक्रमम् ।

अतः परं तु द्विगुणाः प्रतिपङ्क्तिं भवन्त्यमी ॥ ३७ ॥

मूपाभेदाश्चतुःश्ले पदपञ्चाशच्छतद्वयम् ।

अलिन्दवीथीमग्रीवनिर्गृहकगवाक्षकः ॥ ३८ ॥

तमङ्गभद्रविन्यासरचनाभिरनेकधा ।

अपरस्परसंवाधात् संवृत्तैर्विवृत्तैरपि ॥ ३९ ॥

गृहभेदाः प्रमूयन्ते येषां संख्या न विद्यते ।

यत्सर्वेद्वचतुश्शालममूपाखिन्दकं हि तत् ॥ ४० ॥

एकभद्रादिगेहानां द्रूमो नामान्यतः परम् ।

यान्येकलघुलक्षणाणि प्रस्तारे तानि तद्विदः ॥ ४१ ॥

कथयन्त्येकभद्राणि क्रमसंख्याविभागतः ।

प्रागायतं प्राग्विलग्नं जयं संयमनप्रियम् ॥ ४२ ॥

प्रतीच्यं प्रासविन्यासं सुभद्रं कलहोचरम् ।

अष्टौ तान्येकभद्राणि द्विभद्राण्यभिदध्महे ॥ ४३ ॥

१. 'णाः सं', २. 'यः' क. पाठः । ३. 'अष्टधादौ' ख. पाठः ।

५. 'यद्वं च' क. पाठः ।

§ 'आद्यपङ्क्तौ प्रथमायामावली एको गुरुः, तस्याधस्तादपरो लघुः कर्तव्यः । एवं यथाक्रमं प्रस्तारसंख्याकृतिव्यालिखेत् । तद्यथा—चतुर्गुणप्रस्तारे षोडश गुरुलघवः । ततस्तदमग्रीवो द्वौ गुरुः द्वौ लघुः इति एकैकस्याधो न्यसेत् । तदप्रतोऽपि चत्वारो गुरवभवावो भवः । ततोऽपि अष्टौ गुरवः अष्टौ लघवः । एवं प्रतिपङ्क्तिं द्विगुणान् गुरुलघून् न्य-
अयमपरः प्रस्तारः ।' इति दिग्गणमस्ति ।

पूर्वोत्तरोत्तरं पूर्वाद् भद्रादिह विधानतः ।
 स्यातां प्राग्मेलकाद्यद् पूर्व्या दक्षिणा परे(?) ॥ ४४ ॥
 ईरं सुनीर्थमाप्तेयं द्वीपमाप्यं सुसंयमम् ।
 अर्धचर्ममं व्याकोशं नैर्ऋतं वृषमं विनम् ॥ ४५ ॥
 कौव्यं विपासमानीरं कान्तं सौमं विपश्चिमम् ।
 गवयं श्रीचहं श्लिष्टं गणं भीममयोगमम् ॥ ४६ ॥
 यतं चले श्लठं क्रान्तमित्यष्टाविंशको गणः ।
 द्विभद्राणां समारुयातस्त्रिभद्राणामतः परम् ॥ ४७ ॥
 ऐन्द्रं विलोममायामं वधमेकाक्षर्मन्तिकम् ।
 मकाशं पैत्रमायस्तं भद्रं प्रान्तं प्रसाधकम् ॥ ४८ ॥
 क्षेमं विघातमायातं कान्तं चित्रं द्विमन्दिरम् ।
 सुदक्षिणं भयं श्लिष्टं प्रमोदं व्यायतं वियत् ॥ ४९ ॥
 ब्राह्म्यं सुनार्गं नागेन्द्रमीरितं शोभनं घनम् ।
 शस्तोचरं कर्णं कर्णं कुष्टं कान्तं क्रमागतम् ॥ ५० ॥
 द्विद्यस्तं द्विभयं प्रोक्तं चक्रं मलयमायतम् ।
 वनं भारं सुगाराख्यमागारं वीरमेव च ॥ ५१ ॥
 व्यायाममायुतं तद्वा व्याहृतं च ततः परम् ।
 दुर्गमं क्षोभंसंज्ञं च कृत्रिमं क्षोभणं तथा ॥ ५२ ॥
 चारुस्त्र्याभिधानं च ध्रुवं कथमिति क्रमात् ।
 पद्मञ्चाञ्चत् त्रिभद्राणि चतुर्भद्राण्यतः परम् ॥ ५३ ॥
 कृतमर्चायने पौष्णमुद्गतं मिश्रमुत्सुकम् ।
 विघ्नं विपक्षमाहृतं रुचकं वर्धनं पृथुं ॥ ५४ ॥
 * कलहं छेलमायास्यं त्रिनाभं स्वस्तिकं स्थिरम् ॥ ५५ ॥

१. 'प्राधेलिका' ख. पाठः । २. 'तमा' क. पाठः । ३. 'द्वीप बाष्पमु',
 ४. 'कव्यं विकाशमा', ५. 'तम्', ६. 'मान्तरम्' ख. पाठः । ७. 'क्षेम',
 ८. 'नयं', ९. 'मत्तं', १०. 'धुह' क. पाठः । ११. 'चल' ख. पाठः ।

✓

वाजि नेत्रं भ्रमं घोषं सप्तभद्राण्यतः परम् ।
भाण्डीरं * वैसंहं प्रस्थं मतानं वासुलं कटम् ॥ ६८ ॥
लक्ष्मीवासं सुगन्धान्तमष्टधैतानि नामतः ।
अन्यच्च सर्वतोभद्रमेकं भद्राभिरष्टभिः ॥ ६९ ॥
संप्रकल्प्यं चतुःशालं मूमाश्रयां शुभाशुभम् ।
प्रदक्षिणा शुभा मूपा विपरीता विपर्यये ॥ ७० ॥
समवाये यथा मूयो जानीयात् साध्वसाधु च ।
तथाष्टात्रैकभद्राणि सप्तभद्राणि च क्रमात् ॥ ७१ ॥
द्विभद्राण्यष्टभिर्धुक्ता पद्भद्राणि च विंशतिः ।
पद्पञ्चाशत् त्रिभद्राणि पञ्चभद्राणि चोन्नयेत् ॥ ७२ ॥
सप्ततिथि चतुर्भद्राण्येकं भद्राभिरष्टभिः ।
एवं शतद्वयं पिण्डः पद्पञ्चाशच्च वेश्मनाम् ॥ ७३ ॥
भद्रैः पूर्वविधानेन चतुःशालाक्रियादिषु ।
मूपा स्यात् कुड्यमैस्तेषु चतुःशालेषु वेश्मसु ॥ ७४ ॥
अनुवंशाश्रिते मूपा स्वस्तिके तत्पराङ्मुखे ।
मुखायते च पुरतो द्वे स्यातामवकोसिमे ॥ ७५ ॥
नोदङ्मुखः स कर्तव्यः कार्यः प्राग्जीवसंयुतः (?) ।
वर्धमाने तथा कार्थेय्यो यथा प्राग्जीवसंयुतः ॥ ७६ ॥
वर्धमाने तथा कार्ये द्वारमूपा मुखायते ।
मूपाया दक्षिणे स्यातां दीर्घवामेऽवकोसिमे ॥ ७७ ॥
नन्द्यावर्तगृहे सर्वा नन्द्यावर्ता भवन्ति ताः ।
द्वे(स्तरुम्)पे रुचके स्यातामायते त्ववकोसिमे ॥ ७८ ॥
सर्वद्वारवहा मूपाः सर्वतोभद्रवेश्मनि ।
आदिमूपा भवेदेका गृहं प्रागायतं हि तत् ॥ ७९ ॥
द्वितीयया प्राग्विलग्नमेकया तदनन्तरम् ।
प्रदक्षिणेन वेश्मानि जयादीन्येकयैकया ॥ ८० ॥

मृषया मृषुः क्रमादेवं कथ्यन्ते तत्कल्पान्यथ ।

धनमर्थविनाशश्च नपर्थनाशुभं सदा ॥ ८१ ॥

प्रीतिरुद्वेगकल्याणकलहाप्यनुक्रमात् ।

यत्र पूर्वं उभे मृषे तर्द्धारं परिकीर्तितम् ॥ ८२ ॥

यत्र पूर्वा तृतीया च तत् : सुनीतं गृहं विदुः ।

आग्नेये द्वितृतीये स्तो द्वीपे चाद्यचतुर्थके ॥ ८३ ॥

द्विचतुर्थ्यां तथाचाप्ये विचतुर्थ्यां सुसंयमे ।

अर्धर्चे त्वाद्यपञ्चम्यां द्वितीयमे सपञ्चमी ॥ ८४ ॥

व्याकोशे च विपञ्चम्यां नैर्ऋते दिशराभिधे ।

वृषमे प्रथमापष्ठ्यां द्विपष्ठ्यां च तथा विने ॥ ८५ ॥

काव्ये तृतीया पष्ठी च विपासेऽब्धिरसाभिधे ।

आनीरे पञ्चमीपष्ठ्यां साद्या कान्ते च सप्तमी ॥ ८६ ॥

सौमे द्वितीयासप्तम्यां त्रिसप्तम्यां विपथिमे ।

गवये सप्तमीतुर्ये श्रीवहे पञ्चसप्तमी ॥ ८७ ॥

सपष्ठी सप्तमी श्रिष्ट्रे गणे पूर्वाष्टमी तथा ।

भीमेऽष्टमी द्वितीया च व्यष्टम्यां चाप्ययोगमे ॥ ८८ ॥

वर्ते चतुर्थी पष्ठी च पञ्चमी चाष्टमी चले ।

पष्ठयष्टम्यां शठे क्रान्ते सप्तमी चाष्टमीति च ॥ ८९ ॥

इत्यष्टाविंशतिः प्रोक्ता द्विभद्राणामिहोक्तसाम् ।

अथ भूमस्त्रिभद्राणि तत्रैन्द्रं पुष्टिवर्धनम् ॥ ९० ॥

स्याद् याम्यपश्चिमद्वारमाद्यमृषात्रयान्वितम् ।

आद्या द्वितीया तुर्या च यस्य द्वारं विपथिमम् ॥ ९१ ॥

विलोमं नाम तद् वेदम शूद्राणां पुष्टिवर्धनम् ।

आद्या तृतीया तुर्या स्यादायामे सर्वतोमुखे ॥ ९२ ॥

वधे द्वित्रिचतुर्थ्यः स्पुर्द्धारं च स्यादुदग्दिशि ।

यत्र साद्ये द्विपञ्चम्यायेकाधं तदुदाहृतम् ॥ ९३ ॥

त्रये यत्र द्विपञ्चम्यौ तत् प्रोक्तं गृहमन्तिकम् ।
 त्र स्युर्द्वित्रिपञ्चम्यः प्रकाशं सर्वदृढिकृत् ॥ ९४ ॥
 त्र चतुर्थीपञ्चम्यौ यत्र तत् पत्रमुच्यते ।
 त्रमी द्विचतुर्थ्यां च यत्रापस्तं तदीरितम् ॥ ९५ ॥
 त्रचतुःपञ्चमीयुक्तं भद्रमाहुर्मनीषिणः ।
 त्रया द्वितीया पष्ठी च यत्र तत् प्रान्तशब्दितम् ॥ ९६ ॥
 त्रया तृतीया पष्ठी च स्यात् प्रसाधकवेष्मनि ।
 त्र भवेत् सर्वतोद्धारं तथा सर्वार्थसाधकम् ॥ ९७ ॥
 त्रिपा च तृतीया च पष्ठी च क्षेमनापनि ।
 त्र प्रत्यग्दिशि द्वारं शूद्रवर्गस्य चेष्टदम् ॥ ९८ ॥
 त्र चतुर्थी चाद्या च स्युर्विधाताख्यवेष्मनि ।
 त्र द्वितुर्ये यस्मिस्तदायातं दक्षिणामुखम् ॥ ९९ ॥
 त्रतुस्त्रियुतं कान्तं तत् स्यात् सर्वार्थसाधकम् ।
 त्रश्चाद्यौनितं चितं तच्च स्याद् याम्यदिहमुखम् ॥ १०० ॥
 त्रिपञ्चमीपष्ठयो यस्मिन् स्युस्तद् द्विमन्दिरम् ।
 त्रिपञ्चमीपष्ठ्यस्तद् वदन्ति मुदक्षिणम् ॥ १०१ ॥
 त्रिपञ्चमीपष्ठ्यो भये स्युस्तन्न दृढिकृत् ।
 त्रितीयासप्तम्यो यत्र तच्छिष्टसंज्ञितम् ॥ १०२ ॥
 त्रस्यमिदमिच्छन्ति शुभं सर्वार्थदं नृणाम् ।
 त्रतीयासप्तम्यौ प्रमोदे परिकीर्तिते ॥ १०३ ॥
 त्रुर्द्वित्रिसप्तम्यस्तद् वेष्म व्यापनं स्मृतम् ।
 त्र च चतुर्थी च सप्तम्यपि च तद् वियत् ॥ १०४ ॥
 त्रसप्तमीमृषमाप्यं स्याद् दक्षिणामुखम् ।
 त्रसप्तमीभिस्तु गुनागं वेष्म कीर्त्यते ॥ १०५ ॥
 त्रम्पापरमुखं पनशान्यमुखप्रदम् ।
 त्रपञ्चमी पूर्वा मृषां नागेन्द्रसंज्ञिते ॥ १०६ ॥

मृगा द्विपञ्चममृगां गार्ग्यं च मृगशीर्षिने ।

त्रिपञ्चममृगांमृगाशोभिने शोभिने भवेत् ॥ १०७ ॥

चतुर्थी पञ्चमी यत्र ममृगयि च तद् वनम् ।

पूर्वा षष्ठी ममृगी च स्मृता शम्भोशरं गृहे ॥ १०८ ॥

द्वितीया ममृगीषाष्टमी यस्मिन्स्तद् कृत्तमंजितम् ।

द्वारं वाष्णमेषस्य द्वितं च स्याद् द्वितन्मनाम् ॥ १०९ ॥

कर्णं स्यान् पश्चिमद्वारं त्रिषाष्टीममृगीषुतम् ।

चतुर्थीममृगीषाष्टमी मृगाः स्युः कृत्तमंजिते ॥ ११० ॥

ममृगीपञ्चमीषाष्टीयुक्तं क्रान्तं यत्रमृगम् ।

भाषाष्टमी द्वितीया च मृगा प्रोक्ता क्रमागते ॥ १११ ॥

आषाष्टमी तृतीया च द्विदस्ते भवने स्मृताः ।

यत्राष्टमी त्रिद्वितीये द्विभगं तद्दादितम् ॥ ११२ ॥

आषाष्टमी चतुर्थी च यत्र तद्यत्रमंजितम् ।

तुर्थाष्टमी द्वितीया च यत्र तन्मन्त्रं विदुः ॥ ११३ ॥

तुर्थाष्टमी तृतीया च यत्र तन् प्रोक्तमायतम् ।

आषाष्टमी पञ्चमी च स्याद् यस्मिन्स्तद् वनं स्मृतम् ॥ ११४ ॥

द्वितीया पञ्चमी मृगा यत्र स्यादष्टमी तथा ।

तद् भाराख्यमुदम्बकं शुभं विघ्नकृदन्यथा ॥ ११५ ॥

त्रिपञ्चम्यष्टमीभिस्तु मुगारं परिकीर्तितम् ।

यत्राष्टमी तदागारं चतुर्थी पञ्चमी तथा ॥ ११६ ॥

यस्मिन्नाषाष्टमीषष्ठ्यो वीरं तदिह कीर्तितम् ।

षष्ठ्यष्टमी द्वितीया च गृहे व्यायामनामनि ॥ ११७ ॥

षष्ठ्यष्टमीतृतीयाभिर्मृगाभिः प्रोक्तमायुतम् ।

षष्ठ्यष्टमीचतुर्थ्यः स्युर्यत्र तद् व्याहृतं विदुः ॥ ११८ ॥

षष्ठ्यष्टमीपञ्चमीभिर्दुर्गमं व्याधिकृन्तम् ।

आषाष्टमीसप्तमीभिः संयुक्तं क्षोभमुच्यते ॥ ११९ ॥

द्विसप्तम्यष्टमीयुक्तं गृहं कृत्रिमसंज्ञितम् ।

त्रिसप्तम्यष्टमीभिस्तु मृगाभिः क्षोभणं भवेत् ॥ १२० ॥

चारुरुच्यं चतुःसप्तम्यष्टमीभिः समन्वितम् ।
 सप्तपञ्चम्यष्टमीभिर्युक्तं ध्रुवमिति स्मृतम् ॥ १२१ ॥
 पदसप्तम्यष्टमीयुक्तं कथं सर्वार्थसिद्धिदम् ।
 इत्युक्तानि त्रिभद्राणि शस्तान्येतेषु यानि च ॥ १२२ ॥
 तानि नित्यं प्रयोज्यानि वर्णानां च मनीषिभिः ।
 आद्याश्वतस्रो मृषाः स्युर्यत्र तत् कृतसंज्ञितम् ॥ १२३ ॥
 सर्वद्विगुणकृत् पूर्वप्रत्यग्द्वारं नचान्यथा ।
 आद्यास्तिस्रः पञ्चमी च यस्मिन्नर्चायनं हि तत् ॥ १२४ ॥
 तद् भवेत् पश्चिमद्वारं गृहं सर्वगुणान्वितम् ।
 यस्मिन्नाद्या द्वितीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा ॥ १२५ ॥
 तत् पौष्णं दक्षिणद्वारं सर्ववृद्धिकरं नृणाम् ।
 (आद्या)द्यास्तिस्रस्तथाद्या च यस्मिस्तद् गृहमुद्रतम् ॥ १२६ ॥
 द्वारेण पश्चिमेनैतच्छस्यते दक्षिणेन वा ।
 द्याद्याश्वतस्रो यत्र स्युस्तन्मित्रं प्रीतिवर्धनम् ॥ १२७ ॥
 प्रशस्तं क्षत्रिपादीनां तस्य द्वाः प्राच्यपाचि वा ।
 आद्यास्तिस्रस्तथा षष्ठी यस्मिन् मृषास्तदुल्लुक्कम् ॥ १२८ ॥
 तच्छस्तं पश्चिमद्वारं विषादीनां जयावहम् ।
 आद्या द्वितीया तुर्या च मृषा षष्ठी च यत्र तत् ॥ १२९ ॥
 याम्योपत्यह्मुखं शस्तं विघ्नं नाम कुलदिकृत् ।
 आद्या तृतीया तुर्या च यस्मिन् षष्ठी च तच्छुभम् ॥ १३० ॥
 विषहं नाम धाम स्याद् द्वारमस्य च पश्चिमम् ।
 द्याद्यास्तिस्रो गृहे यस्मिन् मृषा षष्ठी च तच्छुभम् ॥ १३१ ॥
 स्याद् याम्यपश्चिमद्वारमाहृतं नाम तद् गृहम् ।
 आद्याद्वितीयापञ्चम्यो यत्र षष्ठी च तद् भवेत् ॥ १३२ ॥
 रुचकं नाम याम्यप्राग्द्वारं सकलकामदम् ।
 एकत्रिपञ्चपष्ठयः स्युर्यत्र तदर्धमानकम् ॥ १३३ ॥

प्राक्पश्चिमोत्तरद्वारं चातुर्वर्ण्यस्य वृद्धिदम् ।
 यत्र स्युर्द्वित्रिपञ्चम्यो मूपाः पष्ठी च तद् गृहम् ॥ १३४ ॥
 स्यात् पूर्वदक्षिणद्वारं प्रथितं पृथुसंज्ञया ।
 यस्मिन्नाद्याचतुःपञ्चपष्ठ्यस्तत् कलभं विदुः ॥ १३५ ॥
 गुणैरुपेतं सकलैरुदग्द्वारं निकेतनम् ।
 द्विचतुःपञ्चमीपष्ठ्यो यस्मिन्स्तच्छैलमुच्यते ॥ १३६ ॥
 दक्षिणं मुखमेतस्य पश्चिमं वा प्रशस्यते ।
 चतस्रस्यादयो यस्मिन्नाद्यास्यं तदुदीरितम् ॥ १३७ ॥
 अप्रशस्तं वदन्त्येतत् तद्विदो भवनाथमम् ।
 आद्यास्तिस्रः सप्तमी च मूपाः स्युर्यत्र तद् गृहम् ॥ १३८ ॥
 त्रिनाभमुत्तरद्वारं शस्तं सर्वगुणान्वितम् ।
 आद्याद्वितुर्यासप्तम्यो यत्र तत् स्वस्तिकं स्मृतम् ॥ १३९ ॥
 प्राक्पश्चिमोत्तरद्वारं चातुर्वर्ण्येऽपि शस्यते ।
 आद्याचतुर्थीसप्तम्यो मूपाः स्युर्यत्र वेष्टमनि ॥ १४० ॥
 तदिह स्थिरमित्युक्तं द्वारं चैतस्य दक्षिणम् ।
 आद्यास्तिस्रः सप्तमी च यत्र तत् सरलं विदुः ॥ १४१ ॥
 तद् भवेत् पश्चिमद्वारं सर्वदोषोज्झितं गृहम् ।
 यत्राद्या च द्वितीया च पञ्चमी सप्तमी तथा ॥ १४२ ॥
 द्विगुणं नाम तद् वेष्ट द्वारं चास्य यथेप्सितम् ।
 आद्यातृतीयापञ्चम्यः सप्तम्यपि च यत्र तत् ॥ १४३ ॥
 नाद्यं नामातिशीलाद्यं(?)प्रशस्तं सर्वदेहिनाम् ।
 द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी गृहे ॥ १४४ ॥
 यत्र तद्यित्रनामेष्टद्वारं चित्रगुणैर्दृतम् ।
 आद्याचतुर्थीपञ्चम्यो यत्र स्युः सप्तमी तथा ॥ १४५ ॥
 तद् भ्रान्तं नाम पूर्वादिद्वारं भवनमुद्धिक्तम् ।
 यत्र द्वितीया तुर्या च स्यान् पष्ठी सप्तमी तथा ॥ १४६ ॥

विधारणं गृहं तन् स्यात् सर्वकामविवर्धनम् ।
 तृतीया यत्र तुर्या च पञ्चमी सप्तमी तथा ॥ १४७ ॥
 तन् साधारणमित्याहुः सर्वद्वारं सुखावहम् ।
 आद्या द्वितीया षष्ठी च सप्तमी यत्र तन्नतम् ॥ १४८ ॥
 आद्या द्वितीया षष्ठी च त्र्यंशे स्यात् सप्तमी तथा ।
 द्वितीया च तृतीया च ऋषे षष्ठी च सप्तमी ॥ १४९ ॥
 आद्या तुर्या च षष्ठी च रोगे स्यात् सप्तमी तथा ।
 यत्र द्वितीया तुर्या च स्यात् षष्ठी सप्तमी च तन् ॥ १५० ॥
 विशोपणं नाम गृहं दक्षिणांत्तरदिह्मुखम् ।
 तृतीया यत्र तुर्या च स्यात् षष्ठी सप्तमी गृहे ॥ १५१ ॥
 मतीन्यमीप्सितद्वारं तद् गृहं सर्वकामदम् ।
 यत्राद्यापञ्चमीषष्ठीसप्तम्यग्निसमं हि तन् ॥ १५२ ॥
 प्रभूतद्विदं वेद्यं समस्तरन्विनं गुणैः ।
 द्वितीयापञ्चमीषष्ठीसप्तम्यो यत्र वेद्यमग्नि ॥ १५३ ॥
 तदिह स्वरमित्याहुर्धनधान्यसुखावहम् ।
 तृतीयापञ्चमीषष्ठीसप्तम्यो द्वारमुत्तरम् ॥ १५४ ॥
 पश्चिमं वा भवेद् यत्र सुपतीकं च दृष्टिकृत् ।
 तुर्याग्नाभिधनमग्निर्न्यमुत्तरदिह्मुखम् ॥ १५५ ॥
 आद्याद्विष्यष्टमीभिः स्यात् सर्वगर्भानिहृत् क्षयम् + ।
 स्यात् पूर्व द्वितीया च स्यात्तुर्या तथा षष्ठी ॥ १५६ ॥
 आद्यातृतीयातुर्याः स्युराग्नीदे तद्दक्षिणी ।
 गायस्तमः यथाद्व्यर्थे मूषाः स्यादष्टमी तथा ॥ १५७ ॥
 ईशानाग्नये स्युराद्याद्विष्यष्टम्योऽष्टमी तथा ।
 पूर्वाष्टमीविष्यष्टम्यो यस्मिन्तन् सुखमोजितम् ॥ १५८ ॥
 तन् पूर्वोदद्वयं दृष्टं नापने हानयेन्नृषा ।
 यत्र स्युराष्टमीद्विष्यष्टम्यग्निराग्नयम् ॥ १५९ ॥

द्वारं यथेष्टमेतस्य नाम्नुविधाविदो जगुः ।
 यस्मिन् पूर्वाष्टमीतुर्यापञ्चम्यो मगर्ह इति तन् ॥ १६० ॥
 प्रागुदयपश्चिमद्वारमिदं संसन्नि गृह्यः ।
 यत्र द्वितुर्यापञ्चम्यो मूषाः स्युस्तद्वदष्टमी ॥ १६१ ॥
 तन् धर्मं नाम सुखकृद् यथेष्टं द्वागमिष्यते ।
 विपञ्चम्यष्टमीतुर्या आगस्त्ये पश्चिमामुत्तरे ॥ १६२ ॥
 द्वितीयाद्याष्टमीपष्ठयो यत्र कोजं तदुच्यते ।
 तृतीयाद्याष्टमीपष्ठयो यत्र तद् द्विर्गन्तं गृहम् ॥ १६३ ॥
 द्वित्रिपष्ठयोऽष्टमी चापि यस्मिन्स्तद्विद्वमुच्यते ।
 आद्यातुर्याष्टमीपष्ठयो यत्र तन् पर्वमुच्यते ॥ १६४ ॥
 पष्ठयष्टमीद्वितुर्याभिः(?) स्याद् विन्दोमाभिधं गृहम् ।
 पञ्चाष्टमीद्वितुर्याभिरुदण्डमिति कीर्तितम् ॥ १६५ ॥
 यस्मिन्नाद्याष्टमीपष्ठपञ्चम्यो मुण्डमेव तन् ।
 द्विपञ्चम्यष्टमीपष्ठयो मूषा मातङ्गसंज्ञिते ॥ १६६ ॥
 त्रिपञ्चम्यष्टमीपष्ठयो भवन्त्यस्वलनामानि § ।
 तत् खर्वनाम तुर्याद्यास्तिस्रो यस्मिन्स्तथाष्टमी ॥ १६७ ॥
 आद्याद्वितीयासप्तम्यः पिनाके स्युस्तथाष्टमी ।
 त्रिसप्तम्यष्टमीपूर्वा यत्रोद्यन्तं तदुच्यते ॥ १६८ ॥
 अष्टमीद्वित्रिपञ्चम्यो यस्मिन्स्तद् विशिखं गृहम् ।
 आद्याचतुर्थीसप्तम्यः प्रसमे स्युस्तथाष्टमी ॥ १६९ ॥
 रजे द्वितुर्यासप्तम्यो मूषाः स्युस्तद्वदष्टमी ।
 त्रिसप्तम्यष्टमीतुर्या यत्र तद् रुचकं विदुः ॥ १७० ॥
 प्राक्प्रत्यग्द्वारमेतस्य शूद्राणामतिवृद्धिदम् ।
 सप्तम्याद्याष्टमी मूषा पञ्चम्यपि च सैफले ॥ १७१ ॥
 यत्तु यामे द्विपञ्चसप्तम्यो मूषा ज्ञेयास्तथाष्टमी ।
 त्रिपञ्चसप्तम्यष्टम्यो यस्मिन्स्तद् वर्धमानकम् ॥ १७२ ॥
 त्रिपञ्चसप्तम्यष्टम्यो यस्मिन्स्तद् वर्धमानकम् ॥ १७२ ॥

यत्तु
 § इति पा
 इति पा

त्रिपञ्चसप्तम्यष्टम्यो यस्मिन्स्तद् वर्धमानकम् । लक्षणवाक्यपाठानुसारेण पूर्वजं लक्षणैरेवे
 त्रिपञ्चसप्तम्यष्टम्यो यस्मिन्स्तद् वर्धमानकम् ।

विशेषतो वृद्धिकरं वैश्यानामिति तद्विदः ।

चतुःपञ्चाष्टसप्तम्यो यस्मिंस्तद् धावनं भवेत् ॥ १७३ ॥

सप्तम्याद्याष्टमीपञ्च्यो यत्र तत् सहमुच्यते ।

द्विसप्तपञ्चष्टमीभिर्मूर्पाभिश्चयनं भवेत् ॥ १७४ ॥

पञ्चष्टमीद्विसप्तम्यो (?) यस्मिंस्तत् सेव्यमीरितम् ।

यत्र तुर्याष्टमी षष्ठी सप्तमी चेति तत् कलम् ॥ १७५ ॥

तीर्णे षष्ठ्यष्टमीपञ्चसप्तम्यः सर्वकामदे ।

यत्राद्याः पञ्च तत् मोक्तं कानलं सर्वकामदम् ॥ १७६ ॥

एकद्वित्रिचतुःषष्ठ्यो यत्र तल्लोलुपं स्मृतम् ।

आद्यास्तिस्रः पञ्चषष्ठ्यौ यस्मिंस्तज्जिह्वमुच्यते ॥ १७७ ॥

प्रगाले पञ्चमीषष्ठीतुर्यापूर्वाद्वितीयकाः ।

त्रितुर्यापञ्चमीषष्ठयः साद्याः स्युः सालिनाभिधे ॥ १७८ ॥

यत्र द्वित्रिचतुःपञ्चषष्ठ्यस्तज्जिनमुच्यते ।

एकद्वित्रिचतुर्ध्वः स्युः सुजये सप्तमीयुताः ॥ १७९ ॥

पञ्चमीसप्तमीद्वित्रिपूर्वाः स्युर्विजयाभिधे ।

यत्रैकद्विचतुःपञ्चसप्तम्यो यापनाम तत् ॥ १८० ॥

यत्रैकत्रिचतुःपञ्चसप्तम्यस्तज्जयं विदुः ।

रूपा द्वित्रिचतुःपञ्चसप्तम्यो (जाज्ञा)नसंज्ञिते ॥ १८१ ॥

आद्यास्तिस्रस्तथा षष्ठीसप्तम्यौ यत्र तज्जपम् ।

आद्याद्वितुर्याषष्ठाभिः सप्तम्या च तपं विदुः ॥ १८२ ॥

ष्टीत्रितुर्यासप्तम्यो ज(येमि)पूर्वान्विता यनाः ।

द्वित्रितुर्यास्तथा षष्ठीसप्तम्यौ वैरसंज्ञिते ॥ १८३ ॥

रं तद् यत्र पूर्वं द्वे पञ्चपदसप्तमीयुते ।

वैत्ये स्यात् सप्तमी षष्ठी पञ्चम्याद्या वृतीयका ॥ १८४ ॥

रोपे द्वित्रिपञ्चम्यः स्यात् षष्ठी सप्तमी तथा ।

तुर्या पञ्चमी षष्ठी सप्तम्याद्या च सुयमे ॥ १८५ ॥

‘तुभ’, २. ‘य’ सं. पाठः ।

१. दुष्प्रवृत्त्यभेदेनोपायं च ‘वैरे’ इति पाठश्च ।

दुःस्थितं यत्र पञ्चाद्या चतुर्थी सप्तमी तथा ।
 स्थितेऽष्टमीद्विसप्तम्यस्त्रिपञ्चावपि च स्मृते ॥ २०० ॥
 चक्रे पष्ठयष्टमीतुर्यासप्तम्याद्याः प्रकीर्तिताः ।
 वैक्रे द्वितीयासप्तम्या पष्ठयष्टम्यौ चतुर्थिका ॥ २०१ ॥
 लघेऽष्टमीत्रिसप्तम्यस्तुर्यापष्ठर्या च कीर्तिते ।
 पञ्चमीसप्तमीपष्ठयो लामे पूर्वाष्टमी तथा ॥ २०२ ॥
 द्विपञ्चसप्तम्यष्टम्यः पष्ठी संपर्कसंज्ञिते ।
 त्रिपञ्चपष्ठीसप्तम्यो मूलनाम्नि तथाष्टमी ॥ २०३ ॥
 स्युरष्टसप्तपदपञ्चचतुर्थ्यस्त्वव्ययाभिधे ।
 पूर्वाद्या यत्र षण्मूपाः किन्नरं नाम तद् गृहम् ॥ २०४ ॥
 यत्राद्याः मञ्च सप्तम्या सह तत् कांस्तुमं विदुः ।
 पूर्वाद्वित्रिचतुःपष्ठीसप्तम्यो हर्म्यसंज्ञिते ॥ २०५ ॥
 सप्तमी पञ्चमी पष्ठी द्वित्रिपूर्वाश्च धार्मिके ।
 निषधे द्विचतुःपञ्चपष्ठयाद्याः सप्तमी तथा ॥ २०६ ॥
 त्रिचतुःपञ्चपदसप्तम्याद्याः स्युर्यत्र तद् वसु ।
 साटीके त्रिचतुःपञ्चद्विपष्ठयः स्युस्तथाष्टमी ॥ २०७ ॥
 यत्राद्यापञ्चसप्तम्यो वामनं नाम तद् विदुः ।
 आद्याद्वित्रिचतुःपष्ठयः साष्टम्यो गौरनामनि ॥ २०८ ॥
 आद्याद्वित्रिचतुःपष्ठयः पञ्चमी चास्थिराभिधे ।
 क्रमिणे त्रिचतुःपञ्चपूर्वाः पष्ठयष्टमी तथा ॥ २०९ ॥
 खले पूर्वाष्टमीपष्ठीत्रितुर्याः पञ्चमीयुताः ।
 विचरे त्रिचतुःपञ्चद्विपष्ठयः स्युस्तथाष्टमी ॥ २१० ॥
 आद्याद्वित्रिचतुःसप्तम्यष्टम्यो वान्निगाभिधे ।
 पूर्वाष्टमीद्वित्रिमन्त्रपञ्चम्यो धौमनामनि ॥ २११ ॥
 त्रिपुष्टे द्विचतुःपञ्चसप्तम्याद्यास्तथाष्टमी ।
 मन्दिरे त्रिचतुःपञ्चसप्तम्याद्यास्तथाष्टमी ॥ २१२ ॥

प्रभारूपे द्विचतुःपञ्चपञ्च्यः स्युः सप्तमी तथा ।

त्रिचतुःपञ्चसप्तम्यः षष्ठी च स्यात् प्रतीक्षके ॥ १८६ ॥

आद्याश्चतस्रो यत्र स्युः साष्टम्यः क्षमिणं हि तत् ।

स(स?)पूर्वा द्वित्रिपञ्चम्यो युक्तनान्नि तथाष्टमी ॥ १८७ ॥

शान्ते द्वितुर्यापञ्चम्यः पूर्वा स्यादष्टमी तथा ।

पूर्वात्रितुर्यापञ्चम्यः साष्टम्यस्त्रैतसंज्ञिते ॥ १८८ ॥

विनोदे द्वित्रिपञ्चम्यश्चतुर्थी चाष्टमी तथा ।

सन्दोहे त्वष्टमीषष्ठ्या तिस्रः पूर्वादिकास्तथा ॥ १८९ ॥

आद्याद्वितुर्याषष्ठीभिरष्टम्या विप्रदोहकम् ।

षष्ठ्यष्टमीत्रितुर्याद्या यस्मिंस्तद् विद्वृतं विदुः ॥ १९० ॥

द्वित्रितुर्याष्टमीषष्ठ्यो यत्र तत् सततं मतम् ।

आद्याद्विपञ्चमीषष्ठ्यस्ततनान्नि तथाष्टमी ॥ १९१ ॥

आद्यात्रिपञ्चमीषष्ठ्यो व्याकुले स्युस्तथाष्टमी ।

द्वित्रिपञ्चचतुष्पञ्च्यो विज्ञेया लीनसंज्ञके ॥ १९२ ॥

तुर्याद्यापञ्चमीषष्ठ्य आलीने स्युस्तथाष्टमी ।

द्वितुर्यापञ्चमीषष्ठ्यो विचित्रे तद्वदष्टमी ॥ १९३ ॥

आद्याश्चतस्रो मूपाः स्युः साष्टम्यो लम्बनाडये ।

आद्यास्त्रिस्रोऽष्टमी तद्वत् सप्तम्यपि भवेत् खरे ॥ १९४ ॥

त्रैखरे सप्तमीतुर्याद्वितीयाद्यास्तथाष्टमी ।

विबुधे त्वष्टमी तुर्या तृतीयाद्याथ सप्तमी ॥ १९५ ॥

चैत्रारूपे ऋष्टमीतुर्यासप्तम्यः सतृतीयकाः ।

आद्याद्विपञ्चसप्तम्यो व्यासक्तारूपे तथाष्टमी ॥ १९६ ॥

आद्यात्रिपञ्चसप्तम्यः साष्टम्यः सम्पदाभिधे ।

यत्र द्विपञ्चष्टमीषष्ठ्यसप्तम्यस्तन् पदं विदुः ॥ १९७ ॥

तुर्याद्यापञ्चमी(षष्ठी)सप्तम्यभिधेस्तथा ।

द्विपञ्चम्यष्टमीतुर्यासप्तम्यश्चतुराभिधे ॥ १९८ ॥

त्रिसप्तम्यष्टमीतुर्यापञ्चम्यः प्रान्तनामनि ।

आद्याद्वितीयासप्तम्यः षष्ठ्यष्टम्या च गुण्णिने ॥ १९९ ॥

दुःस्थितं यत्र पञ्चाद्या चतुर्थी सप्तमी तथा ।
 स्थितेऽष्टमीद्विसप्तम्यस्त्रिपञ्चादपि च स्मृते ॥ २०० ॥
 चक्रे षष्ठ्यष्टमीतुर्यासप्तम्याद्याः प्रकीर्तिताः ।
 वैके द्वितीयासप्तम्या षष्ठ्यष्टम्या चतुर्थिका ॥ २०१ ॥
 लघेऽष्टमीत्रिसप्तम्यस्तुर्याषष्ठ्या च कीर्तिता ।
 पञ्चमीसप्तमीषष्ठ्यो लामे पूर्वाष्टमी तथा ॥ २०२ ॥
 द्विपञ्चमसप्तम्यष्टम्यः षष्ठी संपर्कसंज्ञिते ।
 त्रिपञ्चषष्ठीसप्तम्यो मूलनाम्नि तथाष्टमी ॥ २०३ ॥
 स्युरष्टसप्तपदपञ्चचतुर्थ्यस्वल्पयाभिधे ।
 पूर्वाद्या यत्र षण्म्याः किन्नरं नाम तद् गृहम् ॥ २०४ ॥
 यत्राद्याः मञ्च सप्तम्या मह तत्र कौस्तुभं विदुः ।
 पूर्वाद्वित्रिचतुःषष्ठीसप्तम्यो हर्म्यसंज्ञिते ॥ २०५ ॥
 सप्तमी पञ्चमी षष्ठी द्वित्रिपूर्वाथ धार्मिके ।
 निषधे द्विचतुःपञ्चषष्ठ्याद्याः सप्तमी तथा ॥ २०६ ॥
 त्रिचतुःपञ्चषप्तम्याद्याः स्फुर्यत्र तद् वसु ।
 सार्धके त्रिचतुःपञ्चद्विषष्ठ्यः स्युस्तथाष्टमी ॥ २०७ ॥
 यत्राद्यापञ्चमसप्तम्यो वामने नाम तद् विदुः ।
 आद्याद्वित्रिचतुःषष्ठ्यः माष्टम्यो गार्गनामनि ॥ २०८ ॥
 आद्याद्विष्यष्टमीषष्ठ्यः पञ्चमी वाम्भिराभिधे ।
 क्रमिणे त्रिचतुःपञ्चद्व्याः षष्ठ्यष्टमी तथा ॥ २०९ ॥
 तले पूर्वाष्टमीषष्ठीत्रितुर्याः पञ्चमीपुनाः ।
 विचरे त्रिचतुःपञ्चद्विषष्ठ्यः स्युस्तथाष्टमी ॥ २१० ॥
 भाषाद्वित्रिचतुःसप्तम्यष्टम्यो वान्निनाभिधे ।
 पूर्वाष्टमीद्वित्रिषष्ठ्यष्टम्यो धामनामनि ॥ २११ ॥
 त्रिषुष्टे द्विचतुःपञ्चमसप्तम्याद्यास्तथाष्टमी ।
 सन्दिरे त्रिचतुःपञ्चमसप्तम्याद्यास्तथाष्टमी ॥ २१२ ॥

भरे द्वित्रिचतुःपञ्चम्यष्टम्यः सप्तमी तथा ।

भजोक्तं द्वित्रिचतुःपञ्चम्यष्टम्यः पूर्वाया मद ॥ २१३ ॥

भास्वरे द्विचतुःपञ्चम्यः सप्तम्यायाष्टमीयुता ।

त्रिगणम्यष्टमीपष्टीनृपोयार्धाप्यमंजिने ॥ २१४ ॥

द्वित्रिचतुःपष्टमीपष्टयो नानाये सप्तमी तथा ।

द्विगणम्यष्टमीपष्टीपञ्चम्यायात्र मुच्यते ॥ २१५ ॥

त्रिपञ्चम्यष्टमीपष्टीगणम्यायात्रया मते ।

द्वित्रिगणाष्टमीपष्टीपञ्चम्यो यात्रिमंजिने ॥ २१६ ॥

नेत्रे पूरान्तुःपञ्चपदसप्तम्योऽष्टमी तथा ।

भ्रमे स्युर्द्विचतुःपञ्चपदसप्तम्योऽष्टमी तथा ॥ २१७ ॥

योपे च त्रिचतुःपञ्चपदसप्तम्योऽष्टमी तथा ।

एकद्वित्रिचतुःपञ्चपदसप्तम्यो भवन्ति चेत् ॥ २१८ ॥

मृषास्तदानीं भाण्टीरमिति प्रादूर्निवेशनम् ।

एकद्वित्रिचतुःपञ्चपष्ट्यो यत्र तथाष्टमी ॥ २१९ ॥

तद् विसनमिति प्रादूर्वास्तुविद्याविदो गृहम् ।

एकद्वित्रिचतुःपञ्चसप्ताष्टम्यो गृहे यदि ॥ २२० ॥

मृषा भवन्ति तद् विद्यात् प्रस्थमित्यभिधानतः ।

एकद्वित्रिचतुर्थ्यः स्युः पष्टी सप्तम्यथाष्टमी ॥ २२१ ॥

यस्मिन् मृषास्तदत्राहुः प्रतानमिति मन्दिरम् ।

चतुर्थीविजिताभिः स्यान्मृषाभिवेक्ष्य वासुलम् ॥ २२२ ॥

कटं तृतीयाहीनाभिर्विज्ञातव्यं निवेशनम् ।

मृषाभिरद्वितीयाभिर्लक्ष्मीयासमुदाहृतम् ॥ २२३ ॥

सुगन्धान्तमनाद्याभिरष्टाभिः सर्वभद्रकम् ।

इत्येकभद्रमभृतीनि वेष्मान्युक्तानि यावद्गृहमष्टभद्रम् ।

एतांश्चतुश्शालगृहप्रभेदान् यो वेत्ति पूजां स लभेत लोके ॥ २२४ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारपरनाम्नि चामुण्डान्ते

चतुश्शालविधानं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥

अथ निम्नोच्चादिफलानि नाम विंशोऽध्यायः ।

अग्रतःपृष्ठतःशब्दौ द्वारेण नियतो गृहे ।
 यतो द्वारं तदग्रं स्यात् पृष्ठं पृष्ठमुदाहृतम् ॥ १ ॥
 द्रव्यायामोदयव्यासैः शाला यत्राधिका भवेत् ।
 वामा वा दक्षिणा चापि अग्रतः पृष्ठतोऽपि वा ॥ २ ॥
 हन्ति द्रव्याधिका द्रव्यमायामाभ्यधिका कुलम् ।
 उच्छ्रायाभ्यधिका पूजां सन्ततिं विस्तराधिका ॥ ३ ॥
 यस्य निम्ना भवेद् भूमिर्वामा दक्षिणकार्थ्यला ।
 बहुदोषं हि तद् वास्तु पुत्रपौत्रविनाशकम् ॥ ४ ॥
 यस्य दक्षिणका निम्ना भूमिर्वामास्थला भवेत् ।
 यत्नेनापि कृतं तत् स्याद् भर्तुरल्पफलोदयम् ॥ ५ ॥
 पश्चिमेन भवेन्निम्ना भूमिः स्थूलतराग्रतः ।
 यत्र तत् सर्ववर्णेषु सर्वकामप्रदं गृहम् ॥ ६ ॥
 अग्रतश्च यदा हीनं पृष्ठतश्चोच्छ्रितं भवेत् ।
 भवन्तं स्वामिनो धौशु विरागव्यसनाय तत् ॥ ७ ॥
 सच्छत्रं च सकक्षं च तथैव सपरिक्रमम् ।
 सप्रभं च समाख्यातं गृहमत्र चतुर्विधम् ॥ ८ ॥
 बाणोदकं च सच्छत्रं सकक्षमुभयोदकम् ।
 सावश्यायं तु यद् वेष्म तद् विद्यात् सपरिक्रमम् ॥ ९ ॥
 एकेनाप्यत्र मुखतः पृष्ठतः पार्श्वतोऽपि वा ।
 सप्रभं स्यादलिन्देन लक्षणं तु पृथक्पृथक् ॥ १० ॥
 ऐकोऽलिन्दस्तु कर्तव्यो मुखतो दक्षिणेन वा ।
 मुखे राजप्रसादाय दक्षिणैर्ध्वविनर्धनः ॥ ११ ॥

१. 'गा', २. 'द्वारे' ख. पाठः । ३. 'इ' क. पाठः । ४. 'वा' ख. पाठः ।
 ५. 'प्रायो नि' ख. पाठः । ६. 'स्तु' क. पाठः । ७. 'स्वाहर्गोपिका' ख. पाठः ।
 ८. 'स्थ' क. पाठः । ९. 'स्तु', १०. 'ह्यायु', ११. 'स्वाय' ख. पाठः ।

वामनस्तु न कर्तव्य एकोऽलिन्दो न पृष्ठतः ।

वामनोऽर्धविनागाय पृष्ठतो ध्रियते गृही ॥ १२ ॥

यस्य स्थानागलिन्दो ह्रीं गृहस्योभयपार्श्वयोः ।

धनलाभं विनार्नायात् तत्प्रवेगे कुटुम्बिनः ॥ १३ ॥

यस्य स्थानागलिन्दो द्वावग्रतः पृष्ठतस्तथा ।

धनधान्यवस्तुनि सौभाग्यं चापि तद्गृही ॥ १४ ॥

यस्य वा हलकालिन्दो कुलतो दक्षिणेन वा ।

राज्यसत्त्वैस्तत्त्वानो धनधान्यैश्च वर्धते ॥ १५ ॥

यान्तो हलकालिन्दो कुलतश्च कुतो यदि ।

राज्यदम्भनं विधात् पत्नी चास्य विन्दयति ॥ १६ ॥

रक्षिणो हलकालिन्दः पश्चिमश्च कुतो यदि ।

तत्र इरावि वृद्धिः स्यात् सौभाग्यं च परं भवेत् ॥ १७ ॥

पृष्ठतो हलकालिन्दो बानतश्च कुतो यदि ।

कलत्रवर्णं तत्र भवेद् दुर्भगतापि च ॥ १८ ॥

पृष्ठतो बानतश्च पुरतो दक्षिणेन वा ।

आलिन्दस्य कृतस्थाप बह्मणोऽनुक्रमात् कलम् ॥ १९ ॥

पृष्ठतो दारनागाय धनलाभाय दक्षिणे ।

अत्रै साङ्गतादाय वामनोऽर्धविनाशनः ॥ २० ॥

सदतिरिते तु यद् वास्तु सर्वतः परिशोधितम् ।

स्वादिनस्तत्र भवेद् धन्यं स्थपतेश्च यशस्करम् ॥ २१ ॥

अर्धितं वर्धते तस्य वृद्धिश्च स्यात्पृथगधिया ।

धर्मकामाश्च वर्धन्ते कीर्तिरायुर्वशो वलम् ॥ २२ ॥

नित्यं वशीकृतजनं नित्यं समिहितमिह तत् ।

हस्तशक्तिर्गौरवैश्च नित्यामोदं निरामयम् ॥ २३ ॥

तत्र वैष्णवास्तानि धिमातान्युपनधयेत् ।

अकारेषु च सर्वेषु निष्ठां पान्थापयोगिनीं ॥ २४ ॥

॥ २४ ॥

एकस्मिन् स्वामिनो मृत्युरपरस्मिन् धनक्षयः ।
 पूर्वोत्तरोज्झैर्ता धन्यौ संज्ञाश्चैषां प्रकारतः ॥ २५ ॥
 स्युरुदक्पूर्वयाम्याप्यशालाहीनान्यनुक्रमात् ।
 हिरण्यनाभसुक्षेत्रचुल्लीपक्षन्ननामभिः ॥ २६ ॥
 विनियोगो यथालिन्दमलिन्दव्यूढिरिच्छया ।
 वेष्टमान्यथ द्विशालानि कीर्त्यन्ते पद् यथाक्रमम् ॥ २७ ॥
 दिक्कणेषु द्विशालानि तत्कर्णान्येषु निर्दिशेत् ।
 संमुखे द्वे समेतानि पङ्केतान्धुपलक्षयेत् ॥ २८ ॥
 सिद्धार्थं दक्षिणाप्रत्यग्ं भवन्त्यत्रार्थसिद्धयः ।
 यममूर्त्यमुदक्प्रत्यक् तत्र मृत्युभयं सदा ॥ २९ ॥
 प्रागुदीच्योस्तु दण्डः स्याद् दण्डस्तत्र सदा भवेत् ।
 प्राग्याम्ययोस्तु वाताख्यं चास्तु तत् कलहोत्तरम् ॥ ३० ॥
 उदग्दक्षिणसाम्मुख्ये द्विशालं काचवास्त्विति ।
 तत्र शातिविरोधः स्यान्न तत् कुर्यात् कदाचन ॥ ३१ ॥
 प्राक्प्रतीच्योस्तु साम्मुख्ये चुल्लीवास्तु विनिर्दिशेत् ।
 तत्र वित्तक्षयो घोरः कदाप्येतन्न कारयेत् ॥ ३२ ॥
 चतुश्शालं त्रिशालेन भ्रान्तं प्राकारवर्तिना ।
 पूर्वेण सप्तशालेषु मणिच्छन्द इति स्मृतम् ॥ ३३ ॥
 अन्धानि चैवं प्रीण्याहुः भ्रान्तमेव त्रदक्षिणम् ।
 अपरं परिधानं च सप्तक्षमिति तानि च ॥ ३४ ॥
 एकभिर्ची तु शाले द्वे गृहसंघट्ट उच्यते ।
 न तं कुर्यात् स हि सदा बन्धदोषवधमदः ॥ ३५ ॥

इयुषनीचपूरभागकले मारिह.

मर्मिभलिन्दकलमपयुक्तं शुभं च ।

यद् द्वित्रिशाखपूरद्वयं तद्गमयिष्ये

गामान्यनीं दिनयोगवर्गं च गमयत् ॥ ३६ ॥

इति मर्यादा विनाशकालेनैव विनाशकाले मर्यादापूरकालेनैव मर्यादापूर

निष्ठापकालेनैव विनाशकाले मर्यादापूरकालेनैव मर्यादापूर

मर्यादापूरकालेनैव विनाशकाले मर्यादापूरकालेनैव मर्यादापूर ॥

अथ द्वागपत्तितित्रिशाललक्षणं नामैकविंशोऽध्यायः ।

अथ द्वागपत्तितित्रिशाललक्षणं यथाक्रमम् ।

अभिधानानि कान्स्त्र्येन लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥ १ ॥

मुख्यानि तेषु चत्वारि कथ्यन्ते तानि नामतः ।

हिरण्यनाभं मुखेत्रं चुल्ली पक्षग्रमेव च ॥ २ ॥

हिरण्यनाभमुल्लृष्टं हीनमुत्तरशालया ।

तत् स्याद् धनमदं भर्तुः मुखेत्रं पूर्वया विना ॥ ३ ॥

मुखेत्रं लक्षणोपेतमृद्धिद्विप्रदं विभोः ।

चुल्ली दक्षिणया हीना शालया वित्तनाशिनी ॥ ४ ॥

पक्षग्रं पश्चिमाहीनं वैरकृत् कुलनाशनम् ।

अलिन्दयोगादेतेषां लघुप्रस्तारयोगतः ॥ ५ ॥

मृषायोगाच्च भेदाः स्युरष्टादश पृथक्पृथक् ।

जाम्बूनदं हिरण्याख्यं रुक्माख्यं हेमसंज्ञितम् ॥ ६ ॥

कनकं काञ्चनं स्वर्णं सुवर्णं च ततः परम् ।

सन्तापसंज्ञं सारं च तथा चामीकरादयम् ॥ ७ ॥

तपनं तापनीयं च शातकुम्भमथापि च ।

हिरण्यनाभं कल्याणं भूषणं भूतिभूषणम् ॥ ८ ॥

भेदा हिरण्यनाभस्येत्यष्टादश भवन्त्यमी ।

नागं मूर्धप्रमाण्यं च मत्तवारणकं तथा ॥ ९ ॥

चतुर्थं केसरीत्युक्तं वासवं चेन्द्रियेव च ।

हरिर्हमे सारमा(ण्डे) कृत्स्नं तोयदं तथा ॥ १० ॥

मेघपालाभिधानं च भागसारं मरुतंदरम् ।

कर्दमं नामतश्चान्यत् सुभेत्तं प्रकरं तथा ॥ ११ ॥

सुभेदानुगतान्याहृन्मथान्पद् धान्यपूष्कम् ।

गृह्णामिदानय ममस्तेषामाद्यं भुजक्रमम् ॥ १२ ॥

निर्जीवाण्यं विद्वत्तं च नकुलं पञ्चगायम् ।

शतच्छिन्द्रे च सर्पं च कोपसंज्ञं मगन्दम् ॥ १३ ॥

उद्धेतनाग्र्यं सन्न्यासं निस्तोषं करुणानर्नम् ।

धारणं दारणं शुद्धीं ककुदं पेंन्दरं तथा ॥ १४ ॥

इति शुद्धीमभेदेषु मन्दिराणि द्वाष्ट च ।

धूमः पद्मसंगंबद्धपुद्गलानामानि सम्प्रति ॥ १५ ॥

साधनं • ध्यानमहारं देवसि गुह्यमणम् ।

पोषणं दद्यात्तद्गच्छेत् शोषणाख्यं विशोषणम् ॥ १६ ॥

मत्तदं च निरानन्दं शाकूनं रिघनिर्गुणे ।

विष्णुसंज्ञपद्योने शुभाग्रं वैरिपुणम् ॥ १७ ॥

इत्याद्यश्च पञ्चाशदेतः प्रोक्ता यथाकम् ।

हिरण्यनाभर्भक्षेण पश्यं साम्बुतदं एवम् ॥ १७ ॥

भाषायाभिधतगृभिर्मुसाभिगन्धक्षितम् ।

यथायादित्तिपद्यम्यो दिग्गं नाम तदुक्तम् ॥ १९ ॥

पञ्चम्यायाश्चिदुपाभिः व्याहृत्यैवैतन्निर्णयम् ।

आवाशितुर्वायश्चर्याः सप्त मण्डपसंज्ञितम् ॥ २० ॥

द्वित्रितुर्यापञ्चमीभिः कनकं कनकावहम् ।
 साद्याभिद्वित्रिपष्टीभिः काञ्चनं काञ्चनप्रदम् ॥ २१ ॥
 आद्याद्वितुर्यापष्टीभिः स्वर्णं स्वर्णविष्टद्वये ।
 सुवर्णमाद्यात्रिचतुःपष्टीभिः स्यात् सुवर्णदम् ॥ २२ ॥
 स्याद् द्वित्रितुर्यापष्टीभिः सन्तापं तापशान्तिकृत् ।
 आद्याद्विपञ्चमीपष्टयो यत्र तत् सारमुत्तमम् ॥ २३ ॥
 चामीकरं त्रिपष्ट्याद्यापञ्चमीभिर्गृह्योत्तमम् ।
 द्वित्रिपट्पञ्चमीभिः स्यात् तपनं नाम मन्दिरम् ॥ २४ ॥
 पट्पञ्चमाद्यापञ्चमीभिस्तापनीयमुदाहृतम् ।
 शातकुम्भं द्विपट्पञ्चचतुर्याभिर्भवेद् गृहम् ॥ २५ ॥
 हिरण्यनाभं त्रिचतुःपञ्चपष्टीभिरीरितम् ।
 कल्याणमाद्यात्रिचतुःपञ्चपष्टीभिरुच्यते ॥ २६ ॥
 पट्पञ्चद्वित्रितुर्याभिर्भवेद् भूषणसंज्ञितम् ।
 आद्याद्वित्रिचतुःपञ्चपष्टीभिर्भूतभूषणम् ॥ २७ ॥
 अथ सुक्षेत्रभेदानां लक्षणान्यभिदध्महे ।
 यत्राद्याद्वित्रितुर्याभिस्तन्नामं नाम मन्दिरम् ॥ २८ ॥
 यत्राद्याद्वित्रिपञ्चम्यस्तत् मूर्यप्रभमुच्यते ।
 आद्याद्वित्रितुर्यापञ्चम्यो यत्र तन्मत्तवारणम् ॥ २९ ॥
 आद्यात्रितुर्यापञ्चम्यो यत्र तन् केसरीं विदुः ।
 वामनं पञ्चमर्तुर्याद्वितीयाभिस्तदुच्यते ॥ ३० ॥
 पष्ट्याद्यात्रिद्वितीयाभिरिन्द्रमन्दिरमीरितम् ।
 आद्याद्वित्रितुर्यापष्टीभिर्हस्तिमं तमुदाहृतम् ॥ ३१ ॥
 आद्यात्रितुर्यापष्टीभिर्हंससंज्ञं निवेदनम् ।
 पष्टीद्वित्रिचतुर्याभिः सारगं नामतो भवेत् ॥ ३२ ॥
 आद्याद्विपञ्चपष्टीभिः कथपन्नीह कृत्तारम् ।
 आद्यात्रिपञ्चपष्टीभिर्भिजेयं तोयदं गृहम् ॥ ३३ ॥

मेघमालं त्रिपदपञ्चद्वितीयाभिरुदाहृतम् ।
 धारासारं चतुःपञ्चपद्याभिर्भवेद् गृहम् ॥ ३४ ॥
 द्विचतुःपञ्चपष्टीभिर्महोदरमिति स्मृतम् ।
 कर्दमं नाम पदपञ्चत्रितुर्थाभिर्जपावहम् ॥ ३५ ॥
 पदपञ्चतुर्थाध्यायाभिः सुक्षेत्रं स्याद धनपदम् ।
 द्वित्रिपदपञ्चतुर्थाभिर्भवेन् प्रकरमृद्धिदम् ॥ ३६ ॥
 आद्याभिश्च पदेताभिः(?)विज्ञेयं धान्यपूरकम् ।
 अष्टादशैतं सुक्षेत्रगृहभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ३७ ॥
 आद्याद्वित्रिचतुर्थाभिर्मृपाभिः स्याद् भुजङ्गम् ।
 निर्जीवमाद्यापञ्चद्वितीयाभिर्निवेशनम् ॥ ३८ ॥
 आद्याद्विपञ्चतुर्थाभिर्व(हन्तीभिर्वि?)दन्तीह वि)हङ्गम् ।
 पञ्चाद्यात्रिचतुर्थाभिर्मृपाभिर्नकुलं विदुः ॥ ३९ ॥
 पञ्चद्वित्रिचतुर्थाभिः पद्मगं नामतो भवेत् ।
 शतच्छिद्रं पद्याद्यौद्वितीयाभिर्भवेद् गृहम् ॥ ४० ॥
 आद्याद्वितुर्थापष्टीभिः सर्पमित्यभिधीयते ।
 आद्यात्रिपदचतुर्थाभिः कोपमिन्यभिगच्छितम् ॥ ४१ ॥
 पदचतुस्त्रिद्वितीयाभिर्भवेद् वेश्म भगन्दरम् ।
 आद्याद्विपञ्चपष्टीभिर्द्वेजनमुदाहृतम् ॥ ४२ ॥
 सन्न्यासमाद्यापञ्चत्रिपष्टीभिर्भेजनाभमम् ।
 द्वित्रिपदपञ्चमीभिस्तु † निस्तोपमभिधीयते ॥ ४३ ॥
 तुर्थाद्यापञ्चपष्टीभिः प्ररुणाननमुच्यते ।
 द्विचतुःपञ्चपष्टीभिर्वाग्णं सुखवारणम् ॥ ४४ ॥
 त्रिचतुःपञ्चपष्टीभिर्दारणं श्रीविदारणम् ।
 पुंलपाद्यात्रिचतुःपञ्चपष्टीभिर्विगनाशनम् ॥ ४५ ॥

१. 'ह विह' ए. पाठः । २. 'भवेत्' क. पाठः । ३. 'द्विचतुर्था',
 ४. 'पद', ५. 'द्विचतुर्था' ए. पाठः ।

पदपञ्चद्वित्रितुर्याभिः कन्दुदं नाम मन्दिरम् ॥

कन्दरं पदचतुःपञ्चत्रिग्याद्याभिर्घृहाश्रमम् ॥ ४६ ॥

अथाष्टादश कथ्यन्ते भेदाः पञ्चग्रन्थयाः ।

तेषु राक्षसमाद्याद्वित्रिचतुर्थीभिरुच्यते ॥ ४७ ॥

पञ्चाद्याद्वित्रितृतीयाभिर्ध्वान्तसंघातमीरितम् ।

पञ्चाद्याद्विचतुर्थीभिर्देवारीणि निगद्यते ॥ ४८ ॥

आद्यात्रिपञ्चतुर्याभिर्विज्ञेयं देवदारुणम् ।

पञ्चत्रिद्विचतुर्थीभिर्घोषणं दुःखघोषणम् ॥ ४९ ॥

पडाद्याद्वित्रितृतीयाभिर्घ्याघ्नमित्यभिधीयते ।

आद्याद्वितुर्यापष्टीभिः शार्दूलं स्यान्निवेशनम् ॥ ५० ॥

आद्यात्रितुर्यापष्टीभिः शोषणं पुत्रशोषणम् ।

पट्रतुर्याद्वित्रितृतीयाभिर्विजानीयाद् विशोषणम् ॥ ५१ ॥

आद्याद्विपञ्चपष्टीभिर्मत्तदं नाम मन्दिरम् ।

निरानन्दाख्यमाद्यात्रिपञ्चपष्टीभिरुच्यते ॥ ५२ ॥

पञ्चपट्रद्वित्रितृतीयाभिः शाकुनं नामतो भवेत् ।

विघ्नमाद्याचतुःपञ्चपष्टीभिर्विघ्नवर्धनम् ॥ ५३ ॥

निर्घृणं पदचतुःपञ्चद्वितीयाभिरसौख्यकृत् ।

त्रिचतुःपञ्चपष्टीभिर्वदन्ति रिपुसंहदम् ॥ ५४ ॥

पदपञ्चतुर्याज्या(द्या)भिः पक्षग्रं सुतनाशनम् ।

पदपञ्चद्वित्रितुर्याभिः सुतग्रं सुतसूदनम् ॥ ५५ ॥

पदपञ्चद्वित्रितुर्याद्या यत्र तद् वैरिपूरणम् ।

पक्षग्रस्यानुगान्येवं गृहाण्यष्टादश क्रमात् ॥ ५६ ॥

चतुराद्यास्त्रिशालेषु मूपा वाह्या न चान्तरा ।

स्याद् विनाद्यां द्वितीयां च त्रिशालं पञ्चभद्रकम् ॥ ५७ ॥

बाह्यतः क्रममुत्सृज्य त्रिशालविधिरीरितः ।

हिरण्यनाभादिनिकेतनानां चतुष्टयस्यैवमपी मकाराः ।

द्विसप्ततिः कृत्स्नतयोपदिष्टाः प्रत्येकमष्टादशभेदकलृप्ताः ॥ ५८ $\frac{1}{2}$ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवायसंविते समराङ्गणवृक्षधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

द्वासप्ततिविशाललक्षणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥

अथ द्विशालगृहलक्षणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।

द्विशालानि द्विपञ्चाशत् स्युः शुभान्यशुभानि च ।

लक्षणानि क्रमान् तेषामिदानीं सम्प्रचक्ष्महे ॥ १ ॥

सिद्धार्थं यममूर्त्यं च दण्डाख्यं वातमंजितम् ।

चुल्ली काचं च मुख्यानि द्विशालानि पदेव हि ॥ २ ॥

अनेकभेदमिन्द्रानि लघुमस्तारयोगतः ।

मृषाभेदक्रमेण स्पृर्भेदाभेदक्रमेण तु ॥ ३ ॥

तथा निलीनकरणाद् बीथिकालिन्दमार्गतः ।

प्राग्ग्रीवादिविधानेन द्विशाल्यादिविपर्ययात् ॥ ४ ॥

यद्यासम्भवमेतानि कथयामः ममासतः ।

निर्वाहतश्च मृषाणामनिर्वाहाच्च नामनः ॥ ५ ॥

छन्दतो गुणतो रूपादशुभानि शुभानि च ।

हितार्थाय नरेन्द्राणां वर्णिनां लिङ्गिनामपि ॥ ६ ॥

इस्तिनी महिषी चेति द्वे शाले यत्र वेस्मनि ।

तन् सिद्धार्थमिति ज्ञेयं विचमम्पनिकारकम् ॥ ७ ॥

धृत्पुद्गं महिषीगार्वाभ्यां भवेद् यममूर्त्यकम् ।

दण्डं स्वाच्छगलीगार्वाभ्यां दण्डमूर्तिदम् ॥ ८ ॥

पातं करेणुच्छगलीयुक्तमद्वेगकारकम् ।

कार्यं करेणुगार्वाङ्गां सुदन्तीतिरिनाजनम् ।
 एकमृगममृगं च न द्विजानेषु काशेत् ॥ १० ॥
 श्वत्वागान् कानचुम्बोश्च सर्वाभिदिनमृभिस्तथा ।
 चत्वायोद्यानि भिद्यन्ते मृगप्रस्ताम्भोमतः ॥ ११ ॥
 प्रत्येकमेकादशभा मन्दिशान्यभिधानतः ।
 भन्ये चतुर्षां भिद्येते मय्येकं द्वे निवेजने ॥ १२ ॥
 एषां मृगा भिदाभेदान् तद्वाद्याचारहेतुकाः ।
 यमुभारं भवेन् तेषामापं गिद्धार्यकं ततः ॥ १३ ॥
 कल्याणकं नाश्वनं च गिरं कामप्रदं तथा ।
 ग्रीदं शान्तं निष्कलङ्कं धनार्थीनां कृतेत्यम् ॥ १४ ॥
 सिद्धार्थमनुनान्येयमेनान्येकादश क्रमान् ।
 संहारं यममृयं च कान्तं वैचस्वतं यमम् ॥ १५ ॥
 करालं विकरालं च कचन्यं मृतकं शैवम् ।
 यममृयस्य भेदाः स्युः सप्तनो महिषं तथा ॥ १६ ॥
 मचण्डचण्डे दण्डाग्न्यमुदण्डं काण्डकोटरे ।
 विग्रहं निग्रहं धूम्रं निर्धूमं दन्तिदारुणम् ॥ १७ ॥
 एकादशामी दण्डस्य भेदा दण्डभयमदाः ।
 मरुत्पचनवाताख्यान्यनिलं सप्रभञ्जनम् ॥ १८ ॥
 घनैर्यम्बुदविध्वंसि * मलयं कलहं कलिः ।
 कलिचुल्ली च वातस्य भेदा उद्वेगदायकाः ॥ १९ ॥
 रोगं चुल्लयनलं भस्म चुल्ल्या भेदचतुष्टयम् ।
 काचस्य तु च्छलं काचं कुलग्रं † च विरोधि च ॥ २० ॥
 द्वापश्चाशद् द्विशालानाममी भेदाः प्रकीर्तिताः ।
 मूमः साम्प्रतमेतेषां लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥ २१ ॥

१. 'दत्त', २. 'कः।', ३. 'शिवम्', ४. 'मे', ५. 'नार्वा' क. पाठः ।

६. 'छं' ख. पाठः ।

लक्षणश्लोके एतत्स्थाने रोगमिति पठ्यते । † लक्षणपाठरीत्या तु कुलहमिति पाठ्यम् ।

आद्याद्वितीये बहतो यत्र मूये धनप्रदे ।
 वसुधाराभिधानं तद् गृहं सर्वार्थकानुगम् ॥ २२ ॥
 आद्यातृतीये बहतो यत्र सिद्धार्थकं हि तत् ।
 सर्वोपद्रवनिर्मुक्तं सिद्धिकृच्चिन्तितार्थकृत् ॥ २३ ॥
 द्वितृतीयं बहन्मूपं भवेत् कल्याणमृद्धिकृत् ।
 बहदाद्यचतुर्थीकं शाश्वतं गृहमुत्तमम् ॥ २४ ॥
 शिवं द्वितीयातुर्याभ्यां बहन्तीभ्यां सुखमदम् ।
 कामदं त्रिचतुर्थीभ्यां भवेच्चिन्तितकामदम् ॥ २५ ॥
 आद्याद्याभिः (सुस्तु) तिसृभिः स्त्रीप्रदं संप्रदं(?) प्रभोः ।
 आद्याद्वितीयातुर्याभिः शान्तं शान्तिप्रदात्यकम् ॥ २६ ॥
 आद्यातृतीयातुर्याभिर्निष्कलङ्कं समृद्धिकृत् ।
 द्वितृतीयाचतुर्थीभिर्धनेशं धनवर्द्धनम् ॥ २७ ॥
 आद्याद्याभिश्चतसृभिः कुशेरं वित्तवृद्धिकृत् ।
 यममूर्यप्रभेदेषु ब्रूमो लक्ष्म फलानि च ॥ २८ ॥
 आद्याद्वितीयामूषाभ्यां संहारं स्वामिनाशनम् ।
 गृहमाद्यातृतीयाभ्यां मृत्युदं यममूर्यकम् ॥ २९ ॥
 द्वितृतीयं बहन्मूपं कालं योपिदिनाशनम् ।
 वैवस्वतं बहत्तुर्यप्रथमं रोगकारकम् ॥ ३० ॥
 यमालयं द्वितुर्याभ्यां स्वामिनो यमदर्शनम् ।
 करालं त्रिचतुर्थीभ्यां भर्तुः प्राणविनाशनम् ॥ ३१ ॥
 आद्याभिस्तिष्ठभिः स्वामिनाशनं विकरालकम् ।
 आद्याद्वितीयातुर्याभिः कवन्धं भर्तुनाशनम् ॥ ३२ ॥
 आद्यातृतीयातुर्याभिर्भर्तृघ्नं मृतकालयम् ।
 श्वं द्वित्रिचतुर्थीभिः स्वामिनो मरणप्रदम् ॥ ३३ ॥
 आद्याद्याभिश्चतसृभिः स्वामिघ्नं महिषं विदुः ।
 प्रचण्डं दण्डभेदेषु पूर्वया सद्वितीयया ॥ ३४ ॥

गृहपादी विजानीयाद् भर्तृवृत्तमयप्रदम् ।

चण्डमाद्यातृतीयाभ्यां चण्डदण्डभयप्रदम् ॥ ३५ ॥

दण्डं स्याद् द्वितृतीयाभ्यां राजदण्डाय दारुणम् ।

उदण्डमाद्यातृतीयाभ्यां स्वाभिनां दण्डभीतिदम् ॥ ३६ ॥

काण्डं द्वितृतीयाभ्यां काण्डवज्रदकारकम् ।

कोटरं त्रिचतुर्थीभ्यां स्वाभिनां विग्रहावहम् ॥ ३७ ॥

प्रथमा(द्वि)तृतीयाभिर्विग्रहं वधर्चन्धकृत् ।

आद्याद्वितृतीयाभ्यां विनिर्ग्रहं विग्रहावहम् ॥ ३८ ॥

आद्यातृतीयाभ्यां विनिर्ग्रहं सर्वधनापहम् ।

द्वितृतीयाभ्यां विनिर्ग्रहं धननाशनम् ॥ ३९ ॥

आद्याद्याभिश्चतसृभिर्दन्तिदारुणमर्थहृत् ।

आद्याद्वितृतीयाभ्यां वातभेदेषु मन्दिरम् ॥ ४० ॥

मरुत्संज्ञं भवेत् तत्र वसतां कलहः सदा ।

उद्वेगकारि पवनं तृतीयाद्योपलक्षितम् ॥ ४१ ॥

वाताख्यं द्वितृतीयाभ्यां सदा सन्तापकारकम् ।

सन्तापोद्वासकार्याद्यातृतीयाभ्यामनिलं भवेत् ॥ ४२ ॥

प्रमञ्जनं द्वितृतीयाभ्यां शोकसन्तापकारकम् ।

तृतीयया चतुर्थ्या च घनार्थुद्वेगकारकम् ॥ ४३ ॥

आद्याद्या द्वितृतीयाभ्यां रोगं कार्यार्थनाशनम् ।

आद्याद्वितृतीयाभ्यां मलयं चित्ततापकृत् ॥ ४४ ॥

आद्याद्या द्वितृतीयाभ्यां कलहं कलहावहम् ।

द्वितृतीयाचतुर्थीभिः कलिः सन्तापकारकम् ॥ ४५ ॥

आद्याद्याभिश्चतसृभिः कलियुद्धी धनापहा ।

रोगमाद्याद्वितृतीयाभ्यां युद्धीभेदेषु शोकदम् ॥ ४६ ॥

१. 'वाध' ख. पाठः । २. 'व(त)प्र' क. पाठः । ३. 'मृगभिः' ख. पाठः ।

४. 'लिष' क. पाठः ।

स्याद् द्वितीयातृतीयाभ्यां चुल्ली वित्तविनाशनी ।

वसुध्रमनैलं नाम त्रितुर्ग्याभ्यां निवेशनम् ॥ ४७ ॥

वित्तममाद्यातुर्ग्याभ्यां भस्मालयं स्वामिनः सदा ।

उदङ्मुख्याभ्यां मूपाभ्यां काचभेदेषु मन्दिरम् ॥ ४८ ॥

छलं नाम भवेन्नित्यं बन्धुवर्गापमानकृत् ।

दक्षिणोत्तरमूपाणां पौरस्त्ये बहतो यदि ॥ ४९ ॥

† काञ्चं नाम तदा वेश्म सज्जनानन्दकारकम् ।

मूपाभ्यां दक्षिणाभ्यां स्यात् कुलैहं त्रिकुलक्षयम् ॥ ५० ॥

दक्षिणोत्तरमूपाणां पाश्चात्ये बहतो यदि ।

‡ विरोधं नाम तद्वेश्म सर्वलोकविरोधकृत् ॥ ५१ ॥

उक्तान्येवं द्विपञ्चाशद् द्विशालानां समासतः ।

एनानि मूपावहनप्रभेदात् फलप्रभेदाच्च निदर्शितानि ।

द्विशालवेश्मान्यधुनैकशालान्युदाहियन्ते भवनानि सम्यक् ॥ ५२ १/२ ॥

इति महाराजाधिराजभोजदेवविरचिते समराङ्गणवृक्षधारापरनामिनि वास्तुशास्त्रे

द्विशालगृहलक्षणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥

अथ एकशाललक्षणफलादि नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।

गृहाणामेकशालानां वक्ष्यामो लक्षणान्यथ ।

शस्तानां निन्दितानां च यथावदनुपूर्वशः ॥ १ ॥

विन्यसेद्यतुरः पूर्वं गुरुं वर्णान् यथाविधि ।

एभ्य एव मसूयन्ते भेदाः षोडश वेश्मनाम् ॥ २ ॥

१. 'नि', २. 'सी' क. पाठः । ३. 'लं हन्ति कु' ख. पाठः ।

४. 'रुव' क. पाठः ।

† लक्ष्यपाठानुरोधेन काचमिति पाठ्यम् । ‡ लक्ष्ये विरोधीति पठ्यते ।

गुरोरधो लघुं न्यस्येत् पूर्वं ज्ञेयं यथोपरि ।
 गुरुभिः पूरयेत् पश्चाद् यावत् स्युर्लघवोऽखिलाः ॥ ३ ॥
 विद्यादलिन्दान् सर्वेषु लघुस्थानेषु पण्डितः ।
 मन्यायते गृहमुखादेतांश्च विनियोजयेत् ॥ ४ ॥
 एषामलिन्दसंयोगाद् भवनानां पृथक् पृथक् ।
 नामानि गुणदोषाश्च वक्ष्यन्तेऽनुक्रमादतः ॥ ५ ॥
 ध्रुवं धन्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोरमम् ।
 सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं सुपक्षं धनदं क्षयम् ॥ ६ ॥
 आक्रन्दं विपुलं चैव विजयं गृहमुत्तमम् ।
 ध्रुवे जयमवाप्नोति धन्ये धान्यागमो भवेत् ॥ ७ ॥
 जये सपत्नाञ्च जयति नन्दे सर्वाः समृद्धयः ।
 खरमायासदं वेदम कान्ते च लभते श्रियम् ॥ ८ ॥
 आयुरारोग्यमैश्वर्यं तथा वित्तस्य सम्पदः ।
 मनोरमे मनस्तुष्टिर्गृहभर्तुः प्रकीर्तिता ॥ ९ ॥
 सुमुखे राज्यसन्मानं दुर्मुखे कलहः सदा ।
 क्रूरव्याधिभयं क्रूरे सुपक्षं गोत्रवृद्धिदृक् ॥ १० ॥
 धनदे हेमरत्नादि गाश्चैव लभते पुमान् ।
 क्षयं सर्वक्षयं गेहमाक्रन्दं ज्ञातिमृत्युदम् ॥ ११ ॥
 आरोग्यं विपुले ख्यातिर्विजये सर्वसम्पदः ।
 यदि धन्ये द्वितीयोऽपि सुखालिन्दः प्रयुज्यते ॥ १२ ॥
 तद् गृहं रम्यनामेह भर्तुः सौभाग्यकारकम् ।
 सुखालिन्देन नन्दाख्यं द्वितीयेन सुयोजितम् ॥ १३ ॥
 तच्छ्रीधरमिति ख्यातं तस्मिन् श्रीनिन्द्यमाविशेत् ।
 अलिन्दधेद् द्वितीयोऽपि कान्तस्याख्ये निवेश्यते ॥ १४ ॥
 मुदिनं तद् भवेद् भर्तुर्भूतिदद् भवनोत्तमम् ।
 सुमुखस्य यदालिन्दो वक्ष्येऽप्यो विनिवेश्यते ॥ १५ ॥

वर्षमानं तदा तत् स्वात् स्वामिलक्ष्मीविवर्धनम् ।
 कूरं युक्तं द्वितीयेन मुखालिन्देन मन्दिरम् ॥ १६ ॥
 करालं तद् विजानीयाद् भर्ता तस्य विनश्यति ।
 अलिन्देन द्वितीयेन धनदं योजितं पुनः ॥ १७ ॥
 सुनाभं तद् भवेत् तस्मिन् पैंग्वन् पुत्रानवाप्नुयात् ।
 आक्रन्दस्य पुरोभागे यद्यलिन्दः कृतोऽपरः ॥ १८ ॥
 ध्वाङ्क्षसंज्ञं गृहं तज्ज्ञा निन्दितं प्रवदन्ति तत् ।
 द्वितीयालिन्दघटना विजयस्य मुखे यदि ॥ १९ ॥
 तत् समृद्धमिति ख्यातं गृहं स्यात् पुण्यकर्मणाम् ।
 यान्युक्तानि ध्रुवादीनि पूर्ववेद्यमानि षोडश ॥ २० ॥
 शालाविभागं ज्ञात्वैषां तिर्यक् पद् दारु विन्यसेत् ।
 षोडशान्ये च भेदाः स्युः संज्ञार्थपामनुक्रमात् ॥ २१ ॥
 सुन्दरं वरदं भद्रं प्रमोदं विमृशं शिवम् ।
 सर्वलामं विशालं च विलक्षमशुभं ध्वजम् ॥ २२ ॥
 उद्घोतं भीषणं शून्यमजितं कुलनन्दनम् ।
 नामभिर्वैष्मनामेषां गुणदोषान् प्रकल्पयेत् ॥ २३ ॥
 यथार्थनामान्येतानि यस्मान् प्रोक्तान्यविस्तरात् ।
 एभ्य एवापराणि स्युर्वैष्मन्यन्यानि षोडश ॥ २४ ॥
 शालापुरोविनिर्युक्ततिर्यक्पद्दारुकारणान् ।
 हंसं मुलक्षणं साम्यं जयन्तं भव्यमुत्तमम् ॥ २५ ॥
 रुचिरं सम्भृतं क्षेममाक्षेमं मुकृतं वृषम् ।
 उच्छन्नं व्ययमानन्दं मुनन्दं चेति कीर्तितम् ॥ २६ ॥
 एषामपि यथार्थत्वाद् गुणदोषान् निरूपयेत् ।
 शालामध्ये च निर्यवस्थं पददारु विनिवेशयेत् ॥ २७ ॥
 विहाय पर्यणां केशानपीषामेवं वैष्मनाम् ।
 षोडशैव परेषु स्युर्भेदास्तांश्च यथाक्रमम् ॥ २८ ॥

१. 'द्वेयम्', २. 'बहुन्' स. पाठः। ३. 'दि' क. ख. पाठः। ४. 'सूम्ह
जिमेमेव'। ५. 'सुम्ह'। ६. 'सुम्ह'। ७. 'सुम्ह'। ८. 'सुम्ह'। ९. 'सुम्ह'। १०. 'सुम्ह'।

इत्येकशालभवनान्युदितान्यलिन्द-

पङ्क्तारुकापवरकावरणादिभेदैः ।

संज्ञा च लक्षणफलैः करिणीमुखाभिः

शालाभिरेवमपराणि च युग्मंजानि ॥ ४१^१/_२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारपरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
एकशाललक्षणफलद्विहंसकादिलक्षणफलानि नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथ द्वारपीठभित्तिमानादिकं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।

कर्णशालानिवद्धानि मण्डपैरन्तरस्थितैः ।

असम्बाधाजिराणि स्युर्हलानि दश पञ्च च ॥ १ ॥

ईश्वरं वृषभं चन्द्रं रोगं पापं भयप्रदम् ।

नन्दनं स्वादकं ध्वाङ्क्षं विकृतं विलयं क्षयम् ॥ २ ॥

याम्यं च विपरीतं च भद्रकं चेति नामतः ।

एतानि हलकारुणानि विद्याद् गेहानि यत्रतः ॥ ३ ॥

अग्निरक्षोनिलेशानकोर्णगानां यथाक्रमम् ।

एकद्वित्रिचतुर्थाख्या हलकानां प्रकल्पयेत् ॥ ४ ॥

अनेन क्रमयोगेन च्छन्दोभेदा भवन्ति च ।

तत्राद्येनेश्वरं नाम हलकेन गृहं भवेत् ॥ ५ ॥

सर्वलक्षणसंपुक्तं सर्ववृद्धिफलप्रदम् ।

वृषभं तु द्वितीयेन पुत्रदारैविवर्धनम् ॥ ६ ॥

प्रथमं च द्वितीयं च गृहे तु हलकं यदि ।

चन्द्रं वृद्धिकरं नृणां सर्वलक्षणसंपुतम् ॥ ७ ॥

वायव्यं हलकं यत्र रोगं रोगविवर्धनम् ।

प्रथमं च तृतीयं च गृहे तु हलकं यदि ॥ ८ ॥

१. 'मालाभिः' क, 'मितानि', ख. पाठः । २. 'जे भागां य',
३. 'रादिभ', ४. 'भयप्रदम्' ख. पाठः ।

द्वात्रिंशतोऽपरश्चेति † पञ्च वर्गाधिपा मताः ।

शालाचतुर्थभागेन भित्तिविस्तार इष्यते ॥ २२ ॥

वर्गेषु भित्तिलक्ष्मोक्तं षोडशादिषु पञ्चसु ।

मर्मपीडा भवेद् यत्र भित्तिस्तम्भतुल्यादिभिः ॥ २३ ॥

कुर्वीत हांसं वृद्धिं वा तत्र मर्मव्यथां त्यजेन् ।

अतिसंवृतविस्तारं कार्यमुद्दिश्य बुद्धिमान् ॥ २४ ॥

शालाप्रविष्टं कुर्वीत ‡ हीनवास्तुष्वालिन्दकम् ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भूमिभागे समीकृते ॥ २५ ॥

उपरिष्ठाद् भवेत् पीठं * तलादर्धसमुच्छ्रितम् ।

नियुक्ते तु ततः पीठे वास्तुविस्तारतोऽङ्गुलम् ॥ २६ ॥

प्रतिहस्तं समुद्धृत्य सप्तत्या सह योजयेत् ।

द्वारोच्छ्रायाः समाख्याता वर्गेषूक्तेषु पञ्चसु ॥ २७ ॥

उच्छ्रायार्धेन वैपुल्यमष्टांशेन विवर्जितम् ।

द्वारविस्तारपादांशे षट्त्रिंशद्विस्तार इष्यते ॥ २८ ॥

विस्तारार्धेन बाहुल्यं सार्धं वेद्या(तस्त्व)लोपरि ।

उत्तरोत्तरवैपुल्यं कुर्याच्छाखावशाद् बुधः ॥ २९ ॥

वेद्या विस्तारबाहुल्ये विधेये शाखयोरपि ।

द्वारविस्तारपादेन मूले स्तम्भस्य विस्तृतिः ॥ ३० ॥

दशभागविहीनाग्रे षट्त्रिंशद्विस्तारः स्तम्भेन सम्मितः ।

स्तम्भाग्रस्य त्रिभागेन षट्कोटिर्विधीयते ॥ ३१ ॥

हीरप्रहणमायामे स्तम्भाग्रात् तु चतुर्गुणम् ।

षट्त्रिंशद्विस्तारोऽत्र (?) तत्र व्यासबाहुल्ययोस्तथा ॥ ३२ ॥

१. 'हास', २. 'जेद्', ३. 'त्' क. पाठः । ४. 'वेद्यातलोपरि' (१)

५. 'गोता' ख. पाठः । ६. 'दा' क. पाठः । ७. 'बान्याद्' ख. पाठः ।

† 'ते पञ्चसमुदायाः विप्रादीनां स्मृत्क्रमेण यथा (यथं) योग्याः । व्यासस्येदं विद्व-
मानम्' इति, ‡ 'पञ्च + + + + हीनवास्तुप्रमाणं तद्वद् शालाख्यं तदन्तर्गतं षट्पाद-
कं कुर्यात्' इति, * 'तलान्देन प्रथमभूम्युच्छ्रायः' इति च टिप्पणानि सन्ति ।

पट्टकोष्पार्थमुग्गेषादुत्तमार्थेन निर्गतम् ।

तन्त्रकस्य प्रमाणे स्यादिति शायनिदो विदुः ॥ ३३ ॥

द्रव्याण्युपपद्येयस्य परापरविभागनः ।

पट्टकोष्ठाधनुर्धेन मविभागेन हानयेत् ॥ ३४ ॥

पूर्वामुखे गृहे गणु द्वारं माहेन्द्रमंथुतम् ।

दस्तिनी च भवेच्छाला तद् गृहं मद्रसंज्ञितम् ॥ ३५ ॥

भद्रं भद्रकरं भर्तृर्षशोवलविधनम् ।

सिध्यन्ति चास्य कार्याणि भद्राख्ये वसतो गृहे ॥ ३६ ॥

दक्षिणाभिमुखं येश्म द्वारं चास्य गृहधृतम् ।

महिषी च भवेच्छाला तद् गृहं नन्दपीठकम् ॥ ३७ ॥

नन्दपीठगृहं पुंसां नित्यानन्दकरं स्मृतम् ।

सर्वसम्पद्गुणोपेतं धनधान्यविवर्धनम् ॥ ३८ ॥

वारुण्यभिमुखं सद्यः द्वारं च कुसुमाढयम् ।

गावी चैव भवेच्छाला सौरभं तद्विदुर्बुधाः ॥ ३९ ॥

सौरभे नित्यहृष्टत्वं वसतां गृहमेधिनाम् ।

सफलं कृपिवाणिज्यं पुत्राश्च वशवर्तिनः ॥ ४० ॥

उत्तराभिमुखं धिष्यं द्वारं भट्टाटसंयुतम् ।

छागली च भवेच्छाला पुष्कराख्यं तदुच्यते ॥ ४१ ॥

शीलवान् नित्यसैन्तुष्टः सुहृत्सुजनवत्सलः ।

सुभगः पुष्कराख्ये च बहुपुत्रधनान्वितः ॥ ४२ ॥

भद्रं च नन्दपीठं च सौरभं पुष्करं तथा ।

प्रथमार्थे तु वर्गस्य प्रथमस्य प्रयोजयेत् ॥ ४३ ॥

सर्वभद्रादिकाः सर्वे निवेशा ये प्रकीर्तिताः ।

उत्पन्नास्ते विमानेभ्यः पञ्चभ्यः पञ्चपञ्चके ॥ ४४ ॥

ठारस्य पीठस्य च मन्दिरेषु भित्तेषु मानं कथितं क्रमेण ।

तथोदिता दारुकल्यास्तु सम्यक् महीणवास्तोः सकलं च लक्ष्म ॥

इति मङ्गलपञ्चमोऽध्यायः ॥

ठारपीठभित्तिमानदारुकल्याहीनवास्तुलक्षणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

अथ समस्तगृहाणां सङ्ख्याकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।

वेष्टनां पञ्चशालानां कथ्यन्ते लक्षणान्यथ ।

चतुर्विंशतिसंयुक्तं सहस्रं तानि सङ्ख्यया ॥ १ ॥

गुरुणा दशमङ्क्यानां प्रस्तास्य च कल्पनान् ।

गृहाणां पञ्चशालानां भेदा लघुविभागतः ॥ २ ॥

पञ्चशालं भवेद् योगाद् गृहयोद्विंशिशालयोः ।

यद्वा योगाद् भवेदेतच्चतुःशालिशालयोः ॥ ३ ॥

चतुर्णामपि वर्णानाभिर्दं समं प्रशस्यते ।

दिरण्यनाभमभुति वर्णानामिह वेष्टनाम् ॥ ४ ॥

सिद्धार्थादिममायोगादिप्रयत्नं गृहाष्टकम् ।

योगादिरण्यनामस्य सिद्धार्थेन गृहं भवेत् ॥ ५ ॥

हेमादृष्टाण्यमस्यैव चानेन स्वर्णमेवम् ।

मुश्रेयस्य च सिद्धार्थमयोगेन धियावहम् ॥ ६ ॥

तस्यैव यमगूर्वेण भवेद् वेष्टनं महानिधिः ।

शुक्लपातु यमगूर्वेण मदादीर्घं प्रजायते ॥ ७ ॥

दण्डमयोगतस्तस्य विप्रमान्त्रयिषं भवेत् ।

पद्मस्य तु दण्डेन मदोदीर्घं शिनिर्दिशेत् ॥ ८ ॥

पद्मस्यैव चानेन योगादिर्विप्रहृष्यते ।

न चापशूर्तामयोगविज्ञानादिव मन्दते ॥ ९ ॥

भन्योन्यवीक्ष्यमाणानां भेदास्तेनैव नादिताः ।
 एकशालयु(नैति)भेदाः स्पृधतुःशालयःमनि ॥ १० ॥
 चत्वारः पञ्चशालानां मूपस्तेषां च विंशतिः ।
 यदा भवन्यजा शाला सर्वगोभद्रंरम्भना ॥ ११ ॥
 गुदर्शनमिति पादुः पञ्चशालं तदा गृहम् ।
 तदेव करिणीयांगान् गुरुगमिति कथ्यते ॥ १२ ॥
 गुन्दरं महिणीयांगाद् गार्नीयांगांश्च शोभनम् ।
 वर्षमानस्य चैतासां शालानां योगतः प्रमान् ॥ १३ ॥
 गुनाभं गुपभं योग्यं तिनोदं च भवेद् गृहम् ।
 नन्द्यावर्तेऽप्येवमेव शालायांगेन जायते ॥ १४ ॥
 गुलेदं नन्दनं नन्दं पुण्डरीकं च मन्दिगम् ।
 रुचकस्याप्यजादीनां योगेन स्पृधनुकमात् ॥ १५ ॥
 नामतो भद्ररुचिररेचिष्णुनि प्रहर्षणम् ।
 स्वस्तिकेऽप्यनया युवत्या भवेद् गृहचतुष्टयम् ॥ १६ ॥
 घोषं सुघोषणं निन्दियोषं श्रीपद्ममेव च ।
 विंशतिः सर्वतोभद्रप्रभृत्यान्त्ययोगतः ॥ १७ ॥
 जातानि पञ्चशालानि योग्यानि पृथिवीभुजाम् ।
 पूर्वोक्तरष्टभिः सार्धं स्यादष्टाविंशतिर्गृहैः ॥ १८ ॥
 + कथ्यते^१ पञ्चशालानां मूपाभेदक्रमोऽधुना ।
 विभद्रमेकं तत्रैकंभद्राणि दशसङ्ख्यया ॥ १९ ॥
 द्विभद्राणि पुनः पञ्चचत्वारिंशत् प्रचक्षते ।
 त्रिभद्राणां शतं विंशत्युत्तरं द्वे दशोत्तरे ॥ २० ॥
 चतुर्भद्रगृहाणां तु द्विपञ्चाशच्छतद्वयम् ।
 गृहाणां पञ्चभद्राणां पद्भद्राणां दशोत्तरे ॥ २१ ॥

१. 'नाम्', २. 'नन्द', ३. 'न्ते' ख. पाठः ।-४. 'व' क. पाठः ।

+ 'अभीष्टामष्टाविंशतीनां(१)मध्ये एकतमस्य मूपाभेदे कृते एतावन्ति रूपाणि भव-
 न्ति' इति दिव्यजमस्ति ।

द्वे शते सप्तमद्राणां स्याद् विंशत्युत्तरं शतम् ।

गृहाणामष्टमद्राणां चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ २२ ॥

दश स्युर्नवमद्राणि तथैकं दशमद्रकम् ।

एवं सहस्रमेकं स्याद् विंशतिश्च चतुर्वृत्ता ॥ २३ ॥

गृहाणां पञ्चशालानां मूपावहनसङ्ख्यया ।

अथ लक्ष्म च संख्यां च धूमः पद्मशालवेद्यनाम् ॥ २४ ॥

एकद्वित्रिचतुश्शालगृहाणां योजनान्मिथः ।

द्विशालस्यैकशालस्य त्रिशालस्य च योगतः ॥ २५ ॥

पद्मशालं जायते वेद्य भेदास्तस्य तु षोडश ।

पञ्चप्रवातयोरीं तादेकशालगृहस्य च ॥ २६ ॥

स्यात् पङ्कजाङ्कुरं नाम गृहं पद्मशालमुत्तमम् ।

हिरण्यनाभं सिद्धार्थं चैकशालेन वेद्यनाम् ॥ २७ ॥

संयोज्यं तु यदा गेहं तदा स्याच्छ्रीगृहं शुभम् ।

संयोगादेकशालेन सुश्रेयसममूर्ययोः ॥ २८ ॥

धनेश्वरं नाम गृहं जायते धनवृद्धये ।

दण्डशाल्यचुल्लयोः संयोगादेकशालगृहस्य च ॥ २९ ॥

मभूतकाञ्चनकरं गृहं स्यात् काञ्चनममम् ।

द्वादशान्यानि जानीयाद् भवनान्यनया दिशा ॥ ३० ॥

एतेषामेव भेदेषु शुभान्यस्तिलवर्णिनाम् ।

तुल्यान् त्रिशालद्वितयात् पद्मशालकचतुष्टयम् ॥ ३१ ॥

स्याद् द्विशालचतुःशालयोगादन्यचतुष्टयम् ।

सिद्धार्थेन चतुःशालं वेद्य(नो?ना?)संयु(तिपे?नं य?)दा ॥ ३२ ॥

गृहं तदा स्यात् पद्मशालं श्रीश्रीरयानन्दकं शुभम् ।

यममूर्त्येन संयुक्तं विलामचपमूर्त्येन ॥ ३३ ॥

दण्डयुक्तं चतुःशालं गुग्गुदं नामतो मवेत् ।

पानेन च चतुःशालं संयुक्तं भीमदं मवेत् ॥ ३४ ॥

चतुर्विंशतिरेन्यानि पद्मालान्यन्ययोगतः ।

पञ्च यानि चतुष्मालान्युचितानि मदीमृताम् ॥ ३५ ॥

तेषां द्विभालयोगेन पद्मालान्यभिदध्यहे ।

सिद्धार्थं सर्वतोभद्रयुक्ते स्याच्छ्रीपुरं गृहम् ॥ ३६ ॥

श्रीयासं सर्वतोमद्रे यममूर्त्योन्विते भवेत् ।

दण्डालये भद्रयुक्ते श्रीभूषणं जायते गृहम् ॥ ३७ ॥

पातालख्यं सर्वतोभद्रयोगाच्छ्रीभाजनं विदुः ।

सिद्धार्थं वर्धमानेनं युक्ते स्याद् भूतिमण्डनम् ॥ ३८ ॥

यममूर्त्ये तु तेनैव संयुक्ते भूतिभाजनम् ।

भूतिमानं तु दण्डालये पातालख्ये भूतिभूषणम् ॥ ३९ ॥

नन्वावर्तस्य योगेन सिद्धार्थादिचतुष्टयम् ।

श्रीमुखं श्रीधरं श्रीकृच्छ्री(धृ?)रं चेति जायते ॥ ४० ॥

सिद्धार्थादिचतुष्कस्य भवेद् रुचकयोगतः ।

श्रियाकारं श्रियोचासं श्रीयानं श्रीमुखं तथा ॥ ४१ ॥

सिद्धार्थादिचतुष्कस्य भवेत् स्वस्तिकयोगतः ।

धनपालधनानन्तधनप्रदधनादयम् ॥ ४२ ॥

भवन्त्येवं राजवेश्मयोगतो विंशतिर्गृहाः ।

प्राक् चतुर्विंशतिश्चेति चत्वारिंशचतुर्युता ॥ ४३ ॥

मूषान्यूढिवशादेकभद्रादीन्यभिदध्यहे ।

भिदाभिरकं(?)मूषाभिरभद्रं द्वादशैकया ॥ ४४ ॥

द्वाभ्यां पदपटिरुद्दिष्टा विंशे द्वे तिस्रभिः शतैः(ति?) ।

स्याद् व्युदाभिश्चतस्रभिः पञ्चोनं शतपञ्चकम् ॥ ४५ ॥

शतानि पञ्चभद्राणां सप्त द्वावतिस्तथा ।

चतुर्विंशा नवशती पद्मभद्राणामुदाहृता ॥ ४६ ॥

जानीयात् सप्तभद्राणि संख्यया पञ्चभद्रवत् ।

गृहाणामष्टभद्राणां पञ्चोनं शतपञ्चकम् ॥ ४७ ॥

द्वे विंशे नवभद्राणां भवनानां शते विदुः
 पदपट्टिर्दशभद्राणि तथा द्वादशसङ्ख्यया ॥ ४८ ॥
 स्युरेकादशभद्राख्यान्येकं द्वादशभद्रकम् ।
 एवं पद्मशालगेहानां स्यात् साहस्रचतुष्टयम् ॥ ४९ ॥
 पण्णवत्यधिकं धूमः सप्तशालानि साम्प्रतम् ।
 तुल्यं त्रिशालद्वितयमेकशालेन युज्यते ॥ ५० ॥
 यदा स्युः सप्तशालानि तदा द्वादशसङ्ख्यया ।
 एकशालं द्विशालं च चतुःशालेन युज्यते ॥ ५१ ॥
 यदा तदा सप्तशालमपरं वैश्व जायते ।
 सैकशालं चतुःशालं यममूर्त्येण संयुतम् ॥ ५२ ॥
 तदा भवेद् विभेदः (?) स्यात् तद्गृहं श्रीप्रदायकम् ।
 वातेन श्रीपदं तद्वद् दण्डेन श्रीप्रदं भवेत् ॥ ५३ ॥
 सिद्धार्थकेन श्रीमालं तद्वदेव प्रजायते ।
 पञ्चानां राजयोग्यानां स्युश्चतुदशलवैश्वनाम् ॥ ५४ ॥
 सप्तशालानि संयोगादेकशालद्विशालयोः ।
 युज्यते सर्वतोभद्रं सिद्धार्थं च यदा गृहम् ॥ ५५ ॥
 एकशालेन जायेत श्रीपदं श्रीपदं त(था?दा) ।
 सर्वतोभद्रगेहस्य यममूर्त्येकशालयोः ॥ ५६ ॥
 योगेन श्रीफलं नाम स्याद् गृहं श्रीफलावहम् ।
 सर्वतोभद्रदण्डाभ्यामेकशालं युतं यदा ॥ ५७ ॥
 श्रीस्थलं नाम भवनं तदा स्यादास्पदं ध्रियः ।
 स्यादेकशाले मिलिते सर्वतोभद्रवातयोः ॥ ५८ ॥
 लक्ष्मीनिवासभवनं गृहं श्रीतनुसंश्रितम् ।
 यदेकशालं सिद्धार्थं वर्धमानं च युज्यते ॥ ५९ ॥
 श्रीपर्वताभिधानं स्यान् तदानीं भवनोत्तमम्
 यममूर्त्येण योगेन वर्धमानैकशालयोः ॥ ६० ॥

श्रीवर्धनं नाम गृहं श्रीयो वृद्धिकरं भवेत् ।
 दण्डं च वर्धमानं चैकशालं यदा भवेत् ॥ ६१ ॥
 तदा श्रीसप्तमं नाम भवेद् भवनमुत्तमम् ।
 यदैकशालं वाताख्यं वर्धमानं च युज्यते ॥ ६२ ॥
 भवनं श्रीप्रसात्ताख्यं नृपयोग्यं तदा भवेत् ।
 सिद्धार्थमेकशालेन नन्यावर्तेन चान्वितम् ॥ ६३ ॥
 श्रीभारं नाम भवनं भवेद् भूपालमेवितम् ।
 नन्धावर्तस्य योगेन यममूर्त्येकशालयोः ॥ ६४ ॥
 राज्ञां सुखावहं वेश्म श्रीभारमिति च स्मृतम् ।
 श्रीशैलमेकशालेन स्यान्नन्धावर्तदण्डयोः ॥ ६५ ॥
 योगाद् भोगावहं राज्ञां सप्तशालं गृहोत्तमम् ।
 एकशालस्य योगेन स्यान्नन्धावर्तवातयोः ॥ ६६ ॥
 श्रीखण्डं नाम भवनं भूभृतां भूतिकृद् भवेत् ।
 सिद्धार्थस्यैकशालेन संयोगाद् रुचकस्य च ॥ ६७ ॥
 श्रीपेण्डं नामतो वेश्म भवेद् योग्यं महीभृताम् ।
 रुचकस्यैव योगेन यममूर्त्येकशालयोः ॥ ६८ ॥
 स्याच्छ्रीनिधानं श्रीकुण्डं तस्य दण्डैकशालयोः ।
 वातैकशालरुचकैर्युक्तैः श्रीनाभमुच्यते ॥ ६९ ॥
 भवनं भूमिपालानां तद् भवेद् भूतिदायकम् ।
 एकशालेन युज्यते सिद्धार्थस्वस्तिके यदा ॥ ७० ॥
 श्रीप्रियं स्यात् तदा वेश्म सन्ततं बल्लभं श्रियः ।
 यममूर्त्येकशालाभ्यां स्वस्तिकं युज्यते यदा ॥ ७१ ॥
 तदा श्रीकान्तमित्याहुर्भवनं भूभृतां हितम् ।
 एकशालेन संयोगो दण्डस्वस्तिकयोर्ददा ॥ ७२ ॥
 श्रीमतं नामतो वेश्म तदा स्याद् विजयावहम् ।
 वातस्वस्तिकसंयोगमेकशालं यदा व्रजेत् ॥ ७३ ॥

श्रीप्रदत्तमिति प्राहुस्तदा वेश्म महीभृताम् ।
 एकैकस्य द्विभेदत्वाच्चत्वारिंशदियं भवेत् ॥ ७४ ॥
 एवमत्र प्रकाराः स्युश्चत्वारिंशद् युताष्टभिः ।
 यदा त्रिशालं भवनं चतुश्शालेन युज्यते ॥ ७५ ॥
 तदापि सप्तशालं स्याच्चतुर्थेदं समासतः ।
 पञ्चानां राजगोदानां मिलत्येकतमस्य चेत् ॥ ७६ ॥
 त्रिशालं स्यात् तदा सप्तशालं विंशतिभेदवत् ।
 हिरण्यनाभ(भौ?)गेन सर्वतोभद्रमन्दिरम् ॥ ७७ ॥
 श्रीवत्सं जनयेद् वेश्म नरेन्द्राणां हितावहम् ।
 श्रीवृक्षं सर्वतोभद्रे सुक्षेत्रे मिलिते भवेत् ॥ ७८ ॥
 चुल्लीयुक्ते पुनस्तस्मिन् श्रीपालं नाम जायते ।
 पक्ष्म्रे सर्वतोभद्रयुक्ते श्रीकण्ठमुच्यते ॥ ७९ ॥
 हिरण्यनाभे श्रीवासं वर्धमानयुते भवेत् ।
 श्रीनिवासं तु सुक्षेत्रे वर्धमानेन मिश्रिते ॥ ८० ॥
 वर्धमानेन चुल्लया च गृहं श्रीभूषणं विदुः ।
 पक्ष्मं वर्धमानेन यदा संयोगमृच्छति ॥ ८१ ॥
 तदा श्रीमण्डनं नाम जायते भवनोत्तमम् ।
 जाते हिरण्यनाभस्य नन्द्यावर्तेन सङ्गमे ॥ ८२ ॥
 स्याद् वेश्म श्रीकुलं नाम श्रियः कुलनिकेतनम् ।
 नन्द्यावर्तेन सुक्षेत्रे युक्ते श्रीगोकुलं भवेत् ॥ ८३ ॥
 नन्द्यावर्तस्य चुल्लयाश्च योगे श्रीस्थावरं गृहम् ।
 नन्द्यावर्तस्य पक्ष्मयोगे कुम्भं प्रजायते ॥ ८४ ॥
 हिरण्यनाभरुचकयोगे स्याच्छ्रीसमुद्रकम् ।
 श्रीनन्दं नाम सुक्षेत्रे रुचकारूपेन संयुते ॥ ८५ ॥
 चुल्ल्यां रुचकयुक्तायां श्रीह्रदं नाम जायते ।
 श्रीधरं नाम पक्ष्म भवेद् रुचकसंयुते ॥ ८६ ॥

यच्चतुर्दशभिर्भद्रेकमेव हि वेद्यं तत् ।
 इत्येषां सप्तशालानां सहस्राण्यत्र षोडश ॥ ९९ ॥
 एकोनत्रिंशती तद्वदशीतिश्चतुरुत्तरा ।
 इदानीमष्टशालानि भवनान्यभिदध्यहे ॥ १०० ॥
 बहिरन्तश्चतुःशालद्वयादेकं समासतः ।
 अन्यानि सर्वभद्रादिद्वयसंयोगतो दश ॥ १०१ ॥
 एकोनत्रिंशता क्षेत्रं चतुरश्रं विभाजयेत् ।
 भागद्वयेन मूषा स्याच्छाला भागचतुष्टयात् ॥ १०२ ॥
 कुर्वीत पञ्चभिर्भागैस्तन्मध्येऽङ्गणवापिकाम् ।
 चतस्रश्च प्रतिदिशं मूषाः स्युस्तत्र वास्तुनि ॥ १०३ ॥
 शालयोनं सप्तशालं पद्मशालं द्वितयोर्विज्ञतम् ।
 त्रिहीनं पञ्चशालं स्यादष्टशालमिदं क्वचित् ॥ १०४ ॥
 तुल्यत्रिशालद्वितयं द्विशालेन युतं यदा ।
 अष्टौ तदाष्टशालानि गृहाण्यन्यानि निर्दिशेत् ॥ १०५ ॥
 मूषाव्यूढिवशादष्टशालानामथ कथ्यते ।
 सङ्ख्या तत्र विभद्रं स्यादवहन्मूपसंज्ञितम् ॥ १०६ ॥
 षोडशैवैकभद्राणि द्विभद्राणां शतं विदुः ।
 विंशं षष्ट्या त्रिभद्राणां विज्ञेयं शतपञ्चकम् ॥ १०७ ॥
 अष्टादशाहुर्विंशानि चतुर्भद्रशतानि च ।
 पञ्चभद्रसहस्राणि चत्वारि स्युः शतत्रयम् ॥ १०८ ॥
 अष्टपष्टिश्च गेहानि तानि सम्यग् विभावयेत् ।
 सहस्राष्टकमष्टौ च पद्मभद्राणि प्रचक्षते ॥ १०९ ॥
 एकादशसहस्राणि तथा शतचतुष्टयम् ।
 जानीयात् सप्तभद्राणि चत्वारिंशद् गृहाणि च ॥ ११० ॥
 द्वादशैवाष्टभद्राणां सहस्राणि शताष्टकम् ।
 सप्तत्याभ्यधिकं प्राहुर्वास्तुविद्याविशारदाः ॥ १११ ॥

एकादशसहस्राणि तथा शतचतुष्टयम् ।
 चत्वारिंशच्च गेहानि नवभद्राणि सङ्ख्यया ॥ ११२ ॥
 अष्टौ स्युर्दशभद्राणां सहस्राण्यष्टभिः सह ।
 तथैकादशभद्राणां सङ्ख्या स्यात् पञ्चभद्रवत् ॥ ११३ ॥
 अष्टादशशतानि स्युर्विंशतिर्भवनानि च ।
 इति द्वादशभद्राणां सङ्ख्या भवति वेदमनाम् ॥ ११४ ॥
 स्यात् त्रयोदशभद्राणां पष्टचग्रं शतपञ्चकम् ।
 स्याच्चतुर्दशभद्राणां विंशत्यभ्यधिकं शतम् ॥ ११५ ॥
 वेदमानि स्युस्तथा पञ्चदशभद्राणि षोडश ।
 एकमेव हि विज्ञेयं गृहं षोडशभद्रकम् ॥ ११६ ॥
 † पञ्चपष्टिसहस्राणि पद्त्रिंशं शतपञ्चकम् ।
 गृहाणामष्टशालानां भवत्येकत्र सङ्ख्यया ॥ ११७ ॥
 स्यात् समानचतुश्शालद्वययोगात् समासतः ।
 एकैकशालयोगाच्च नवशालचतुष्टयम् ॥ ११८ ॥
 सर्वतोभद्रमुख्यानां मिथो द्वितययोगतः ।
 एकैकशालयोगाच्च चत्वारिंशत् तथापरा ॥ ११९ ॥
 तुल्यत्रिशालत्रितययोगेन च चतुष्टयम् ।
 गृहाणां नवशालानामन्यदुक्तं पुरातनैः ॥ १२० ॥
 संस्थानमुक्तं गेहानां नवशालात्मनापिदम् ।
 मृपावहनभेदेन तत्सङ्ख्या कथ्यतेऽधुना ॥ १२१ ॥
 अवहन्मृपमेकं स्याद् बहन्त्यौष्टादशकया ।
 द्वाभ्यां शतं त्रिपञ्चाशदधिकं वेदमनां भवेत् ॥ १२२ ॥

१. 'सहस्राणि विंश', २. भद्राणां भ', ३. 'ग्य' लः पाठः ।

| † अष्टशालद्वय- णामैकसङ्ख्यया षोडशगुरुना द्वयस्य | यह १ | ११ | १२० | १२० | १८२० | ४३१८ | ८००८ | ११४४४ | १२८७० |
|--|------|----|-----|-----|------|------|--------|-------|-------|
| भद्र० | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ भद्र | ८ | |
| भद्र १६ | १५ | १४ | १३ | १२ | ११ | १० | ९ भद्र | ८ | |

इति द्वितीय दशमस्कन्धः ।

तिसृभिः स्युः शतान्यष्टौ सहस्रोदशभिर्गृहैः ।
 पट्ठा सहस्रत्रितयं तामिथतसृभिर्भवेत् ॥ १२३ ॥
 पञ्चाशीतिशतान्यष्टपष्टियुक्तानि पञ्चभिः ।
 बहन्तीभिः प्रजायन्ते मूपाभिरिह वेष्मनाम् ॥ १२४ ॥
 अष्टादशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ।
 चतुःपष्टि च गेहानि मूपाभिः पद्भिरादिशेत् ॥ १२५ ॥
 एकत्रिंशत्सहस्राणि सहितान्यष्टभिः शतैः ।
 चतुर्विंशतियुक्तानि मूपाभिः सप्तभिर्विदुः ॥ १२६ ॥
 चत्वारिंशत्सहस्राणि त्रिसहस्री च वेष्मनाम् ।
 शतानि चाष्टपञ्चाशन् सप्त मूपाभिरष्टभिः ॥ १२७ ॥
 चत्वारिंशत्सहस्राणि सहस्राण्यष्ट पद्मशती ।
 विंशति चैव मूपाभिर्गृहाणां नवभिर्विदुः ॥ १२८ ॥
 चत्वारिंशत्सहस्राणि सहस्रत्रयमोकताम् ।
 मूपाभिर्दशभिः साष्टपञ्चाशच्छतसप्तकम् ॥ १२९ ॥
 एकत्रिंशत्सहस्राणि चतुर्विंशच्छताष्टकम् ।
 मूपाभिरेकादशभिर्गृहाणां मुनयो जगुः ॥ १३० ॥
 अष्टादशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ।
 धाम्नां द्वादशमूपाणां चतुःपष्टिश्च जायते ॥ १३१ ॥
 भवन्त्यष्टौ सहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ।
 स्यान् त्रयोदशमूपाणामष्टपष्टिश्च वेष्मनाम् ॥ १३२ ॥
 स्याच्चतुर्दशमूपाणां त्रिसहस्री सप्तपष्टिका ।
 मूपाभिः पञ्चदशभिः षोडशाष्टशती तथा ॥ १३३ ॥
 धाम्नां षोडशमूपाणां त्रिपञ्चाशच्छतं भवेत् ।
 स्युः सप्तदशमूपाणि वेष्मान्यष्टादश स्फुटम् ॥ १३४ ॥
 मूपाभिरष्टादशभिर्वेष्मकं मण्डितो विदुः ।
 लक्षद्वयं सहस्राणि द्वापष्टिश्च ननान्विता ॥ १३५ ॥

वेष्मनां नवशास्त्राणां चत्वारिंशच्चतुर्गुणा ।

स्यान् गमानचतुःशालद्वययोगान् ममागतः ॥ १३६ ॥

एकेन च द्विशालेन दशशालचतुष्टयम् ।

सर्वतोभद्रमुक्त्यानां पिपां द्वितययोगतः ॥ १३७ ॥

एकद्विशालयोगाच्च चत्वारिंशन् तथापरा ।

तुल्यत्रिशालत्रितयपेकशालयुतं यदा ॥ १३८ ॥

साधारणं तदान्यन् स्याद् दशशालचतुष्टयम् ।

तुल्ये त्रिशाले युज्येते सर्वमद्रादिभिर्यदा ॥ १३९ ॥

तदान्या दशशालानां समुत्पयेन विंशतिः ।

तेष्वेकमवहन्मूपं विंशतिर्मूपैकया ॥ १४० ॥

यहन्या स्यादुभाभ्यां तु नवत्यभ्यधिकं शतम् ।

चत्वारिंशानि तिसृभिः शतान्येकादश ध्रुवम् ॥ १४१ ॥

चत्वारि स्युश्चतसृभिः सहस्राणि शताष्टकम् ।

चत्वारिंशच्च गेहानि जायन्ते पञ्चभिः सह ॥ १४२ ॥

पञ्चभिस्तु सहस्राणि मूपाभिर्दशपञ्च च ।

जायन्ते सचतुष्काणि तथा पञ्चशतानि च ॥ १४३ ॥

अष्टाविंशत्सहस्राणि पद्भिः सप्त शतानि च ।

पष्ट्युत्तराणि जायन्ते वेष्मनां परिसङ्ख्यया ॥ १४४ ॥

गृहाणां स्युः सहस्राणि सप्तभिः सप्तसप्ततिः ।

शतपञ्चकमन्यच्च भवेद् विंशतिसंयुतम् ॥ १४५ ॥

लक्षमेकं सहस्राणि पञ्चविंशतिरष्टभिः ।

शतानि नव जायन्ते सप्तत्यभ्यधिकानि च ॥ १४६ ॥

लक्षमेकं सहस्राणि सप्तपष्टिः शतानि च ।

नव स्युः पष्टियुक्तानि नवमूपाप्रचारतः ॥ १४७ ॥

लक्षं चतुरशीतिश्च सहस्राणि शतानि च ।

सप्त स्युर्दशभिस्तद्वत् पञ्चाशच्च पडुत्तरा ॥ १४८ ॥

लक्षमेकं सहस्राणि सप्तपष्टिश्च वेष्मनाम् ।

शतानि चैकादशभिः पष्ट्यानि नव निर्दिशेत् ॥ १४९ ॥

लक्षं तथा सहस्राणि जायन्ते पञ्चविंशतिः ।
 शतानि च द्वादशभिर्नव तद्वच्च सप्ततिः ॥ १५० ॥
 सहस्राणि निकेतानां सङ्ख्यया सप्तसप्ततिः ।
 सविंशतिः पञ्चशती त्रयोदशभिरीरिता ॥ १५१ ॥
 अष्टात्रिंशत्सहस्राणि तथा सप्तशतानि च ।
 स्युश्चतुर्दशभिः पष्ट्या वेष्टनान्निवृतानि च ॥ १५२ ॥
 स्यात् पञ्चदशसाहस्री शतैः पञ्चभिरन्विता
 मृषाभिः पञ्चदशभिश्चत्वारि भवनानि च ॥ १५३ ॥
 स्युः सहस्राणि चत्वारि तद्वदष्टौ शतानि च ।
 तथा षोडशमृषाणां चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ १५४ ॥
 सहस्रं सप्तदशभिः शतमेकं च वेष्टनम् ।
 चत्वारिंशच्च वेष्टमानि भवन्ति परिसङ्ख्यया ॥ १५५ ॥
 शतं नवत्यभ्यधिकपष्टादशभिरुच्यते ।
 भवत्येकानविंशत्या मृषाणां वेष्टविंशतिः ॥ १५६ ॥
 एकमेव गृहं मृषाविंशतेर्वहनाद् भवेत् ।
 सङ्ख्येयं दशशालानां मृषाभेदप्रचारतः ॥ १५७ ॥
 प्रयुतं चत्वार्ययुतान्यष्टसहस्राणि पञ्च च शतानि ।
 षट्सप्ततिर्गृहाणि च दशशालेष्वेकसङ्ख्येयम् ॥ १५८ ॥
 चतुःशालादिगेषानि यावन्त्यादशशालतः ।
 चतुर्गुणानि प्रत्याशं तान्यन्विन्देन निर्दिशेत् ॥ १५९ ॥
 एकद्वित्रिचतुःशालवेष्टनां सहस्रान्मिथः ।
 गृहाणि दशशालान्तान्येवमुक्तानि विस्तरात् ॥ १६० ॥
 समारभ्य चतुःशालां दशशालान्तवेष्टनाम् ।
 सङ्ख्यामिदानीर्मरयेन सर्वेषामभिदध्यहे ॥ १६१ ॥
 मृषाभेदेन लक्षाणि स्युर्गृहोदग वेष्टनाम् ।
 सहस्राण्यष्टनवतिस्तथा वेष्टमानि षोडश ॥ १६२ ॥
 मृषागंस्थानभेदेन भिन्नानां वेष्टनां पुनः ।
 जायन्ते कोटिशो भेदा यस्माद्भोजनानि तान्यतः ॥ १६३ ॥

इत्थं चतुःशालमुक्तानि त्रैश्याम्भुक्तानि गान्धमशालमत्र ।

शालामभेदेन मिथोऽभिप्रायः सहस्र्या च तेषामुदिता गयान् ॥ १६४ ॥

इति महागणपतिपञ्चमीसोमोदनीतिविधौ मन्मथपञ्चपञ्चारात्मनि शालमुक्तानि

समस्तगृहाणां महस्र्याकृत्यर्चनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

अथ आयादिनिर्णयो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामः सूत्रपातविधेः क्रमम् ।

शस्ते मासि सिते पक्षे विदध्यात् तं शुभेऽहनि ॥ १ ॥

चैत्रे शोकाकुलो भर्ता वृशाखे च धनान्वितः ।

उपेष्टे गृही विपद्येत नश्यन्ति पशवः शुचौ ॥ २ ॥

श्रावणे धनवृद्धिः स्यान्नभस्ये न वसेद् गृहे ।

कलहश्चाश्विने मासि भृत्या नश्यन्ति कार्तिके ॥ ३ ॥

मार्गशीर्षे धनप्राप्तिः सहस्ये कामसम्पदः ।

माघे वह्निर्भयं चैव फाल्गुने श्रीरनुत्तमा ॥ ४ ॥

द्वितीया पञ्चमी मुख्या सप्तमी नवमी तथा ।

एकादशीत्रयोद(श्यस्तिऽश्यां ति)थयः स्युः शुभावहाः ॥ ५ ॥

चन्द्रतारावलं भर्तुरनुकूलं च शस्यते ।

इयं हि सूत्रपाताख्या क्रिया मासादकर्मणि ॥ ६ ॥

कार्या पुरनिवेशे च प्रारम्भे भवनस्य च ।

शिलानिवेशने द्वारस्तम्भोच्छ्रायादिकेषु च ॥ ७ ॥

आद्रियेत सिते पक्षे शोभने लग्न एव हि ।

रवौ कन्यातुलालिस्थे गृहे वरुणदिङ्मुखम् ॥ ८ ॥

न कुर्यात् तद्धि-शून्यं स्यान्न च वृद्धिर्भवेत् प्रभोः ।
 ने दक्षिणमुखं कुम्भमृगधन्विस्थिते रवौ ॥ ९ ॥
 कुर्वीत निष्कलं तत् स्यान्वृषदण्डवधादिकृत् ।
 न मीनवृषमेपस्थे कुर्वीत ग्राहमुखं रवौ ॥ १० ॥
 तद् धनघ्नं कलिमुद्रराजचौरौर्तिकृद् यतः ।
 रवौ मियुनसिहस्थे न कर्कस्थेऽप्युदङ्मुखम् ॥ ११ ॥
 कुर्यात् तद्धि-दरिद्रत्वं दद्याच्चरणदासताम् ।
 आयज्ययांशकर्त्ताणि प्रवक्ष्यामोऽथ वेद्मनाम् ॥ १२ ॥
 गृहमानवशात् सम्यक् कर्तुः स्थानबलाबलम् ।
 नगरे वा पुरादां वा दण्डमानं विधीयते ॥ १३ ॥
 तदलामे करः कार्यं सम्यगायविशुद्धये ।
 यत्र हस्तैर्मितिः क्षेत्रे तत्रायो हस्तसंभितः ॥ १४ ॥
 क्षेत्रालामे तु तत्रैव ग्राहः स स्यादिदाह्गुर्लः(?) ।
 अह्गुर्लस्तु मिते क्षेत्रे सोऽह्गुर्लस्तदलाभनः ॥ १५ ॥
 पार्दवाधि पर्ववापि ग्राहः क्षेत्रानुसारनः ।
 गृहेषु कर्महस्तेन मानं स्वामिकरेण वा ॥ १६ ॥
 देवतानां तु धिष्ण्येषु कर्महस्तेन केवलम् ।
 दैर्घ्यं हन्यात् पृथुत्वेन हरेद् भागं ततोऽष्टभिः ॥ १७ ॥
 यच्छेषमायं तं विद्याच्छासदष्टं ध्वजादिकम् ।
 ध्वजो धूमोऽथ सिंहश्च वृषः सरकुञ्जरा ॥ १८ ॥
 ध्वाह्धधेति त चरिष्टाः प्राज्यायागु मदक्षिणम् ।
 अन्योन्याभिमुखवास्ते च कामं स्वच्छन्दचारिणः ॥ १९ ॥
 पूर्वाचार्यः समुदितः आयुर्दिविषयकाः ।
 वृषसिंहगजाः श्वस्ताः प्रामादपुरवेभ्यसु ॥ २० ॥
 ध्वजैर्ध्वजधः सज्जापो धूमो धौगो मृगाधिवे ।
 कानिः शुनि धनं पान्यं ह्ये ग्रीदपणं खरे ॥ २१ ॥

गजे भद्राणि हृष्यन्ते ध्वाङ्क्षे नृ मर्षं धुतम् ।
 वृषभ्याने गजं कुर्यात् सिंहं वृषभहस्तिनोः ॥ २२ ॥
 न कुर्यात् वृषमन्यत्र शस्यते सर्वतो ध्वजः ।
 कन्याणं कुरुते सिंहो द्याद्यणस्य विशेषतः ॥ २३ ॥
 क्षन्त्रिणस्य गजः शस्त्रो वृषभः शस्यते विजः ।
 शूद्रस्य ध्वज सर्वकः शस्यतेऽर्थप्रदः मदा ॥ २४ ॥
 पत्नमेते पृहादीनामायाः सर्वे प्रकीर्तिताः ।
 प्रदद्यादासने सिंहमानपात्रेषु तु ध्वजम् ॥ २५ ॥
 चिह्नं पितृ च सर्वेषु चामरव्यजनादिषु ।
 सिंहं गजं वा शस्त्रेषु रथेषु कवचेषु च ॥ २६ ॥
 सार्यश्वे गजपर्याणिष्विधं वृषभमेव च ।
 अर्थधारणपात्रेषु शयनेषु मतङ्गजम् ॥ २७ ॥
 याने च वाहने चैव मतिमान् योजयेद् गजम् ।
 मासादप्रतिमालिङ्गपीठमण्डपवेदिषु ॥ २८ ॥
 कुण्डेषु च ध्वजं दद्याद् देवोपकरणेषु च ।
 आयो गृहवदुद्वाहवेदीमण्डपयोर्भवेत् ॥ २९ ॥
 महानसे वृषं दद्याज्जलाधारे जलाशये ।
 स्थाल्यां भोजनपात्रे च कोष्ठागारेऽन्नधारणे ॥ ३० ॥
 एतद्गृहे तथा दद्याद् गृहोपकरणेषु च ।
 वृषभं गजशालायां प्रदद्याद् गजमेव वा ॥ ३१ ॥
 वृषं तुरगशालासु गोशालागोकुलेषु च ।
 गजाश्ववृषशालासु सिंहं यन्त्रेण वर्जयेत् ॥ ३२ ॥
 अथमानां खरध्वाङ्क्षधूमश्वानः शुभावहाः ।
 धूमोऽग्निजीविनां शस्तो ध्वाङ्क्षः सन्त्यासिनां हितः ॥ ३३ ॥
 स्वगणानां श्वपाकानां स्ववेदमानां खरः शुभः ।
 नटनर्तकवेश्मेषु पण्यस्त्रीणां खरः शुभः ॥ ३४ ॥
 कुलालरजकादीनां तथा गर्दभजीविनाम् ।
 गृहादिषु क्षेत्रफलं गणयेदष्टभिर्भजेत् ॥ ३५ ॥

त्रिघनेन भजेच्छेपं नक्षत्रेऽष्टहते व्ययः ।
 विशाचो राक्षसो यक्ष इति त्रेधा व्ययो मतः ॥ ३६ ॥
 साम्याधिरन्यूनताभिरायतः स्याद् यथाक्रमम् ।
 व्ययं क्षेत्रफले क्षिप्त्वा गृहनामाक्षराणि च ॥ ३७ ॥
 भागं त्रिभिर्हरेत् तत्र यच्छेपं सौंशको भवेत् ।
 चतुरङ्गो यथा मन्त्रो मुख्यो लग्ने नवांशकः ॥ ३८ ॥
 तथा गृहादिषु प्रोक्तं मुख्यत्वेनांशकत्रयम् ।
 इन्द्रो यमश्च राजा च त्रयो नामभिरंशकाः ॥ ३९ ॥
 स्वनामतुल्यफलदा विज्ञातव्यास्त्रयोऽपि च ।
 गणयेत् स्वामिनिक्षत्राद् यावत् स्याद् भवनस्य भम् ॥ ४० ॥
 नवभिर्भाजिते तस्मिञ् शेपं तारा प्रकीर्तिता ।
 जन्मसम्पद्विपत्तेश्चपापसाधकनैधनीः ॥ ४१ ॥
 मंत्रीपरममन्त्र्यौ च प्राहुः संज्ञाः समाः फले ।
 त्रिसप्तपञ्चमीर्भर्तुर्गृहतारा विवर्जयेत् ४२ ॥
 आद्याद्वितीयाष्टम्यस्तु ताराः स्युरिह मध्यमाः ।
 तथा ऋक्षेऽपि चानिष्टे चन्द्रेऽष्टमगतेऽपि च ॥ ४३ ॥
 नयते दुरितं तारा चतुःपण्णवती(?)वृणाम् ।
 सुरराक्षसमर्त्याख्या ऋक्षाणां स्युर्गणास्त्रयः ॥ ४४ ॥
 यद्गणक्षौ भवेद् भर्ता तद्गणक्षं शृङ्गं शुभम् ।
 मृगाभिरिवतीस्वात्यो मैत्रं पुण्यपुनर्वसू ॥ ४५ ॥
 हस्तः श्रवण इत्येव देवाख्यो नवको गणः ।
 विशाखा कृत्तिकाश्लेषा नैर्ऋतं वारुणं मघा ॥ ४६ ॥
 चित्रा ज्येष्ठा धनिष्ठेति नवको राक्षसो गणः ।
 आर्द्राभरण्या रोहि(?)ण्या) तिस्रः पूर्वास्तथोत्तराः ॥ ४७ ॥
 इति नक्षत्रनवकं विज्ञेयं मानुषे गणे ।
 गणसाम्यं शुभा ताग यस्यापा(तु?)व्ययोऽन्यकः ॥ ४८ ॥

गजे भद्राणि दृश्यन्ते ध्वाङ्क्षे तु मरणं ध्रुवम् ।
 वृषस्थाने गजं कुर्यात् सिंहं वृषमहस्तिनोः ॥ २२ ॥
 न कुर्याद् वृषमन्यत्र शस्यते सर्वतो ध्वजः ।
 कल्याणं कुरुते सिंहो ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥ २३ ॥
 क्षत्रियस्य गजः शस्तो वृषभः शस्यते विशः ।
 शूद्रस्य ध्वज एवैकः शस्यतेऽर्थप्रदः सदा ॥ २४ ॥
 एवमेते गृहादीनामायाः सर्वे प्रकीर्तिताः ।
 मदद्यादासने सिंहमातपत्रेषु तु ध्वजम् ॥ २५ ॥
 चिह्नेष्वपि च सर्वेषु चामरव्यजनादिषु ।
 सिंहं गजं वा शस्त्रेषु रथेषु कवचेषु च ॥ २६ ॥
 सार्यश्वगजपर्याणेष्विभं वृषभमेव च ।
 अर्थधारणपात्रेषु शयनेषु मतङ्गजम् ॥ २७ ॥
 याने च वाहने चैव मतिमान् योजयेद् गजम् ।
 प्रासादप्रतिमालिङ्गपीठमण्डपवेदिषु ॥ २८ ॥
 कुण्डेषु च ध्वजं दद्याद् देवोपकरणेषु च ।
 आयो गृहवदुद्गाहवेदीमण्डपयोर्भवेत् ॥ २९ ॥
 महानसे वृषं दद्याज्जलाधारे जलाशये ।
 स्थाल्यां भोजनपात्रे च कौष्ठागारेऽन्नधारणे ॥ ३० ॥
 एतद्गृहे तथा दद्याद् गृहोपकरणेषु च ।
 वृषभं गजशालायां प्रदद्याद् गजमेव वा ॥ ३१ ॥
 वृषं तुरगशालासु गोशालागोकुलेषु च ।
 गजाश्ववृषशालासु सिंहं यत्रेन वर्जयेत् ॥ ३२ ॥
 अश्वानां खरध्वाङ्क्षधूमश्वानः शुभावहाः ।
 धूमोऽग्निजीविनां शस्तो ध्वाङ्क्षः सन्न्यासिनां हितः ॥ ३३ ॥
 स्वगजानां श्वाकानां स्ववेश्मानां खरः शुभः ।
 नटनर्तकवेश्मेषु पण्यरीणां खरः शुभः ॥ ३४ ॥
 कुलालरजकादीनां तथा गर्दभजीविनाम् ।
 गृहादिषु क्षेत्रफले गेणयेदष्टभिर्भजेत् ॥ ३५ ॥

त्रिघनेन भजेच्छेपं नक्षत्रेऽष्टहृते व्ययः ।

पिशाचो राक्षसो यक्ष इति त्रैधा व्ययो मतः ॥ ३६ ॥

साम्याधिनयन्यूनताभिरायतः स्याद् यथाक्रमम् ।

व्ययं क्षेत्रफले क्षिप्त्वा गृहनामाक्षराणि च ॥ ३७ ॥

भागं त्रिभिर्हरेत् तत्र यच्छेपं सौंशको भवेत् ।

चतुरङ्गो यथा मन्त्रो मुख्यो लग्ने नवांशकः ॥ ३८ ॥

तथा गृहादिषु प्रोक्तं मुख्यत्वेनांशकत्रयम् ।

इन्द्रो यमश्च राजा च त्रयो नामभिरंशकाः ॥ ३९ ॥

स्वनामतुल्यफलदा विज्ञातव्यास्त्रयोऽपि च ।

गणयेत् स्वाभिनक्षत्राद् यावत् स्याद् भवनस्य भम् ॥ ४० ॥

नवभिर्भाजिते तस्मिंश्च शेषं तारा प्रकीर्तिता ।

जन्मसम्पाद्विपत्तेमपापसाधकनैधनीः ॥ ४१ ॥

मैत्रीपरममैत्र्या च माहुः संज्ञाः समाः फले ।

त्रिसप्तपञ्चमीर्भर्तुर्गृहतारा विवर्जयेत् ४२ ॥

आद्याद्वितीयाष्टम्यस्तु ताराः स्युरिह मध्यमाः ।

तथा ऋक्षेऽपि चानिष्टे चन्द्रेऽष्टमगतेऽपि च ॥ ४३ ॥

नयते दुरितं तारा चतुःपणवती(?)वृणाम् ।

सुरराक्षसमर्त्याख्या ऋक्षाणां स्युर्गणास्त्रयः ॥ ४४ ॥

यद्गणक्षो भवेद् भर्ता तद्गणक्षं गृहं शुभम् ।

मृगाश्विरेवतीस्वात्यो मैत्रं पुष्यपुनर्वसू ॥ ४५ ॥

हस्तः श्रवण इत्येष देवाख्यो नवको गणः ।

विशाखा कृत्तिकाश्लेषा नैर्ऋतं बारुणं मघा ॥ ४६ ॥

चित्रा ज्येष्ठा धनिष्ठेति नवको राक्षसो गणः ।

आर्द्राभरण्या रोहि(ण्या?)ष्या तिस्रः पूर्वास्तथोत्तराः ॥ ४७ ॥

इति नक्षत्रनवकं विज्ञेयं मानुषे गणे ।

गणसाम्यं शुभा तारा यस्याया(तु?)व्ययोऽल्पकः ॥ ४८ ॥

हिनींजकश्च तद्वैद्य भर्तुः शुभकल्पप्रदम् ।

आयो न्ययश्च योनिर्न नाराभ भवर्नामकाः ॥ ४९ ॥

गृहनामेति चिन्तयानि करणानि गृहस्य पद ।

त्रिभिः शुभैः शुभे वैद्य द्वाभ्यामेतेन चाशुभम् ॥ ५० ॥

कारणशतुराद्यस्तु शुभैरतिशुभं भवेत् ।

न समायज्यं वैद्य माज्यं नाधिकज्यम् ॥ ५१ ॥

न द्वितीयाशुभमस्त्ययानि च न कारयेत् ।

भर्तुस्त्याभिधानं च गृहं दृष्ट्वा परिगृहेत् ॥ ५२ ॥

सप्तसप्तकमेकं तृतीयैकादशं तथा ।

चतुर्थदशकं चेति कर्तव्यं मन्दिरं सदा ॥ ५३ ॥

पद्कोष्ठकं त्रिकोणं च वज्रं द्विर्द्वादशं तथा ।

पद्कोष्ठके मूर्तिर्द्वयं त्रियोगश्च भवेद् गृहे ॥ ५४ ॥

त्रिकोणे वसतां दुःखं वैधव्यं च प्रजायते ।

द्विर्द्वादशे पुत्रपौत्रगुरुवधुधनक्षयः ॥ ५५ ॥

हृतेऽष्टभिः क्षेत्रफलं खनेत्रगशिभाजिते ।

शेषं जीवितमेतस्मिन् पञ्चभक्ते भवेन्मृतिः ॥ ५६ ॥

सशुभं सहस्रद्वारं मुखमण्डपसंयुतम् ।

आयामतः पृथुत्वाच्च मानं कृत्वा विभाजयेत् ॥ ५७ ॥

सर्वतः शोधितं वास्तु यच्च सम्यङ्मितं भवेत् ।

स्वामिनस्तद् भवेद् धन्यं स्थपतेश्च यशस्करम् ॥ ५८ ॥

अर्चितं वर्धते वास्तु नारीभिः पशुभिर्नरैः ।

कीर्त्यायुर्धनधान्यश्च प्रमोदैस्तु महोत्सवैः ॥ ५९ ॥

मेरुश्च खण्डमेरुश्च पताका सूचिका तथा ।

उद्दिष्टं नष्टमिति पद् छन्दांसीह प्रवक्षते ॥ ६० ॥

एकाद्येकोत्तरान् कोष्ठान् विन्यसेदिच्छयात्मनः ।

आद्यादारभ्य तद्गृहद्विषया स्यात् पार्श्वयोः समम् ॥ ६१ ॥

मेरोरेकाधिका सङ्ख्या शरावस्थेव चाकृतिः ।

प्रथमे कोष्ठके रूपमन्तं यावच्च पार्श्वयोः ॥ ६२ ॥

आसनोर्ध्वस्थयोर्न्यस्येन्मध्ये सङ्कलितं पृथक् ।

तस्मिन्निष्टविकल्पानां सङ्ख्या स्यादन्त्यपङ्क्तिगा ॥ ६३ ॥

खण्डमेरुं तु विन्यस्येत् तद्वदेवैकपार्श्वतः ।

मष्टद्वैः कोष्ठैस्तत्राप्यङ्काः प्राग्वत् फलं तथा ॥ ६४ ॥

अथापरः खण्डमेरुः कोष्ठांस्तत्रेष्टसङ्ख्यया ।

कृत्वैकापचितान् चामविभगापचितानधः ॥ ६५ ॥

एकाद्येकोत्तरानङ्कानाद्यपङ्क्तौ निवेशयेत् ।

अन्यासु पङ्क्तिष्वामान्तं शून्या(न्याः)नाद्येषु कल्पयेत् ॥ ६६ ॥

द्वितीयेषु च कोष्ठेषु तासामेकैकमावयेत् (?) ।

द्वितीयायां तृतीयादिकोष्ठकेषु यथाक्रमम् ॥ ६७ ॥

विकर्णयोगजानन्यान्पूर्वाधोयोगसंभवान् ।

फलं विकर्णयोगोत्थमेकस्मिन् परिकल्पयेत् ॥ ६८ ॥

एकाधिकानभीष्टायाः सङ्ख्यायास्तिर्यगालिखेत् ।

कोष्ठाने(कांचितांश्च) रूपादींस्तन्मध्ये द्विगुणोत्तरान् ॥ ६९ ॥

एकोनं पृष्ठतस्तेषामेकं द्विगुणमग्रतः ।

नातिक्रामेत् परां सङ्ख्यां पताकाछन्द उच्यते ॥ ७० ॥

तद्विनेष्टाद्यगा सङ्ख्येत्येकाद्यैस्तैस्ततो मृदे ।

न्यस्ताङ्कसङ्ख्याः सङ्ख्याः स्फुरलिन्दाद्यैः प्रकल्पिताः ॥ ७१ ॥

एकैकमिष्टस्थानेषु लिखेत् संकेततः परम् ।

अन्त्या(दैर्द्वै)ते पूर्वपूर्वयुक्तेनायोजयेत् परम् ॥ ७२ ॥

अन्त्यादारभ्य तद्वनावेकाद्येषु(?) च पर्ययात् ।

अलिन्दादिषु यत्र स्यात् सङ्ख्या सूचीं तु तां विदुः ॥

अदिष्टे स्थापयेत् सङ्ख्यामुदिष्टां सम्भ(वे)जे च ताम् ।

दलयेद् रूपयुक्तां तु दलयेन्नाम सम्भवेत्(?) ॥ ७४ ॥

निस्पृष्टसौर्ध्वैर्वा(?) स्यादेकस्यां वा यदा दिशि ।
 नन्दा भद्रा जया पूर्णा क्रमेण स्युः सभास्तदा ॥ ४ ॥
 पद्भागभाजिते क्षेत्रे कर्णभित्ति निवेशयेत् ।
 सभा स्याद् भाविता नाम सभाग्रीवात्र पञ्चमी ॥ ५ ॥
 स्तम्भान् पद्त्रिंशदेतासु पञ्चस्वपि निवेशयेत् ।
 स्तम्भान् प्राग्ग्रीवसंवद्धान् पृथगेभ्यो विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥
 दक्षेति पष्ठी परितस्तृतीयालिन्दवेष्टिता ।
 प्रवरा सप्तमी द्वारैर्युक्तया परिकीर्तिता ॥ ७ ॥
 प्राग्ग्रीवद्वारसंयुक्ता विदुरेत्यष्टमी सभा ।
 सभानामिदमष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ॥ ८ ॥
 इत्यष्टानां लक्ष्य सम्यक् सभाना-
 मेतत् प्रोक्तं दिग्भवालिन्दभेदात् ।
 तद्वद् द्वारालिन्दसंयोगतश्च
 ज्ञातेऽत्र स्याद् भूमृतां स्थानयोगः ॥ ९ ॥

इति महायज्ञाधिराजप्रीभोजनदेवविदिते समराज्यसूत्रधारशरनाभि वास्तुशास्त्रे

सभाष्टकं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥

अथ गृहद्रव्यप्रमाणानि नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।

उपादेयानि यान्यत्र परित्याज्यानि यानि च ।
 गृहद्रव्यप्रमाणानि तानीदानीं प्रचक्ष्मे ॥ १ ॥
 द्वारस्य गृहविस्तारैस्तनुन्याद्गुल्भवेत् ।
 चच्छायः सप्तभिर्युक्तैर्विस्तृतिस्तु तदर्धतः ॥ २ ॥
 मफलपेद शृङ्गारं कर्मणश्च कनीयसा(म) ।

सप्तहस्तो भवेज्ज्येष्ठे मध्यमे पङ्करोन्मितः ।
 पञ्चहस्तः कनिष्ठे तु विधातव्यस्तथोदयः ॥ १७ ॥
 ज्येष्ठे भवेत् सप्तदशहस्ताच्छाला प्रविस्तृता ।
 मध्यमे दशहस्तात् तु पञ्चहस्तात् कनीयसि ॥ १८ ॥
 उदुम्बं(रा?रस्य) बाहु(त्य?ल्यात्) तलन्यासं तु क्रास्येत् ।
 तलन्याससमं पट्टमलिन्दस्य परिग्रहे ॥ १९ ॥
 द्वारविस्तारपादेन स्तम्भकोटिर्विधीयते ।
 साष्टांशेनाधिकेनाथ सत्रिभागेन वा पुनः ॥ २० ॥
 कुर्यादेकादशांशेन तथास्यैव म(या?णा)लिनीम् ।
 स्तम्भान् कुर्याद्विष्टांशाच्च द्विदशधाथवा ॥ २१ ॥
 भागैस्ततः स्वार्धसमैरर्धभागसमन्वितैः ।
 अधस्तादष्टभागा स्यात् स्तम्भस्य प्रतिपालना ॥ २२ ॥
 स्तम्भमूलस्य विस्तारादर्धेन स्थलनिर्गमः ।
 तदर्धेन विधातव्यो ममूरकविनिर्गमः ॥ २३ ॥
 उत्कालकसमुच्छ्रायः स्तम्भपिण्डसमः शुभः ।
 कुम्भिकोत्कालवत् पिण्डे विस्तारेऽष्टांशसम्मिता ॥ २४ ॥
 प्रागुक्तस्तम्भभागेन सपादेन विधीयते ।
 दीर्घत्वमाद्यपत्राणां शेषाणां पादहानितः ॥ २५ ॥
 पादः पादो भवेन्न्यूनः पत्राणां रसनोच्छ्रयात् ।
 सार्धभागोच्छ्रिता कार्या रसना कण्टकोपमा ॥ २६ ॥
 सार्धपादोच्छ्रिता यद्वा जड्वा शेषं यथोदितम् ।
 इत्थं स्यात् पत्रकस्तम्भो युक्त्या युक्तस्वरूपकैः ॥ २७ ॥
 अष्टाथो वा विधातव्यः स्तम्भमूत्रपरिक्रमात् ।
 तद्विस्तारसमं त्यक्तोत्सेधं भागान् विभाजयेत् ॥ २८ ॥
 अष्टाश्रच्छेदमानेन बाह्यमूत्रानुपल्लवान् ।
 विदध्यान्मध्यभागे तु कोणांश्च पल्लिकाकुलान् (?) ॥ २९ ॥

इत्युच्छ्रितस्त्वर्धेन सर्वेणामपि विम्बः ।

उच्छ्रायमुत्तमानां तु कुर्यादष्टांशवर्जितम् ॥ ४ ॥

विस्ताराद्गुणसंयुक्तोक्तं कुर्यादधिकनीयमात् ।

पतुःपट्टिगृहद्वारमुदयेनार्धविम्बतम् ॥ ५ ॥

विस्तारहस्ततुल्यानि पट्ट्या पञ्चाशतायत्रा ।

संयुतान्यद्गुणानि स्यादुच्छ्रायांर्धेन विस्तृतिः ॥ ६ ॥

गृहोत्सेधेन वा त्र्यंशहीनेन स्यात् सायुच्छ्रितिः ।

तदर्थेन तु विस्तारो द्वारस्येत्यपरो विधिः ॥ ७ ॥

द्वारोच्छ्रायकरस्तुल्येष्वद्गुणेषु विनिक्षिपेत् ।

चत्वारि पेद्यापिण्डः स्यात् सपादं विदधीत तम् ॥ ८ ॥

सार्धं वा सत्रिमागं वा द्विगुणं चाधिकं न तु ।

एवं कृते भवेद् द्वारपेद्याया विस्तृतिः स्फुटा ॥ ९ ॥

सार्धेन पेद्यापिण्डेन पिण्डं स्यात्पिण्डस्योद्वयरो भवेत् ।

सार्धस्तु पेद्याविस्तारः स्यादुद्वयविस्तृतिः ॥ १० ॥

पेद्यापिण्डेन तुल्या स्याच्छाखाया विस्तृतिः शुभा ।

सार्धया वैतया रूपशाखाया अपि विस्तृतिः ॥ ११ ॥

विस्तारार्धेन पेद्यायाः खल्वशाखा विधीयते ।

रूपशाखासमा वा स्यात् सार्धा वा बाह्यमण्डला ॥ १२ ॥

पादोना त्र्यंशहीना वा विस्तारादर्थमेव वा ।

मासादेषु च तुल्यः स्याद् भारशाखाविनिर्गमः ॥ १३ ॥

आद्या शाखा भवेद् देवी द्वितीया नन्दिनीति च ।

तृतीया सुन्दरी नाम चतुर्थी स्यात् मियानना ॥ १४ ॥

भद्रेति पञ्चमी शाखा प्रशस्ताः पञ्च वेश्मनि ।

अतोऽधिकास्तु याः शाखा गृहद्वारि न ताः शुभाः ॥ १५ ॥

विस्तारात् षोडशो भागश्चतुर्हस्तसमन्वितः ।

तलोच्छ्रयः प्रशस्तोऽयं भवेद् विदितवेश्मनाम् ॥ १६ ॥

सप्तहस्तो भवेज्ज्येष्ठे मध्यमे षट्करोन्मितः ।
 पञ्चहस्तः कनिष्ठे तु विधातव्यस्तथोदयः ॥ १७ ॥
 ज्येष्ठे भवेत् सप्तदशहस्ताच्छाला प्रविस्तृता ।
 मध्यमे दशहस्तात् तु पञ्चहस्तात् कनीयसि ॥ १८ ॥
 उदुम्बं(रा?रस्य) बाहु(त्य?ल्यात्) तलन्यासं तु कारयेत् ।
 तलन्याससमं षट्मलिन्दस्य परिग्रहे ॥ १९ ॥
 द्वारविस्तारपादेन स्तम्भकोटिविधीयते ।
 साष्टांशेनाधिकेनाथ सत्रिभागेन वा पुनः ॥ २० ॥
 कुर्यादेकादशांशेन तथास्यैव प्र(या?णा)लिनीम् ।
 स्तम्भान् कुर्याद्विष्टांशान्नव द्वादशधाथवा ॥ २१ ॥
 भागैस्ततः स्वार्धसमैरर्धभागसमन्वितैः ।
 अधस्तादष्टभागा स्यात् स्तम्भस्य प्रतिपालना ॥ २२ ॥
 स्तम्भमूलस्य विस्तारादर्थेन स्थलनिर्गमः ।
 तदर्थेन विधातव्यो ममूरकाविनिर्गमः ॥ २३ ॥
 उत्कालकसमुच्छ्रायः स्तम्भपिण्डसमः शुभः ।
 कुम्भिकोत्कालवत् पिण्डे विस्तारेष्टांशसम्पिता ॥ २४ ॥
 प्रागुक्तस्तम्भभागेन सपादेन विधीयते ।
 दीर्घत्वमाद्यपत्राणां शेषाणां पादहानितः ॥ २५ ॥
 पादः पादो भवेन्न्यूनः पत्राणां रसनोच्छ्रयात् ।
 सार्धभागोच्छ्रिता कार्या रसना कण्टकोपमा ॥ २६ ॥
 सार्धपादोच्छ्रिता यद्वा जद्वा शेषं यथोदितम् ।
 इत्थं स्यात् पत्रकस्तम्भो युक्त्या युक्तस्वरूपकैः ॥ २७ ॥
 अष्टाश्रो वा विधातव्यः स्तम्भमूत्रपरिक्रमात् ।
 तद्विस्तारसमं त्यक्तोत्सेर्ध भागान् विभाजयेत् ॥ २८ ॥
 अष्टाश्रच्छेदमानेन वातमूत्रानुपल्लवान् ।
 विदध्यान्मध्यभागे तु कोणांश्च पल्लिकाकुब्जान् (?) ॥ २९ ॥

पटिका पुष्पमालामिः पटुर्वधोपशोमिता ।
 छेदभागः समः कार्यो यद्विर्माणविवर्जितः ॥ ३० ॥
 पटपट्टयको नाम स्तम्भोऽयं परिकीर्तितः ।
 विहितो वेम्पनामेव स्वामिनः श्रेयसे भवेत् ॥ ३१ ॥
 कुबेरो वा विधातव्यः षोडशाश्रक्रियान्वितः ।
 ऊर्ध्वतः पल्लवाकीर्णो जहास्य चतुरश्रिका ॥ ३२ ॥
 श्रीधरश्च भवेद् वृत्तः कल्पनास्य कुबेरवत् ।
 एवं गृहाणां चत्वारः स्तम्भा लक्ष्मभिरीरिताः ॥ ३३ ॥
 स्तम्भमूलस्य विस्तृत्या तलप(द)स्य विस्तृतिः ।
 सपादया विधातव्या बाहुल्यं पादहीनया ॥ ३४ ॥
 स्तम्भेन तुल्यं विस्तारे बाहुल्ये पदसम्पन्नम् ।
 हीरग्रहणमायामे स्तम्भाग्रात् त्रिगुणं भवेत् ॥ ३५ ॥
 हीरग्रहणविस्तारं भागात् सप्त प्रकल्पयेत्(?) ।
 तत् स्यात् सृष्टोत्तरं भागं भागेनेष्टं प्रवेशनम् ॥ ३६ ॥
 तस्याधस्तात् त्रिकण्डेन त्रिभागं लम्बितेन च ।
 लिखेदुभावर्धचन्द्रौ पार्श्वयोरुभयोरपि ॥ ३७ ॥
 खल्वं कृत्वा ततो मध्यं भागद्वयमधोगतम् ।
 कुर्यात् त्रिकण्डकं कान्तं तुम्बिकामथ लम्बिकाम् ॥ ३८ ॥
 द्वयोर्मध्येऽपरं भूयो द्विभागस्थं च कण्टकम् ।
 तुम्बिकां लम्बमानां वा पत्रजातिविभूषिताम् ॥ ३९ ॥
 तस्याध्वापरतीरं स्यात् पद्मपत्र्या विभूषितम् ।
 तलपट्टसमः पेट्रो विस्तारात् पिण्डतोऽपि च ॥ ४० ॥
 पट्टत्र्यंशेन तीरे स्यात् पट्टपिण्डार्धनिर्गमः ।
 स्तम्भाग्रेण समा कार्या विस्तारस्थौल्यतस्तुला ॥ ४१ ॥
 तदर्धेन जयन्तीनां कर्तव्ये पिण्डविस्तृती ।
 ताभ्यो विधेयाः पादोनाः सन्धिपाला यदृच्छया ॥ ४२ ॥
 निर्यूहेषु च ये पट्टाः पादोनांस्तांस्तु कारयेत् ।
 तुलापट्टाश्च पादोनास्तदर्धेन जयन्तिकाः ॥ ४३ ॥

तुलार्धेन विधातव्या प्रतिमोकस्य विस्तृतिः ।

पट्टस्योपरि कण्ठः स्याद् भूपितो रूपकर्मणा ॥ ४४ ॥

वेदिका(जैजा)लरूपाद्या निर्यूहे संप्रशस्यते ।

विधातव्या च सच्छत्रा निरुद्धाङ्गणवापिका ॥ ४५ ॥

स्तम्भपट्टां(शुस्तु) विस्तीर्णान् सपादांस्तत्र कल्पयेत् ।

तुलापिण्डाः समाः कार्याः सङ्ग्रहैः सुदृढैर्युताः ॥ ४६ ॥

वेदिकानालसम्पन्नं तलं कार्यं मनोरमम् ।

भूर्माभूर्मा भवेत् तच्च द्वादशांशविवर्जितम् ॥ ४७ ॥

प्रणाल्यः सर्वतः कार्या मूलग्राहाग्रनिर्गमाः ।

दण्डच्छाद्यं गृहेषु स्याज्ज्ञेयं तच्च चतुर्विधम् ॥ ४८ ॥

भूताल्यं तिलकं तद्वन्मण्डलं कुमुदं तथा ।

गृहच्छाद्येषु तेषु स्यादुच्छ्रायोऽपि चतुर्विधः ॥ ४९ ॥

क्षेत्रतुपांशतः कार्यो दैर्घ्येणच्छाद्यदण्डकः ।

तदर्धं मुष्टिकायामो दण्डैर्व्यंशेन लम्बना ॥ ५० ॥

चतुरश्रं समं कान्तं मधुरं सुदृढं घनम् ।

वैर्मनां छाद्यकं कार्यं भूतं नाम्ना सुपूजितम् ॥ ५१ ॥

तस्यैवाष्टादशो भागो यदा स्यादुच्छ्रयेऽधिकः ।

उदयस्तिलको नाम नस्तः स गृहकर्मणि ॥ ५२ ॥

द्राभ्यामुद्यनरः पूर्वा मण्डलः कुमुदसिन्धिः ।

अभित्ति(स्येस्ये) भवेच्छा(द्येद्ये) चन्द्रैस्त्राविभूषितम् ॥ ५३ ॥

गुणरागान्विता भित्तिर्यद्वा घनचयात्मिका ।

तत्रच्छाद्यं भवेद्यान्यद्रवधारणसंज्ञितम् ॥ ५४ ॥

सिंहकर्णरूपोतालीचष्टाकर्णार्धपञ्चगाः ।

ध्वजच्छत्रकुमारांध एतेषु परिवर्जयेत् ॥ ५५ ॥

न पक्षराजिध्वजसिंहकर्णकुमारघण्टाः समरालपट्टीः ।
न प्रस्वलोर्ध्वानि नैर्ध्व पत्राण्यायोजयेद् वेश्मसु मङ्गलार्थी ॥

गृहद्रव्यममाणानि नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥

अथ शयनासनलक्षणं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामः शयनासनलक्षणम् ।

शुभाशुभपरिज्ञानं येन सन्यक् प्रजायते ॥ १ ॥

मन्त्रे मुहूर्ते पुण्यस्थे नीतरश्मौ शुभेऽहनि ।

सम्पूज्य देवताः सम्यक् कर्माग्भं समाचरेत् ॥ २ ॥

ब्रह्मान्नं प्रणम्यन्ते वन्दनस्तिनिशोर्जुनः ।

निन्दकः मांसभक्षः च शिरीषामनधन्वनाः ॥ ३ ॥

सविद्वेदनायाः स्यन्दनोक्तौ मयवकी ।

॥ ४ ॥

पुनः पुनः ये नन्द्या ब्रह्मरोण्यादि निन्दिताः ।

॥ ५ ॥

सर्वज्ञः सर्वशक्तिः सर्वशक्तिः सर्वशक्तिः ।

सप्तमं पदा दाय गद्यनायकदेवरे ॥ ६ ॥

अतिशयं महात्मने विविधान्यासः प्रवेत् ।

इत्युक्तं तर्हि इति शब्दोऽत्राभिप्रेयते ।

सुखदुःखद्वयमुत्तरे मन्त्राः प्रोक्तव्ये ।

इति श्रीमद्भगवद्गीतायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ ८ ॥

शयनासनलक्षणं नामकोनविंशोऽध्यायः ।

कर्माङ्गुलं समुद्दिष्टं चितुर्परष्टभिर्यवैः ।

अष्टोत्तरशतं तेषां शय्या ज्येष्ठा महीभुजाम् ॥ ९ ॥

मध्या महीभुजां शय्या शतं स्याच्चतुस्तरम् ।

शतं कनीयसी प्रोक्ता शृषाणां विजपावहा ॥ १० ॥

नवतिर्नृपपुत्रस्य मन्त्रिणः सा पङ्क्तिर्ज्ञेता ।

द्वादशोना बलपतेस्त्रिपदकोना पुरोधसः ॥ ११ ॥

आयामार्धेन विस्तारं सर्वं शय्यासु कल्पयेत् ।

यद्वा निजाष्टभागेन पदभागेनाथवाधिकम् ॥ १२ ॥

विप्राणां शस्यते शय्या दैर्घ्येणाङ्गुलसप्ततिः ।

द्वाभ्यां द्वाभ्यामङ्गुलाभ्यां हीना स्याच्छेषवर्णिनाम् ॥ १३ ॥

वाहल्यमुत्पलस्य स्यादुत्तमस्याङ्गुलत्रयम् ।

अङ्गुलद्वितयं सार्धं मध्यस्य द्वे कनीयसः ॥ १४ ॥

वाहल्यमीशादण्डस्य कुर्यादुत्पलसम्मिताम् ।

सार्धं सपादं सत्र्यंशं तस्य विस्तारमुत्पलात् ॥ १५ ॥

विस्तारार्धेन शय्यायाः स कुप्यस्य विधीयते ।

तत्पादस्योद(यो?)यौ मध्यहीनौ द्विचतुस्त्रिंशता ॥ १६ ॥

अर्धेन मध्यविस्तारान्मध्ये वाहल्यमिष्यते ।

त्रिभागहीनेमिच्छन्ति पादोर्ध्वमपि केचन ॥ १७ ॥

स्थौल्येन पादोऽथः त्रीर्षादुत्पलेन समो भवेत् ।

मध्ये सपादः सार्धं तले वृद्धिः क्रमेण सा ॥ १८ ॥

पदभागोऽस्याधिको यद्वा मध्ये त्र्यंशाधिकस्तले ।

तत्कुप्यमुत्पलत्र्यंशो भूत्वा तस्यार्धमग्रतः ॥ १९ ॥

वन्तोधतुल्यां विस्तारः कायो वा मदङ्गुलाधिकः ।

सपत्रकलिकापत्रपुटग्रामविभूषितः ॥ २० ॥

कुर्यात् पदभिणाग्राणि शय्यादानि समन्ततः ।

ऊर्ध्वाग्रा निविन्ताः पादाः ग्रामिनो वृद्धिहेतवः ॥ २१ ॥

ध्रुवद्रव्यना शय्या विधद्रव्या न शयने ।

एषदार्क मर्जमग्नि द्विदार्कभयमात्रेण ॥ २२ ॥

त्रिदार्कपटितायां तु स्वाग्निना नियतां ययः ।

शय्यायां शयने गम्पान् तम्पान् तां परिवर्जयेत् ॥ २३ ॥

मूलमग्रेण संयुक्तमगम्यं विगर्हितम् ।

मूले मूलेन वा विदमेकाग्रं द्वे च दार्क्या ॥ २४ ॥

मध्ये धनो मृग्युक्तग्विभागे व्याधिकारकः ।

संभावदधतुर्भागे गिर्युक्तो द्रव्यहानिहन् ॥ २५ ॥

निर्दोषाग्रे पर्यङ्के पापस्त्रयो न दृश्यते ।

ग्रन्थिकोटखन्तु कृपां तस्मात्त शयनासनम् ॥ २६ ॥

आसनं शयनीयं च ग्रन्थिकोटखन्तिनम् ।

बहुपुत्रकरं मातुर्धर्मकामार्थसाधनेम् ॥ २७ ॥

आरोहणे प्रचलति शयने कम्पते तथा ।

विदेशयानकलहो ते क्रमेण प्रयच्छतः ॥ २८ ॥

सुश्रुष्टां तामतः कुर्यान्निर्दोषां वर्णशालिनीम् ।

दृढां स्थिरां च स्थपतिः पत्युः कामविद्वद्वय ॥ २९ ॥

निष्कुटं कोलदृक् क्रोडनयनं वत्सनाभकम् ।

कालकं बन्धकं चेति छिद्रसंक्षेप ईरितः ॥ ३० ॥

घटवत् सुपिरं मध्ये सङ्कटास्यं च निष्कुटम् ।

कोलाक्षं नीडमिच्छन्ति मापनिष्पावमात्रकम् ॥ ३१ ॥

अध्यर्धपर्वदीर्घं च विवर्णं विषमं तथा ।

तदिह क्रोडनयनं छिद्रमाहुर्महर्षयः ॥ ३२ ॥

भिन्नं पर्वमितं वामावर्तं स्याद् वत्सनाभकम् ।

कालकं कृष्णकान्तिं स्याद् विनिर्भिन्नं तु बन्धकम् ॥ ३३ ॥

छिद्रं दारुसवर्णं यत् तथो शुभकरं तथा ।

निष्कुटेऽर्थक्षयः कोललोचने कुलविद्रवः ॥ ३४ ॥

शस्त्राद् भीः क्रोडनयने वत्सनाभे रुजो भयम् ।
 कालके बन्धकारुषे च कीटविद्धे च नो शुभम् ॥ ३५ ॥
 सर्वत्र प्रचुरग्रन्थि दारुं सर्वमनिष्टदम् ।
 शय्यार्थं कथितैः क्लृप्तं दारुभिः शस्तमासनम् ॥ ३६ ॥
 उपवेशसुखं मानं प्रशस्ताय प्रकल्पितम् ।
 पुष्करः सूदहस्तश्च वृत्तोऽङ्गुलचतुष्टयात् ॥ ३७ ॥
 आरभ्य विस्तरात् कार्यस्तावद् यावन्नवाङ्गुलम् ।
 पुष्करव्यासतो दण्डस्तस्य कार्यश्चतुर्गुणः ॥ ३८ ॥
 फलकः पुष्करार्धेन तत्तुल्यश्चास्य भूलकः ।
 स्थूलः स्याच्चतुरंशेन दण्डपुष्करविस्तरात् ॥ ३९ ॥
 स्वातं च पुष्करस्यान्तस्तावद् गाम्भीर्यमिष्यते ।
 मशस्तसारदारुत्थः कर्तव्योऽस्य प्रयोजनम् (?) ॥ ४० ॥
 परिवेषणमन्यच्च पच्यमानानैघटकम् (?) ।
 कार्यः कङ्कतकः श्लक्ष्णः प्रशस्तमृदुदारुजः ॥ ४१ ॥
 आरभ्य दैर्घ्येणाष्टभ्यः स्याद् यावद् द्वादशाङ्गुलम् ।
 सार्धाङ्गुलं चतुर्भागे विस्तारेण च दैर्घ्यतः ॥ ४२ ॥
 मध्ये च तस्य बाह्व्यं विस्ताराष्टांशतो भवेत् ।
 एकतः स्थूलविस्तारा भवेद्युस्तस्य दन्तकाः ॥ ४३ ॥
 अन्यतस्तु घनाः सूक्ष्मास्तीक्ष्णाः कार्यास्तथाग्रतः ।
 मध्ये त्रिभागमुत्तुज्य दन्तका भागयोर्द्वयोः ॥ ४४ ॥
 त्रिभिर्भागे दृते तेषां न शेषस्तान् विवर्जयेत् (?) ।
 गजदन्तमयः श्रेष्ठस्तथा शाखोदवृक्षजः ॥ ४५ ॥
 मध्यमो दारुभिः श्रेष्ठैर्जघन्योऽसारदारुजः ।
 रूपकैः स्वास्तिकाद्यैर्वा स मध्ये स्यादलङ्कृतः ॥ ४६ ॥
 यूकाद्यपनये केशविवेके चोपयुज्यते ।
 अङ्गुलेनाधिके पादात् कार्ये दैर्घ्येण पादुके ॥ ४७ ॥

श्रेष्ठैकद्रव्यजा शय्या मिथद्रव्या न शस्यते ।

एकदारुं भशंसन्ति द्विदारुर्भयमावहेत् ॥ २२ ॥

त्रिदारुघटितायां तु स्वाभिनो नियतो वधः ।

शय्यायां जायते यस्मात् तस्मात् तां परिवर्जयेत् ॥ २३ ॥

मूलमग्रेण संयुक्तमपसव्यं विगर्हितम् ।

मूलं मूलेन वा विद्धमेकाग्रे द्वे च दारुणी ॥ २४ ॥

मध्ये व्रणो मृत्युकरस्त्रिभागे व्याधिकारकः ।

क्लेशावहश्चतुर्भागे शिरस्थो द्रव्यहानिकृत् ॥ २५ ॥

निर्दोषर्गात्रे पर्यङ्के पापस्वप्नो न दृश्यते ।

ग्रन्थिकोटरवत् कुर्यात् तस्मान्न शयनासनम् ॥ २६ ॥

आसनं शयनीयं च ग्रन्थिकोटरवर्जितम् ।

बहुपुत्रकरं प्राहुर्धर्मकामार्थसाधनम् ॥ २७ ॥

आरोहणे प्रचलति शयने कम्पते तथा ।

विदेशयानकलहौ ते क्रमेण प्रयच्छतः ॥ २८ ॥

मुष्मिष्ठां तामतः कुर्यान्निर्दोषां वर्णशालिनीम् ।

दृढां स्थिरां च स्थपतिः पत्युः कामविद्वद्वये ॥ २९ ॥

निष्कुटं कोलहक् क्रोडनयनं वत्सनाभकम् ।

कालकं बन्धकं चेति छिद्रसंक्षेप ईरितः ॥ ३० ॥

घटवत् सुषिरं मध्ये सङ्कटास्यं च निष्कुटम् ।

कोलाक्षं नीडमिच्छन्ति मापनिष्पावमात्रकम् ॥ ३१ ॥

अध्यर्धपर्वदीर्घं च विवर्णं विषमं तथा ।

तदिह क्रोडनयनं छिद्रमाहुर्महर्षयः ॥ ३२ ॥

भिन्नं पर्वमिदं शयावर्तं स्याद् वत्सनाभकम् ।

कालकं कृष्णकान्तिं स्याद् विनिर्भिन्नं तु बन्धकम् ॥ ३३ ॥

छिद्रं दारुसवर्णं यत् तेषां शुभकरं तथा ।

निष्कुटेऽर्धभयः कोललोचने कुलविद्वद्वयः ॥ ३४ ॥

शस्त्राद् भीः क्रोडनयने वत्सनामे रुजो भयम् ।
 कालके बन्धकारुये च कीदविद्धे च नो शुभम् ॥ ३५ ॥
 सर्वत्र प्रचुरग्रन्थि दारु सर्वमनिष्टदम् ।
 शय्यार्थे कथितैः क्लृप्तं दारुभिः शस्तमासनम् ॥ ३६ ॥
 उपवेशसुखं मानं प्रशस्ताय प्रकल्पितम् ।
 पुष्करः मृदहस्तश्च दृत्तोऽङ्गुलचतुष्टयान् ॥ ३७ ॥
 आरभ्य विस्तरात् कार्यस्तावद् यावन्नवाङ्गुलम् ।
 पुष्करव्यासतो दण्डस्तस्य कार्यश्चतुर्गुणः ॥ ३८ ॥
 फलकः पुष्करार्धेन तत्तुल्यश्चास्य भूलकः ।
 स्थूलः स्वाचतुरंशेन दण्डपुष्करविस्तरात् ॥ ३९ ॥
 स्वातं च पुष्करस्यान्तस्तावद् गाम्भीर्यमिष्यते ।
 प्रशस्तसारदारुत्थः कर्तव्योऽस्य प्रयोजनम् (?) ॥ ४० ॥
 परिवेषणमन्यच्च पच्यमानानेघट्टकम् (?) ।
 कार्यः कङ्कतकः शृङ्गः प्रशस्तमृदुदारुजः ॥ ४१ ॥
 आरभ्य दैर्घ्येणाष्टम्यः स्याद् यावद् द्वादशाङ्गुलम् ।
 सार्धाङ्गुलं चतुर्भागं विस्तारेण च दैर्घ्यतः ॥ ४२ ॥
 मध्ये च तस्य ब्राह्म्यं विस्ताराष्टांशतो भवेत् ।
 एकतः स्थूलविस्तारा भवेत्तुस्तस्य दन्तकाः ॥ ४३ ॥
 अन्यतस्तु घनाः मृत्मास्तीक्ष्णाः कार्यास्तथाग्रतः ।
 मध्ये त्रिभागमुच्छ्रज्य दन्तका भागयोर्द्वयोः ॥ ४४ ॥
 त्रिभिर्मणि हृते तेषां न शेषस्तान् विवर्जयेत् (?) ।
 गजदन्तमयः श्रेष्ठस्तथा शाखोदृक्षजः ॥ ४५ ॥
 मध्यमो दारुभिः श्रेष्ठैर्जघन्योऽसारदारुजः ।
 रूपकैः स्रस्तिर्साधवी म मध्ये स्यादलङ्कृतः ॥ ४६ ॥
 यूकाद्यपनये केनचित्केन चोपयुज्यते ।
 अद्गुणेनाधिकं पादान् कार्ये दैर्घ्येण पादकं ॥ ४७ ॥

अयमेव विधिः कार्यो गुण्डरेखाप्रसिद्धये ।
 श्रीवत्सस्यापि मध्ये स्यात् स्तम्भाद्यं मुक्तकोणवत् ॥ ४४ ॥
 सार्धं भागं परित्यज्य भागवितयविस्तृतम् ।
 कर्णप्राग्ग्रीवमेतस्य भागेन च विनिर्गतम् ॥ ४५ ॥
 भद्रं तस्यापि कर्तव्यं भागविस्तारनिर्गमम् ।
 मुक्तकोणवदस्यापि मध्यभद्रं विधीयते ॥ ४६ ॥

अयं विधिः समग्रामु दिक्षु शेषं तु पूर्ववत् ।
 प्रतिभद्रं धरास्त्रिंशद् भवन्त्यस्य दृढाः शुभाः ॥ ४७ ॥
 शतं विंशमिदं (सर्व)धराणामिह कीर्तितम् ।
 एवं समस्तस्तम्भानां चतुःपष्टं शतद्वयम् ॥ ४८ ॥
 सर्वतोभद्रसंज्ञस्य लक्ष्मेदानीं प्रचक्ष्महे ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्दशविभाजिते ॥ ४९ ॥

भागिकः स्याच्चतुष्कोऽस्य चतुःस्तम्भविभूषितः ।
 स्तम्भैर्द्वादशभिर्भुजतः प्रथमः स्यादलिन्दकः ॥ ५० ॥
 स्तम्भविंशतिसंयुक्तो द्वितीयः स्यादलिन्दकः ।
 स्यादष्टाविंशतिस्तम्भस्तृतीयः स्या(प्य)दलिन्दकः ॥ ५१ ॥
 पद्त्रिंशता चतुर्थः स्यादलिन्दो भूषितो धरैः ।
 पञ्चमः स्याच्चतुश्चत्वारिंशता भूषितो धरैः ॥ ५२ ॥

द्वापञ्चाशद्धरः षष्ठः सर्वेऽप्येतेऽस्य भागिकाः ।
 भागार्धं शस्यते भित्तिः सर्वतः सुदृढा घना ॥ ५३ ॥
 सार्धभागं परित्यज्य भागवितयविस्तृतः ।
 कर्णप्राग्ग्रीवकथं स्याद् भागमेकं च निर्गमः ॥ ५४ ॥
 भद्रमस्यापि कर्तव्यं भागनिर्गमविस्तृतम् ।
 मध्ये भद्रं विधातव्यं भागद्वयविनिर्गतम् ॥ ५५ ॥

भद्रं मध्ये स्याद् भागवितयविस्तृतम् ।
 तदन्तर्भागनिर्गतम् ॥ ५६ ॥

भागविस्तारसंयुक्तं भद्रमन्यत् प्रकल्पयेत् ।
 दिक्षु सर्वास्वयं प्रोक्तो विधिर्भद्रप्रकल्पने ॥ ५७ ॥
 स्तम्भानामस्य कर्तव्यं मध्ये पण्णवतं शतम् ।
 भद्रेष्वेपु च सर्वेषु भवेत् पण्यधिकं शतम् ॥ ५८ ॥
 समेन प्रविभागेन स्तम्भानामेकसङ्ख्यया ।
 इत्थं समस्तस्तम्भानां पट्पञ्चाशं शतत्रयम् ॥ ५९ ॥
 किन्तु जङ्घा भवेदस्य भूमिकात्रितयोन्मिता ।
 शत्रुमर्दनसंज्ञस्य धाम्नो लक्ष्माथ कथ्यते ॥ ६० ॥
 पृथ्वीजयसमं मध्ये भित्तिश्चापि तथाविधा ।
 सार्धं भागं परित्यज्य भागेनायतविस्तृतम् ॥ ६१ ॥
 भद्रं विदध्यात् तन्मध्ये भागत्रितयविस्तृतम् ।
 भद्रमेवं विधातव्यं भागत्रितयनिर्गतम् ॥ ६२ ॥
 पार्श्वयोर्भागिकं भद्रमाय(त्पां?त्पा) विस्तरेण च ।
 भागत्रितयविस्तारं भागेनैकेन निर्गमम् ॥ ६३ ॥
 मध्यभद्रं ततोऽपि स्याद् भागेनायतविस्तृतम् ।
 क्रमोऽयं दिक्षु सर्वासु विधातव्योऽस्य सिद्धये ॥ ६४ ॥
 ऊर्ध्वं पृथ्वीजयस्येव कार्पमस्यापरं पुनः ।
 प्रतिभद्रं चतुश्चत्वारिंशस्तम्भसमन्वितम् ॥ ६५ ॥
 मध्ये स्तम्भशतं चास्य विधेयं सुदृढं शुभम् ।
 पट्सप्तविंशस्तम्भशतद्वयमस्य भवेदिति ॥ ६६ ॥
 पश्चानामपि चनेषां दस्ताष्टशतमुत्तमम् ।
 मानमुत्सेधविस्तारात् कर्तव्यं श्रियमिच्छता ॥ ६७ ॥
 मध्यमाधमयोर्मानं कीर्तितं पृथिवीजये ।
 रात्रः प्रीटार्यमन्यथ कथ्यते शृङ्गयकम् ॥ ६८ ॥
 शोणीविभूषणं त्वार्धं पृथिवीनिन्दकं तमम् ।
 पृथग्वर्धने धान्यशरीरिण्यसं शत्रोऽपि च ॥ ६९ ॥

लक्ष्मीविलाससंज्ञं च पञ्चमं परिकीर्तितम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागैर्विभाजिते ॥ ७० ॥
 चतुष्को भागविस्तीर्णो मध्ये कार्यश्चतुर्थरः ।
 बहिश्च भागिकोऽलिन्दस्तदन्तेऽश्रयायताः ॥ ७१ ॥
 कर्णप्रासादकाः कार्या भागत्रितयविस्तृताः ।
 तेषां पद्दारुकं मध्ये भित्तिर्भागार्धसम्मिता ॥ ७२ ॥
 तद्वहिर्भागनिष्क्रान्तो भद्रे भागं च विस्तृतः ।
 प्राग्ग्रीवत्रयसंयुक्तो भागिकालिन्दवेष्टितः ॥ ७३ ॥
 अर्धभागिकभित्त्या च चतुष्को वेष्टितो भवेत् ।
 प्रासादोऽयं मनोहारी भवेदवनिशेखरः ॥ ७४ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भागद्वादशभाजिते ।
 चतुष्को भागिको मध्ये बाह्यालिन्दौ च भागिकौ ॥ ७५ ॥
 नवकोष्ठांश्च कर्णेषु प्रासादान् विनिवेशयेत् ।
 पद्दारुकं च कर्तव्यं तेषामन्तरसंश्रयम् ॥ ७६ ॥
 ततोऽर्धभागिकी भित्तिः कर्तव्या सर्वतो बहिः ।
 भद्रे भागायतो भागविनिष्क्रान्तश्चतुर्दिशम् ॥ ७७ ॥
 चतुष्को भागिकोऽलिन्दवेष्टितश्च विधीयते ।
 अस्य भद्रत्रयं कार्यं भागविस्तारनिर्गमम् ॥ ७८ ॥
 अर्धभागिकभित्त्या च वेष्टितं तद् विधीयते ।
 कर्णैकं (संस्थ)विस्तीर्णं द्वे भद्रे भागनिर्गते ॥ ७९ ॥
 प्रासादमेवं भुवनतिलकं परिचक्षते ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भागद्वादशभाजिते ॥ ८० ॥
 चतुष्को भागिको मध्ये चतुःस्तम्भो विधीयते ।
 तद्वहिर्भागिकोऽलिन्दो द्वितीयोऽपि च भागिकः ॥ ८१ ॥
 नवकोष्ठांश्च कर्णेषु प्रासादान् विनिवेशयेत् ।
 च कर्तव्यं तेषामन्तरसंश्रयम् ॥ ८२ ॥

ततोऽर्धभागिकी भित्तिः कर्तव्या सर्वतो वहिः ।
 भद्रे भागायतो भद्रविनिष्क्रान्तश्चतुर्धरः ॥ ८३ ॥
 चतुर्ध्रौ भागिकालिन्दद्वयेन परिवेष्टितः ।
 त्रिभागविस्तृतं भद्रं तद्वदिर्भागनिर्गतम् ॥ ८४ ॥
 भागिकं प्रतिभद्रं च कुर्यादुभयतः समम् ।
 भागार्धं बाह्यतो भित्तिर्मद्रस्य परितो भवेत् ॥ ८५ ॥
 त्रिधिरेष विधातव्यो दिक्ष्वेवं चतसृष्वपि ।
 विलासस्तवको नाम प्रासादोऽयं प्रकीर्तितः ॥ ८६ ॥
 कर्णप्राग्ग्रीवकौ द्वौ द्वौ शालाप्राग्ग्रीवकौ यदा ।
 स्यातामस्य तदा कीर्त्तिपताकः परिकीर्तितः ॥ ८७ ॥
 अस्यैव पीठे निर्गुक्तशालाभिः परितोऽष्टभिः ।
 अन्योन्यशालासंबद्धे यदासावेव दीयते ॥ ८८ ॥
 कर्णप्रासादकोपेतः कोणैः शालोज्झितैर्युतः ।
 प्रासादसुन्दरो ज्ञेयस्तदा भुवनमण्डनः ॥ ८९ ॥
 एते प्रोक्तोस्तलच्छन्दा जङ्घासंवरणादिकम् ।
 भूमिमानादिकं यच्च तद् पृथ्वीजयवद् भवेत् ॥ ९० ॥
 इदानीं कथ्यते लक्ष्म क्षोणीभूषणवेष्मनः ।
 पञ्चपञ्चाशता हस्तैः कल्पिते चतुरश्रके ॥ ९१ ॥
 विभक्तं चाष्टभिर्भागैश्चतुर्ध्रौ भागिकः स्मृतः ।
 चतुर्धिरन्वितः स्तम्भैरलिन्दश्चास्य भागिकः ॥ ९२ ॥
 युक्तो द्वादशभिः स्तम्भैर्विशल्या च द्वितीयकः ।
 स्यादष्टाविंशतिधरस्तूर्तीयथाप्यलिन्दकः ॥ ९३ ॥
 भित्तरप्यर्धभागेन सार्धं भागं विमुच्यते ।
 भागपञ्चकविम्बीणं भद्रं भागेन निर्गतम् ॥ ९४ ॥
 तन्मध्यमद्रमन्यश्च भागत्रितयविस्तृतम् ।
 भागेन निर्गतं कार्ष्णं मद्रमन्यद् ततोऽपि च ॥ ९५ ॥

लक्ष्मीविलाससंज्ञं च पञ्चमं परिकीर्त्तितं
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागैर्विभाजिते
 चतुष्को भागविस्तीर्णो मध्ये कार्यः
 वहिश्च भागिकोऽलिन्दस्तदन्तैः शश्व
 कर्णप्रासादकाः कार्या भागत्रिता
 तेषां पद्दारुकं मध्ये भित्तिर्भागः
 तद्वहिर्भागनिष्क्रान्तो भद्रे भागः
 प्राग्ग्रीवत्रयसंयुक्तो भागिकादि
 अर्धभागिकभित्त्या च चतुष्को
 प्रासादोऽयं मनोहारी भवेत्
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भागद्वयं
 चतुष्को भागिको मध्ये
 नवकोष्ठांश्च कर्णेषु प्रा
 पद्दारुकं च कर्तव्यं
 ततोऽर्धभागिकी
 भद्रे भागायतो
 चतुष्को भागः
 अस्य मध्य
 अर्धभागः

प्रतापवर्धनस्याथ लक्ष्म साम्मतमुच्यते ।
 पञ्चविंशतिहस्ताङ्गे सार्धभागत्रयाङ्किते ॥ १०९ ॥
 मध्ये चतुष्को भागेन चतुर्भिः सम्भृतो धरैः ।
 अलिन्दो भागिकथास्य स्तम्भद्वादशकान्वितः ॥ ११० ॥
 पादिका भित्तिरेतस्य भद्रं चास्य प्रकल्पयेत् ।
 भागनिर्गमविस्तारं चतुःस्तम्भविभूषितम् ॥ १११ ॥
 विधिरेष समग्रासु दिक्षु कार्योऽस्य सिद्धये ।
 स्तम्भैर्द्वात्रिंशता युक्तो बहिरन्तरयं भवेत् ॥ ११२ ॥
 धराणां चैव सर्वेषां चतुःषष्टिः प्रकल्पना ।
 अर्थं लक्ष्मीविलासस्य सम्यग् लक्ष्माधुनोच्यते ॥ ११३ ॥
 प्रतापवर्धनस्येव मध्यमस्य प्रकल्पयेत् ।
 प्रतापवर्धनसमं सर्वतोऽप्येतदीरितम् ॥ ११४ ॥
 किन्त्वस्य पार्श्वभद्राणि भद्राणामेव कारयेत् ।
 कोणेष्वपि च भद्राणि पार्श्वयोरुभयोस्तथा ॥ ११५ ॥
 भागं(स्यैव) निर्गमोऽप्येषां विशेषोऽस्मादयं मतः ।
 भद्रमस्य दशस्तम्भैर्मध्यं षोडशभिर्धरैः ॥ ११६ ॥
 चतुर्द्वारं भवेदेतदिच्छया क्षणमध्यगम् ।
 द्वारमन्यद् विधातव्यं स्वपदे स्यात् सुशोभितम् ॥ ११७ ॥
 भूमिभिः सार्धपृष्ठीभिर्विधेयः क्षोणिभूषणः ।
 अर्धाष्टमीभिश्च भवेत् पृथ्वीतिलकसंज्ञकः ॥ ११८ ॥
 स्यात् सार्धपञ्चमीभिस्तु श्रीनिवासोऽत्र भूमिभिः ।
 लक्ष्मीविलाससंज्ञोऽर्धपञ्चमीभिर्विधीयते ॥ ११९ ॥
 प्रतापवर्धनाख्योऽर्धचतुर्थीभिर्विधीयते ।
 राज्ञां पृथ्वीजयादीनि निवासभवनानि च ॥ १२० ॥
 क्षोणीविभूषणादीनि विलासभवनानि च ।
 यान्यक्तानि निवासाय विलासाय च भवन्ताम् ॥ १२१ ॥

तेषां पृथ्वीजपादीनां द्वास्मानमगोच्यते ।

चतुःपञ्चाशदंशो गो विस्तृतः मकरत्रयः ॥ १२२ ॥

त द्वारस्थोदयः प्रोक्तस्तदर्थेनास्य विस्तृतिः ।

स्तोदयस्य त्रिभागेन पिण्डः स्तम्भेषु शस्यते ॥ १२३ ॥

स्यात् सप्तविंशतिनेमः सपादः सन्ननुष्कारः ।

ग्रहभागो भवेद् भूमिः प्रथमा सप्तवंशनाम् ॥ १२४ ॥

भूच्छ्राये नवधा भक्ते तदंशकचतुष्टयम् ।

निर्गमश्रायकस्यांशद्वयं पादोनमुच्छ्रयः ॥ १२५ ॥

तथान्तरावणी कार्या छाद्यकोच्छ्रायनिर्गता ।

हीरप्रहणपिण्डार्धवाहल्या सा प्रशस्यते ॥ १२६ ॥

तस्याः स्वमेव बाहल्यं पादोनं विस्तृतिः स्मृता ।

अन्तरावणिकातुल्यो मदलाया विनिर्गमः ॥ १२७ ॥

स्वनिर्गमान् तथा चास्याः सपादः स्यात् समुच्छ्रयः ।

भूम्युच्छ्रयनवांशस्य पादोऽस्याः पिण्डमिष्यते ॥ १२८ ॥

भूनवांशस्त्रिभागेनो मदलायाश्च विस्तृतिः ।

* लुमामूलस्य स्तम्भार्धं विस्तारः परिकीर्तितः ॥ १२९ ॥

तत्त्र्यंशादग्रविस्तीर्णा मूले साष्टांशयुग् भवेत् ।

तुम्बिनी लम्बिनी हेलो शान्ता कोला मनोरमा ॥ १३० ॥

आध्माता चेत्यमूः प्रोक्ता लुमाः सप्त मनीषिभिः ।

फज्जुः सा लम्बिनी तासामाध्माता कर्णगा स्मृता । १३१ ॥

अन्तराले क्रमेण स्युः पञ्चान्याः परिकीर्तिताः ।

स्तम्भे निदध्यान्मदलां छाद्यं धर्तुं द्वां शुभाम् ॥ १३२ ॥

स्तम्भाभावे पुनर्न्यस्येत् कुड्यपट्टेऽपि तां सुधीः ।

सप्त पञ्चाथवा तिस्रो मल्लच्छाद्ये लुमाः स्मृताः ॥ १३३ ॥

फोणेऽप्येता इमाभ्योऽन्याः कर्तव्याः प्राञ्जलाः समाः ।

छाद्ये कर्णात् कचित् कार्या मकराननभूषिताः ॥ १३४ ॥

१. 'मतः' ख, पाठः । २. 'स्यां', ३. 'च' ख, पाठः ।

* 'शग' इति शिल्पशास्त्रे प्रसिद्धिः ।

तेऽपि विद्याधरोपेताः कचित् सगजतुण्डिकाः ।
 सकुम्भिकस्य स्तम्भस्य मविभज्योदयं त्रिधा ॥ १३५ ॥
 तत्र भागद्वयं कुर्याद् भागानर्धचतुर्थकान् ।
 तत्र पादोनभागेन राजितासनकं भवेत् ॥ १३६ ॥
 ततः सोल्ललका वेदी साङ्घ्रिभागा विधीयते ।
 कूटागारसमांशार्थं कार्योऽज्रासनपट्टकः ॥ १३७ ॥
 स स्यादभी(ष्टोऽष्ट)विस्तारो भागोऽर्धं मत्तवारणम् ।
 स्वोदयस्य त्रिभागेन तिर्यक् कार्योऽस्य निर्गमः ॥ १३८ ॥
 रूपकैः करणायाभिः(?)सुपत्रैरपि शोभितम् ।
 वेदिकादिकमप्यस्य रूपपत्राचितं शुभम् ॥ १३९ ॥
 आयसीभिः शलाकाभिः कीलकैश्च दृढीकृतम् ।

एतानि पञ्चदशराजनिवेशनानि
 पृथ्वीजयप्रभृति यानि निरूपितानि ।
 यो लक्षणेन सहितं परिमाणमेषां
 जानाति तस्य नृपतिः परितोपमेति ॥ १४०^१/_२ ॥

इति महाराजाधिराजभीभोजदेवविरचिते समराज्जनयूत्रधारापरनाम्नि बाबुशास्त्रे
 राजशृङ्गं नाम त्रिंशोऽध्यायः ।

अथ यन्त्रविधानं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।

भ्राम्पदिनेशशशिमण्डलचक्रश(त्संस्त)-
 मेतज्जगत्त्रितययन्त्रमलक्ष्यमध्यम् ।
 भूतानि बीजमखिलान्यपि सम्पकल्प्य
 यः सन्ततं भ्रमयति स्मरन्निद् स वोऽज्यात् ॥ १ ॥

यन्त्राध्यायमथ प्रमो यथावत् प्रकमागतम् ।
 धर्मार्थकाममोक्षाणां यदेकमिह कारणम् ॥ २ ॥

यदृच्छया प्रवृत्तानि भूतानि संन नर्म्मना ।
 नियम्यास्मिन् नयति यत् नद गन्धमिति कीर्तितम् ॥ ३ ॥
 स्वरसेन प्रवृत्तानि भूतानि स्वमनीषया ।
 कृतं यस्माद् यमयति नद्रा गन्धमिति स्मृतम् ॥ ४ ॥
 तस्य धीर्जं चतुर्धा म्यान् क्षितिरापांजन्योज्ज्वलः ।
 आश्रयत्येन चैतेषां विषदप्युपपुज्यते ॥ ५ ॥
 भिन्नः गृत्तं (कैर्य)रुक्तम्ने न सम्यक् न जानते ।
 § प्रकृत्या पार्थिवः मृत(स्ताश्च)यात् + तत्र क्रिया भवेत् ॥ ६ ॥
 पार्थिवत्वादयमतो न कदाचिद् विभिद्यते ।
 द्रव्यत्वादभिन्नत्वं हि यद्यस्य परिकल्प्यते ॥ ७ ॥
 तदा विरोधो नैवास्य पावकेनोपपद्यते ।
 गन्धाद् बह्वेर्विरोधाच्च स्थिता पार्थिवता बलात् ॥ ८ ॥
 आत्मैव बीजं सर्वेषां प्रत्येकमपराण्यपि ।
 एवं भेदा भवन्त्येषां भूयांसः सङ्करान्मिथः ॥ ९ ॥
 स्वयंवाहकमेकं स्यात् सकृत्त्रेयं तथापरम् ।
 अन्यदन्तरितं बाह्यं बाह्यमन्यत् त्वदूरतः ॥ १० ॥
 स्वयंवाह्यमिहोत्कृष्टं हीनं स्यादितरत् त्रयम् ।
 तेषु शंसन्ति दूरस्थमलक्ष्यं निकटस्थितम् ॥ ११ ॥
 य(द्यु?दु)त्पन्नमलक्ष्यं यदेकं बहुषु साधकम् ।
 तदन्यदपि शंसन्ति यस्माद् विस्मयकृद्गुणाम् ॥ १२ ॥
 एका स्वीया गतिश्चित्रे बाधेऽन्या बाह्यकाश्रिता ।
 अरघटाश्रिते कीटे दृश्यते द्वयमप्यदः ॥ १३ ॥
 इत्थं गतिद्वयवशाद् वैचित्र्यं कल्पयेत् स्वयम् ।
 अलक्षता विचित्रत्वं यस्माद् यन्त्रेषु शस्यते ॥ १४ ॥

१. 'ते' क. पाठः । २. 'ध' क. ग. पाठः । ३. 'य' ख. पाठः । ४. 'यस्य
 प्रापां च तत्र', ५. 'भवन्त्ये' क. पाठः । ६. '७. 'वा', ८. 'बहु' ख. ग. पाठः
 ९. 'ध' क. पाठः ।

§ 'प्रकृत्या स्वभावेन पार्थिवो भागः बहुलः' इति, † 'तत्र उदकतेजोवायूनां क्रिय
 कार्यं भवेत्' इति च दिव्यमस्ति ।

अन्यत् स्यादन्तरा(त्प्रेमि)यं द्वितीयं मध्यमं त्विदम् ।

द्वयत्रयादियोगेन चतुर्णामपि योगतः ॥ १५ ॥

अंशांशिभावाद् भूतानां सङ्ख्यैषामतिरिच्यते ।

यः सम्यगेतज्जानाति स पुमान् भवति प्रियः ॥ १६ ॥

प्रमदानां नृपाणां च मञ्जानां च मतस्य च ।

लाभं ख्यातिं च पूजां च यशो मानं धनानि च ॥ १७ ॥

प्राप्नोति किं किं न पुमान् य इदं वेत्ति तत्त्वतः ।

गृहमेकं विलासानामाश्चर्यस्य परं पदम् ॥ १८ ॥

रतेरावासभवनं विस्मयस्यैकमास्पदम् ।

यथावद् देवतादीनां रूपचेष्टादिदर्शनात् ॥ १९ ॥

तास्तुप्पन्त्यथ तत्तुष्टिः पूर्वधर्मः प्रकीर्तितः ।

नृपादितोपादर्थः स्यादर्थं कामः प्रतिष्ठितः ॥ २० ॥

वित्तवयादस्य निष्पत्तिर्मोक्षश्चास्मान्न दुर्लभः ।

पार्थिवं पार्थिवबीजैः पार्थिवं जलजन्मभिः ॥ २१ ॥

तदेव तेजोजनिर्तैस्तदेव मरुदुद्भवैः ।

आप्यमाप्यैस्तथा बीजरानैरानिर्लैरपि ॥ २२ ॥

वह्निर्जैश्च मरुज्जातैः पार्थिवैर्वारुणैरपि ।

मारुतं मारुतराप्यैः पार्थिवैरानिर्लैस्तथा ॥ २३ ॥

वह्निजातैऽपि बीजैः स्यात् सूतः सोऽपि च वा(ननि)ले ।

पार्थिवानां भवेद् बीजमाप्यानामपि वा(रणैरुणम्) ॥ २४ ॥

इति बीजानि सर्वेषां कीर्तितान्यखिलान्यपि ।

कुण्डल्यंकरणमुत्राणि भारगोलफषीडनम् ॥ २५ ॥

लम्बनं लम्बकारे च चक्राणि विविधान्यपि ।

अचस्ताम्रं च तारं च त्र्यु संवित्प्रमर्दने ॥ २६ ॥

काष्ठं च चर्म वस्त्रं च स्वर्प्रीनेषु प्रयुज्यते ।

उर्दकः कर्तरो याष्टिश्चक्रं भ्रमरकस्तथा ॥ २७ ॥

मृत्त्रावल्ली च नाराचः स्ववीजान्यपरिरे विदुः ।
 ताप उत्तेजनं स्तोभः शोभश्च जलरात्रजः ॥ २८ ॥
 एवमाद्यप्रिवीजानि पार्थिवस्य प्रचक्षते ।
 धारा च जलभारश्च पयसो भ्रमणं तथा ॥ २९ ॥
 एवमादीनि भूजस्य जलजानि प्रचक्षते ।
 यथोच्छ्रायो यथाधिक्यं यथा नीरन्ध्रतापि च ॥ ३० ॥
 अत्यन्तमूर्ध्वगामित्वं स्ववीजान्यपसस्तेषां ।
 मरुत् स्वभावजो गार्दग्रहकंश्च प्रतीप्सितः ॥ ३१ ॥
 दृष्ट्याद्यैर्वीजनाद्यैश्च गजकर्णादिभिः कृतः ।
 (छा?चा)णितो गालितश्चायं वीजं भवति भूमेवे ॥ ३२ ॥
 काष्ठं (भृ?कु)त्तिश्च लोहं च जलजे पार्थिवं भवेत् ।
 अन्यदम्भेर्स्तदप्यस्तु तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥ ३३ ॥
 वीजं स्वकीयं भवति यन्त्रेषु जलजन्मसु ।
 तापाद्यं पूर्वकथितं वह्निजं जलजे भवेत् ॥ ३४ ॥
 सङ्गृहीतश्च दत्तश्च पूरितः प्रतिनोदितः ।
 मरुद् वीजत्वमायाति यन्त्रेषु जलजन्मसु ॥ ३५ ॥
 वह्निजातेषु मृत्ताम्रलोहरूपमादि तद्ग्रहे ।
 पार्थिवं कथयन्तीह वीजं वीजविचक्षणाः ॥ ३६ ॥
 वह्नेर्वह्निर्भवेद् वीजमाप आपस्तथा भवेत् ।
 आद्यैर्दृष्ट्यादिभिः प्रोक्तैर्मरुद् गच्छति वीजताम् ॥ ३७ ॥
 मत्स्येपकं च जनकं मेरकं ग्राहकं तथा ।
 सङ्ग्राहकं च भूजातं वीजं स्यादनिलोद्भवैः ॥ ३८ ॥
 प्रेरणं चाभिघातश्च विवर्तो भ्रमणं तथा
 जलजं मारुतोत्थेषु वीजं स्यादिति सम्मतम् ॥ ३९ ॥
 सङ्गृहीतस्य तापाद्यैर्यानि पावकजन्मानि ।
 प्रकीर्तितानि तान्येव भवन्ति पवनोद्भवैः ॥ ४० ॥

प्रेरितः सङ्गृहीतश्च जनितश्च समीरणः ।
 आत्मनो धीजतां गच्छत्येवमन्यत् प्रकल्पयेत् ॥ ४१ ॥
 भूतमेकमिहोद्विक्तमन्यद्दीनं ततोऽधिकम् ।
 अन्यद्दीनतरं चान्यदेवंप्रायैर्विकल्पितैः ॥ ४२ ॥
 नाना भेदा भवन्त्येषां कस्तान् कात्स्न्येन वक्ष्यति ।
 निष्क्रिया भूः क्रिया त्वंशे शेषेषु सहजा त्रिषु ॥ ४३ ॥
 अतः प्रायेण सा ज्ञेया क्षितावेव प्रयव्रतः ।
 साध्यस्य रूपवशतः सन्निवेशो यतो भवेत् ॥ ४४ ॥
 यन्त्राणामाकृतिस्तेन निर्णेतुं नैव शक्यते ।
 यथावद्दीजसंयोगः सौश्रिष्ट्यं श्लक्ष्णतापि च ॥ ४५ ॥
 अलक्षता निर्वहणं लघुत्वं शब्दहीनता ।
 शब्दे साध्ये तदाधिक्यमशैथिल्यमगाढता ॥ ४६ ॥
 वहनीषु समस्तासु सौश्रिष्ट्यं चास्त्वलङ्घति ।
 यथाभीष्टार्थकारित्वं लयतालानुगामिता ॥ ४७ ॥
 इष्टकालेऽर्थदशित्वं पुनः सम्यक्त्वसंज्ञतिः ।
 अनुल्वणत्वं ताद्रूप्यं दाढ्यं ममृणता तथा ॥ ४८ ॥
 चिरकालसहत्वं च यन्त्रस्यैते गुणाः स्मृताः ।
 एकं बहूनि चलयेद् बहुभिश्चाल्यतेऽपरम् ॥ ४९ ॥
 सुश्रिष्टत्वमलक्षत्वं यन्त्राणां परमो गुणः ।
 अथ कर्माणि यन्त्राणां विचित्राणि यथाविधि ॥ ५० ॥
 नविस्तरान्नसङ्क्षेपात् साम्प्रतं संप्रचक्ष्महे ।
 कस्यचित् सा क्रिया साध्या कालः कस्यापि कस्यचित् ॥ ५१ ॥
 शब्दः कस्यापि चोच्छ्वायो रूपस्पर्शो च कस्यचित् ।
 क्रियास्तु कार्यस्य वशादनन्ताः परिकीर्तिताः ॥ ५२ ॥
 तिर्यगूर्ध्वमधः पृष्ठे पुरतः पार्श्वयोरपि ।
 गमनं सरणं पात इति भेदाः क्रियोद्भवाः ॥ ५३ ॥

कालो मृहर्नकाष्टार्धमिश्रो भेदस्नेकया ।
 शब्दो विनिघ्नः गुणदो गतिरुद भीषणस्तथा ॥ ५४ ॥
 उच्छ्रायस्तु जलस्य म्यान् क्वचिद् भूजेऽपि शस्यते ।
 गीतं नृत्यं च वाद्यं च पट्टो गंध एव च ॥ ५५ ॥
 वीणा च कांस्यतालश्च तुमिलश्च कट्टादि च ।
 यत्किञ्चिदन्यदप्यत्र यादित्रादि विभाव्यते ॥ ५६ ॥
 समस्तमपि तद् यन्त्राज्जायते कल्पनावशात् ।
 नृत्ये तु नाटकं चोद्धेस्ताण्डवं लास्यमेव च ॥ ५७ ॥
 राजमार्गश्च देशी च यन्त्रात् सर्वं प्रसिध्यति ।
 तथा जात्यनुगाथेष्टा विरुद्धा यास्तुं जातितः ॥ ५८ ॥
 ताः सर्वा अपि सिध्यन्ति सम्यग्यन्त्रस्य साधनात् ।
 भूचराणां गतिर्व्याप्ति भूमौ व्योमचराणाम् ॥ ५९ ॥
 चेष्टितान्यपि मर्त्यानां तथा भूमिस्पृशामिव ।
 जायन्ते यन्त्रनिर्माणाद् विविधानीप्सितानि च ॥ ६० ॥
 यथासुरा जिता देवैर्यथा निर्मथितोऽम्बुधिः ।
 हिरण्यकशिपुर्देवो नृसिंहेन हतो यथा ॥ ६१ ॥
 धावनं हस्तियुद्धं च गैजानामगडोऽपि च ।
 नानाप्रका(र?)रा या चेष्टा नानाधारागृहाणि च ॥ ६२ ॥
 दोलाकेल्यो विचित्राश्च तथा रतिगृहाणि च ।
 चित्रां से(न?)ना च कुट्टश्च स्वयंवाहकसेवकाः ॥ ६३ ॥
 सभाश्च विविधाकाराः सत्या मायाः प्रकल्पिताः ।
 एवंमायाणि चान्यानि यन्त्रात् सिध्यन्ति कल्पनात् ॥ ६४ ॥
 विधाय भूमिकाः पञ्च शय्यां त्वादिभुवि स्थिताः ।
 प्रतिग्रहरमत्यासु सर्पन्ती याति पञ्चमीम् ॥ ६५ ॥
 एवंमायाणि चित्राणि सम्यक् सिध्यन्ति यन्त्रतः ।
 क्रमेण त्रिशतावर्तं स्थाले दन्ता भ्रमन्त्यसौ ॥ ६६ ॥

तन्मध्ये पुत्रिका क्लृप्ता प्रति नाडिं प्रवेधयेत् ।
 बह्वेव दर्शनं तोये वह्निमध्याज्जलोद्गतिः ॥ ६७ ॥
 अवस्तुतोऽपि वस्तुत्वं वस्तुतोऽपि तथान्यथा ।
 निःश्वासेन वियद् याति श्वासेनायाति मेदिनीम् ॥ ६८ ॥
 क्षीरोदमध्यगा शय्या प्रतीष्टाधः कणाभृता ।
 गोलश्च सू(ति?चि)विहितः सूर्यादीनां प्रदक्षिणम् ॥ ६९ ॥
 परिभ्राम्यत्यहोरात्रं ग्रहाणां दर्शयन् गतिम् ।
 गजादिरूपे रथिकरूपतां गमितः पुमान् ॥ ७० ॥
 भ्रान्त्वा नाडिकया तस्याः पर्यन्ते हन्ति (भो?यो)जनम् ।
 दीपिकापुत्रिका क्लृप्ता क्षीणं क्षीणं प्रयच्छति ॥ ७१ ॥
 दीपे तैलं प्रवृत्त्यन्ती तालगत्या प्रदक्षिणम् ।
 यावत् प्रदीयते वारि तावत् पिबति सन्ततम् ॥ ७२ ॥
 यन्त्रेण कल्पितो हस्ती न तद् गच्छत् प्रतीयते ।
 शुकाद्याः पक्षिणः क्लृप्तास्ताळस्यानुगमान्मुहुः ॥ ७३ ॥
 जनस्य विस्मयकृतो वृत्त्यन्ति च पठन्ति च ।
 पुत्रिका वा गजेन्द्रो वा सुरगो मर्कटोऽपि वा ॥ ७४ ॥
 चलनैर्वर्तनैर्वृत्त्यन्तलेन हरते मनः ।
 येनैव चर्मना क्षेत्रं ध्रियते तेन तत्पयः ॥ ७५ ॥
 यात्यायाति पुनस्तद्गद् गर्तात् पुष्करिणीष्वपि ।
 फलके कानि (?) तिष्ठन्ति धावन्त्यनुमतानि च ॥ ७६ ॥
 घा(तां?तं) ददति बुध्यन्ते^१ निर्यान्त्यश्रमनावृतम् ।
 'वृत्त्यन्ति गायन्ति तथा वंशादीन् बादयन्ति च ॥ ७७ ॥
 निरुद्धमुक्तस्य वशान्मरुतो यन्त्रभङ्गिभिः ।
 'याधेष्टा दिव्यमानुष्यस्ता एवात्र न केवलम् ॥ ७८ ॥
 दुष्करं यद्यदन्यच्च तत्तद् यन्त्रात् प्रसिध्यति ।
 यन्त्राणां घटना नोक्ताः^२ गुप्त्यर्थं नाज्ञतां^३ यथा ॥ ७९ ॥

१. 'ति' क. पाठः । २. 'ते' ख. ग. पाठः । ३. 'मुच्यन्ती' ।
 ४. 'ने' क. पाठः ।

तत्र हेतुरयं प्रेयो व्यक्ता नैन फलमदाः ।

कथितान्यत्र यीजानि यन्त्राणां पटना न यन् ॥ ८० ॥

तस्माद् व्यक्तीकृतेष्वेव न स्यान् स्वार्थो न कौतुकम् ।

वस्तुतः कथितं सर्वं यीजानामिह कीर्तनान् ॥ ८१ ॥

अभ्यूषं स्वधिया प्राक्षिप्यन्त्राणां कर्म यद् यथा ।

यन्त्राणि यानि दृष्टानि कीर्तितान्यत्र तान्यपि ॥ ८२ ॥

नन्द्यानि यस्मात् तान्यातो विज्ञेयान्युपदेशतः ।

एतत् स्वयुद्धर्चवास्माभिः समग्रमपि कल्पितम् ॥ ८३ ॥

अग्रतश्च पुनर्मूमः कथितं यत् पुरातनैः ।

बीजं चतुर्विधमिह प्रवदन्ति यन्त्रे-

ष्वम्भोद्भिभूमिपवनैर्निहितैर्यथावत् ।

प्रत्येकतो बहुविधं हि विभागतः स्या-

न्मिश्रैर्गुणैः पुनरिदं गणनामपास्येत् ॥ ८४ ॥

किमेतस्मादन्यद् भवति भुवने चित्रमपरं

किमन्यद् वा तुष्ट्यै भवति किमु वा कौतुककरम् ।

किमन्यद् वा कीर्त्तैर्भवनमपरं कामसदनं

किमस्मात् पुण्यं वा किमिव च परीतापशमनम् ॥ ८५ ॥

एतेऽत्यर्थं प्रीतिदा बीजयोगाः संजायन्ते योजिताः सूत्रधारैः ।

भ्रान्त्या नान्यथिर्वृद्धं दारुवत्सं चक्रं दोलाद्यं पुनः पञ्चमं तत् ॥ ८६ ॥

पारम्पर्यं कौशलं सोपदेशं शास्त्राभ्यासो वास्तुकर्मोद्यमो धीः ।

सामग्रीयं निर्मला यस्य सोऽस्मिन्निन्त्राण्येवं वेत्ति यन्त्राणि कर्तुम् ॥ ८७ ॥

चित्रैर्युक्तं ये गुणैः पञ्चरूपं जानन्त्येनं यन्त्रशास्त्राधिकारम् ।

ये वा कृत्स्नं योजयन्तेऽत्र सम्यक् तेषां कीर्त्तिर्द्या भवं चादृशोति ॥ ८८ ॥

अङ्गुलेन मितमङ्गुलपादेनोच्छ्रितं द्विपुटकं तनुष्टम् ।

संविधेयमृजु मध्यमरन्ध्रं श्लिष्टसन्धि दृढताम्रमयं तत् ॥ ८९ ॥

दारवेषु विहगेषु तदन्तः क्षिप्तं मुद्रितसमीरवशेन ।

आतनोति विचलन्मृदुशब्दं शृण्वतां भवति चित्रकरं च ॥ ९० ॥

सुश्लिष्टखण्डद्वितयेन कृत्वा सरन्ध्रमन्तर्भुरजानुकारम् ।

ग्रस्तं तथा कुण्डलयोर्युगेन मध्ये पुटं तस्य मृदु मर्दयम् ॥ ९१ ॥

पूर्वोक्तयन्त्रे विधिनोदरेऽस्य क्षिप्तेऽथ शय्यातलसंस्थमेतत् ।

ध्वनिं ततः सञ्चलनादनङ्गीडारसोल्लासकरं करोति ॥ ९२ ॥

अस्मिन् शय्यातलविनिहिते मुञ्चति व्यक्तरागं

चित्राब्जशब्दान् मृगशिशुदशां या(न्ति?ति) भीत्येव मानः ।

किञ्चैतासां दयितमभितो निर्भरप्रेमभाजां

मौढि गच्छन्त्याधिकमधिकं मन्मथक्रीडितानि ॥ ९३ ॥

पट्टमुरजे वेषुः शङ्खो विषञ्चपथ काहला

डमरुटिषिले वाद्यातोद्यान्यमून्पखिलान्यपि ।

मधुरमधिकं याच्चित्रं च ध्वनिं विदधात्यलं

तदिह विधिना रुद्धोन्मुक्तानिलस्य विजृम्भितम् ॥ ९४ ॥

लघुदारुमयं महाविहङ्गं दृढसुश्लिष्टतनुं विधाय तस्य ।

उदरे रसयन्त्रमादधीत ज्वलनाधारमधोऽस्य चा(त्ति?प्रि)पूर्णम् ॥

तत्रारूढः पूरुपस्तस्य पक्षद्वन्द्वोच्चात्मोज्झितेनानिलेन ।

सुप्तस्यान्तः पारदस्यास्य शक्त्या चित्रं कुर्वन्नम्बरे याति दूरम् ॥

इत्यमेव सुरमन्दिरतुल्यं सञ्चलत्यलघु दारुविमानम् ।

आदधीत विधिना चतुरोऽन्तस्तस्य पारदभृतान् दृढकुम्भान् ॥ ९७ ॥

अयःकपालाहितमन्दबद्धिमतस्तत्कुम्भभुजा गुणेन ।

व्योम्नो क्षगित्याभरणत्वमेति सन्तप्तगर्जद्रसराजशक्त्या ॥ ९८ ॥

वृत्तसंन्धितमधायसयन्त्रं तद् विधाय रसपूरितमन्तः ।

उच्चदेशविनिधापिततप्तं सिंहनादमुरजं विदधाति ॥ ९९ ॥

१. 'म', २. 'खड्गि' ख. ग. पाठः । ३. 'सु', ४. 'भ' क. पाठः ।

५. 'नि' ख. पाठः । ६. 'म' ख. ग. पाठः ।

स कोऽप्यस्य स्फारः स्फुरति नरसिंहस्य महिमा
पुरस्ताद् यस्यता मदजलमुचोऽपि द्विपयदाः ।

मुहुः ध्रुत्वा ध्रुत्वा निनदमपि गम्भीरविषमं
पलायन्ते भीतास्त्वरितमवधूयाङ्कुशमपि ॥ १०० ॥

दृग्ग्रीवातलहस्तमकोष्ठयाह्रहस्तशाखादि ।
सच्छिद्रं वपुरखिलं तत्सन्धिषु खण्डयो^१ यट्येत् ॥ १०१ ॥

श्लिष्टं कीलकविधिना दारुमयं सृष्टचर्मणा गुप्तम् ।
पुंसोऽथवा युवत्या रूपं कृत्वातिरमणीयम् ॥ १०२ ॥

रन्ध्रगतैः प्रत्यङ्गं विधिना नाराचसङ्गतैः मूर्ध्नैः ।
ग्रीवाचलनप्रसरणविकुञ्चनादीनि विदधाति ॥ १०३ ॥

करग्रहणताम्बूलप्रदानजलसेचनप्र(माणा?णामा)दि^२ ।
आदर्शप्रतिलोकनवीणावाद्यादि च करोति ॥ १०४ ॥

एवमन्यदपि चेदशमेतत् कर्म विस्मयविधायि विधत्ते ।
जृम्भितेन विधिना निजगुह्यैः कृष्टमुक्तगुणचक्रशेन ॥ १०५ ॥

पुंसो दारुजमूर्ध्वं रूपं कृत्वा निफेतनद्वारि ।
तत्करयोजितदण्डं निरुणद्धि प्रविशतां वस्त्रम् ॥ १०६ ॥

खड्गहस्तमथ मुद्गरहस्तं कुन्तहस्तमथवा यदि तत् स्यात् ।
तन्निहन्ति विशतो निशि चौरान् द्वारि संवृतमुखे प्रसभेन ॥ १०७ ॥

ये चापाद्या ये^३ शतघ्न्यादयोऽस्मिन्नुष्टग्रीवाद्याश्च दुर्गस्य गुप्त्यै ।
ये क्रीडाद्याः क्रीडनार्थं च राज्ञां सर्वेऽपि स्युर्योगतस्ते गुणानाम् ॥

इदानीं प्रक्रमायातं वारियन्त्रं प्रचक्ष्महे ।
क्रीडार्थं कार्यसिद्धर्थं च चतुर्धा तद्वर्ति विदुः ॥ १०९ ॥

निम्नगं भवति द्रोणीदेशादूर्ध्वास्थिताज्जलम् ।
यत्र तत् पार्तयन्त्रं^४ स्याद् वीटिकादिप्रयोजनम् ॥ ११० ॥

१. 'य' क. पाठः । २. 'वाहुया' ख. ग. पाठः । ३. 'शोऽय घ',
४. 'नि', ५. 'य', ६. 'मूर्ध्ने' क. पाठः । ७. 'ये च शतघ्न्याद',
८. 'रूपाम्', ९. 'प्या' ख. पाठः । १०. 'द' क. पाठः । ११. 'वा'
ख. ग. पाठः ।

उच्छ्रायसमपाताख्यं यत्रोर्ध्वा नाडिका पयः ।
 जलाधारगुणान्मुञ्चेदधस्तात् समनाडि(का?कम्) ॥ १११ ॥
 यत्र पातसमुच्छ्रायं पतित्वोच्छ्रायतो जलम् ।
 तिर्यग् गत्वा प्रयात्पूर्ध्वं सच्छिद्रस्तम्भयोगतः ॥ ११२ ॥
 पतित्वोच्छ्रायतस्तोयं तिर्यगूर्ध्वोर्ध्वमेत्यथ ।
 सच्छिद्रस्तम्भयोगेन तत् स्यात् पातसमोच्छ्रायम् ॥ ११३ ॥
 वाप्यां वापि च कूपे विधानतो दीर्घिकादिका विहिता ।
 यत्रोर्ध्वमम्बु गमयति तदिहोच्छ्रायसंज्ञितं कथितम् ॥ ११४ ॥
 दारुजमिभस्य रूपं यत् सलिलं पात्रसंस्थितं पिवति ।
 तन्माहात्म्यं निगदितमेतस्योच्छ्रायतुल्यस्य ॥ ११५ ॥
 सलिलं सुरङ्गदेशानीतं निम्नेन वर्त्मना दूरे ।
 अद्भुतमम्भस्थानं तदिह समोच्छ्रायतः कुरुते ॥ ११६ ॥
 धारागृहमेकं स्यात् प्रवर्षणाख्यं ततो द्वितीयं च ।
 प्राणालं जलमग्नं नन्वावर्तं तथोन्यदपि ॥ ११७ ॥
 प्राकृतजनार्थमेतन्न विधेयं योग्यमेतदवनिभुजाम् ।
 मङ्गल्यानां सदनं दिव्यमिदं तुष्टिषुष्टिकरम् ॥ ११८ ॥
 सलिलाशयस्य सविधे कस्याप्याश्रित्य शोभनं देशम् ।
 यन्त्रोत्सेधाद् द्विगुणा त्रिगुणा वा नाडिका कार्या ॥ ११९ ॥
 जलनिर्वाहसहासावन्तर्मसृणा वहिश्च नीरन्ध्रा ।
 निर्व्यूढाम्भसि तस्यां शुभे मुहूर्ते गृहं कार्यम् ॥ १२० ॥
 सर्वाभिरोपधीभिर्धुक्तं सहिरण्यपूर्णकुम्भैश्च ।
 सुविचित्रगन्धमाल्यं विनादितं ब्रह्मघोषेण ॥ १२१ ॥
 रत्नोद्भवैर्विचित्रैः स्तम्भैर्धुक्तं हिरण्यघटितैर्वा ।
 रजतोद्भवैः कदाचित् सुरदारुसमुद्भवैरथवा ॥ १२२ ॥
 श्रीखण्डोत्थैरथवा सालरुमुख्यमशस्तवृक्षोत्थैः ।
 शतसङ्ख्यैर्द्वात्रिंशत्सङ्ख्यैरपि वापि षोडशभिः ॥ १२३ ॥

१. 'न्य' ख. ग. पाठः । २. 'तं', ३. 'वं', ४. 'लनिमग्नं' क. पाठः ।

५. 'घपाल्य' ख. ग. पाठः । ६. 'गू' क. पाठः ।

अथवा चतुस्तमन्वितविंशतिसङ्ख्यैर्दिनेशसङ्ख्यैर्वा ।
भूपितमतिरमणीयं शतुर्भिरपि वा विधातव्यम् ॥ १२४ ॥

प्राग्ग्रीवैरतिचित्रैः शालैर्जालैर्विभूषितं विविधैः ।
वेदीभिः परिकरितं कपोतपालीभिरभिरामम् ॥ १२५ ॥

रमणीयसालभञ्जिकमनेकविधयन्त्रशकुनिकृतशोभम् ।
मिथुनैश्च वानराणां जम्भकनिवृद्धैश्च नैकविधैः ॥ १२६ ॥

विद्याधरसिद्धभुजङ्गकिन्नरैश्चारणैश्च रमणीयम् ।
नृत्याद्भिः परम(गङ्गु)र्णैः शिखण्डिभिर्मण्डितोद्देशम् ॥ १२७ ॥

कल्पतरुभिर्विचित्रैश्चित्रलतावल्लिगुल्मसंछन्नम् ।
परपुष्टपद्मदालीमरालमालामनोहारि ॥ १२८ ॥

प्रयंहत्सकलस्रोतःसुश्लिष्टनिविष्टनाडिकं मध्ये ।
सच्छिद्रनाडिकयुतं नानाविधरूपरमणीयम् ॥ १२९ ॥

सुश्लिष्टनाडिकाग्रे स्तम्भतुलाभित्तिसंश्रिते परितः ।
सम्यक् कृत्वा दृढतरविलेपनं वज्रलेपाद्यैः ॥ १३० ॥

लाक्षासर्जरसदृपन्मेषविपाणोत्थचूर्णसंमिश्रम् ।
अतसीकरञ्जतैलप्रविगाढो वज्रलेपः स्यात् ॥ १३१ ॥

दृढसन्धिवन्धहेतोः स तत्र देवो द्विशः कदाचिद् वा ।
शणवल्लक्ष्णमातकसिक्थकतैलैः प्रलेप्य ॥ १३२ ॥

उच्छ्रययन्त्रेणैतद् भ्रान्तजलेनाथ तदभितः कृत्वा ।
चित्रानुपातयुक्तं प्रदर्शयेन्मृपतये स्थपतिः ॥ १३३ ॥

कार्याण्यस्मिन् करिणां मिथुनान्यभितोऽम्बुकेलियुक्तानि ।
अन्योन्यपुष्करोद्भिन्नतसीकरभयपिहितनयनानि ॥ १३४ ॥

वर्षानुकृतं चास्मिन् प्रीतिमति प्रतिमतङ्गजो वीक्ष्य ।
दृक्कटमेहनहस्तैर्मदमिव मुञ्चन् जलं कार्यः ॥ १३५ ॥

१. 'मराजरा' ख. ग. पाठः । २. 'घम्' क. पाठः । ३. 'गृहदतरतस्परशपि' ख.
पाठः । ४. 'एकः' क. ख. पाठः । ५. 'मतङ्गुच्छ्रययन्त्रयन्त्रिण' (१) क. पाठः ।
६. 'चिद्र' क. 'दि' ख. ग. पाठः ।

स्तनयोर्युगेन सृजती जलधारे तत्र कापि कार्या स्त्री ।
 आनन्दाधुलवानिव सलिलकणान् पद्मभिः काचित् ॥ १३६ ॥
 नाभिहृदनदिकामिव विनिर्गतां कापि त्रिभ्रती धाराम् ।
 काप्यद्गुलीनखांशुभिरिव योषित् सिञ्चती कार्या ॥ १३७ ॥
 एवम्प्रायांश्चित्रान् स्वभावचेष्टान् बहून्ध रमणीयान् ।
 क्षोभान् विधाय कुर्यादाश्चर्यं नरपतेः स्थपतिः ॥ १३८ ॥
 मध्ये तस्य विधेयं सिंहासनममलहेममणिघटितम् ।
 तत्रासीदेधरपतिस्वनिपतिः श्रीपतिर्देवः ॥ १३९ ॥
 स्नायात् कदाचिदस्मिन् मङ्गलगीतैर्विवर्धितानन्दः ।
 वादित्रनाट्यनिपुणैर्निषेव्यमाणः सुरेन्द्र इव ॥ १४० ॥
 य एतस्मिन् गाढनल्पितघनधर्मव्यतिकरे
 शुचौ धाराधाम्नि स्फुटसलिलधारे नरपतिः ।
 मुखेनास्ते पश्यन् विविधजलशिल्पानि स भव-
 न्न मर्त्यः किन्त्वेष सितिकृतनिवासः सुरपतिः ॥ १४१ ॥
 जलदकुलाष्टकयुक्तं पूर्ववदन्यद् गृहं समारचयेत् ।
 वर्षद्धारानिकरैः प्रवर्षणाख्यां तदामोति ॥ १४२ ॥
 प्रतिकुलमस्मिन् कार्या दिव्यालङ्कारधारिणः पुरुषाः ।
 विधिना त्रयः सुरूपाश्चत्वारः सप्त वा सुदृढाः ॥ १४३ ॥
 यन्त्रेण समोच्छ्रायेण तांश्चतुर्थेन वा ततः पुरुषान् ।
 कृत्वा सवक्रनालानम्भोभिः पूरयेद् विमलैः ॥ १४४ ॥
 सलिलप्रवेशरन्धाण्यखिलानि पिधाय तत्र पुरुषाणाम् ।
 अङ्गानि वारिमोक्षाण्यखिलान्यथ मोचयेत् तेषाम् ॥ १४५ ॥
 सलिलं सवक्रनालं द्वारप्रतिरोधमोचनैः पुरुषाः ।
 मुञ्चन्ति स्वेच्छममी विचित्रपातेन चित्रकरम् ॥ १४६ ॥
 इत्थमिमान् वारिधरान् साम(स्यास्त्या)द् व्यन्तरेण वा सलिलम् ।
 व्यन्तरतो वा स्वेच्छं प्रवर्षयेदतिमहच्चित्रम् ॥ १४७ ॥

इदं नानाकारं कृतमवनमार्गं रत्नपत्रं-

निर्नामधिप्राणापनुहणपत्रं नन्दमृगम् ।

पयःपानप्रोष्य रत्नितरपरीतावनमनं

न केषामप्यर्थं भवति नयनानन्दजननम् ॥ १४८ ॥

एकेनाथ चतुर्भिः स्नग्धैरष्टभिर्गार्हमहर्ग्यता ।

षोडशभिर्वा कुर्यान्मनोहरं गृहपिदं द्वितयम् ॥ १४९ ॥

भद्रैर्पुत्रं चतुर्भिश्चतुर्थं सर्वभित्तिमं युक्तम् ।

ईलीनोरणयुक्तं कर्तव्यं पुष्पकाकारम् ॥ १५० ॥

तस्योपरि मध्यगता प्राङ्गणवापी हृदा विधानव्या ।

क्षतपत्रविदितभूषा तन्मध्ये कर्णिका कार्या ॥ १५१ ॥

तत्कोणेषु चतुर्ष्वपि स्पर्णीया दारुदारिकाः कार्याः ।

मध्याम्युजनिहितदशाः सालद्वाराः मन्दूजाराः ॥ १५२ ॥

पूर्वोक्तयन्त्रयोगात् पञ्चासीनं यमुन्धराधिपता ।

भृङ्गारामलवारिभिरङ्गणवापीं^१ श्रियाच्च ततः ॥ १५३ ॥

तामिति भृत्वा वापीं तत्सलिलं तदनुपट्टगर्भगतम् ।

छाद्यस्तु गन्धरोधेष्वति रोहति(?)सर्वतो नियतम् ॥ १५४ ॥

मुखपट्टसमुत्कीर्णं रूपैश्चित्रैर्मनोरमैरखिलैः ।

अङ्गवारि विमुञ्चति नासास्यश्रवणनेत्रार्धैः ॥ १५५ ॥

प्रणालाख्यं धाराभवनमिदमत्यद्भुततरं

स्थितिं धत्ते यस्य क्षितिपतिलकस्याङ्गणभुवि ।

करोत्येतद् वेत्थं स्थपतिरपि बुद्ध्या चतुरया

जगत्येतौ द्वावप्यधिकमहनीयौ कृतधियाम् ॥ १५६ ॥

चतुरथातिगभीरा वापी कार्या मनोरमा सुहृदा ।

गर्भगतं गृहमस्याः कर्तव्यं लिप्तसन्धि ततः ॥ १५७ ॥

विहितप्रवेशनिर्गति सुरङ्गयाधो निवेशितद्वारम् ।

विदेहीत चारुरूपैः प्रवर्षकैर्व्याप्तमुपरिष्ठात् ॥ १५८ ॥

चित्राध्यायोदितवर्मना ततोऽलङ्कृतं च चित्रेण ।
 तस्य विधेयं मध्यं सलिलाधिपवाससङ्काशम् ॥ १५९ ॥
 ऊर्ध्वविनिर्गमिताब्जैर्नालैस्तत्पट्टकन्दकोद्भूतैः ।
 सच्छिद्रकर्णिकागतदिनकरकरनिर्मितोद्द्योतम् ॥ १६० ॥
 आपूरयेत् ततोऽनु च पाताम्बुभिरमलकमलपर्यन्तम् ।
 विधिनामुनैव सम्यक् प्रविधाय मनोरमं भवनम् ॥ १६१ ॥
 नानारूपकयुक्त्या (उ० व्यु०) परचित्ततमस्तोरणद्वारम् ।
 शालाभिरायताभिश्चतसृष्वपि दिक्षु कृतशोभम् ॥ १६२ ॥
 कृत्रिमशकरीमकरीपक्षिभिरपि चाम्बुसम्भवैर्घुक्ताम् ।
 कुर्यादम्भोजवतीं वापीमाहार्ययोगेन ॥ १६३ ॥
 सामन्तमुख्यपुरुषा राजाज्ञालब्धसंश्रयास्तत्र ।
 परराष्ट्रागतदूतास्तिष्ठेयुर्निहितमिह निभृताः ॥ १६४ ॥
 अथ स यथाविधि सलिलक्रीडां पूर्वोक्तमार्गरूपाणाम् ।
 दृष्ट्वा मुदितः कुर्यात् पर्यङ्कारोहणं नृपतिः ॥ १६५ ॥
 तत्र स्थितस्य नृपतेः परिवारितस्य
 वाराहनाभिरभितो जलमप्रधात्रि ।
 पातालसद्मनि यथा भुजगेश्वरस्य
 निस्सीमसम्भृतरतिर्भवति श्रमोदः ॥ १६६ ॥
 पूर्वोक्तवापिकायां मध्ये स्नम्भैश्चतुर्भिरुपरचितम् ।
 मुक्ताप्रवालयुक्तं पुष्पकमथ कारयेत्तद्वत् ॥ १६७ ॥
 वर्षां परितः पुष्पकपापूर्वं सुनिर्गमाभिरथ सुदृढम् ।
 गर्भस्वस्तिकमितिभिरुपहितशोभं समन्ततः कुर्यात् ॥ १६८ ॥
 पूर्वोक्तवारियोगात् पूर्णमारुर्णतो विधार्यताम् ।
 जलकेलिषु सोत्कण्ठो महीपतिः पुष्पकं यायात् ॥ १६९ ॥
 कुर्वीत नर्मसचिर्विलसिनीभिश्च सार्धमयनिपतिः ।
 तैर्द्विच्यन्तरवतीं निमज्जनोन्मज्जनैः क्रीडाम् ॥ १७० ॥

एकत्र प्रवेश्यत इष्टं न्यत्र इत्या गतिर्न नष्टः ।
 श्रीरङ्गम् केचित्तरैः महावेद्यैः सुखं मन्त्रननुकरिण्याम् ॥ १७१ ॥
 मार्गान्तरिगतमथ प्रययानस-
 माप्तादिगन्तनमरं कल्पतेन ।
 गाढावगन्तवगने मन्त्रोपमुक्ता-
 वालोकने प्रणयिनीजनपत्र धन्यः ॥ १७२ ॥
 रयदोन्मादिविधाने दारवममिदम्भे नये मन्त्रम् ।
 मन्त्रभ्रमणकर्म मकीर्तितं पञ्चमं यन् तन् ॥ १७३ ॥
 मन्त्र मन्त्रः प्रथमो मन्त्रनिवागो मन्त्रनित्यकथ ।
 विभ्रमकमिपुराण्यः पञ्चमे द्रोणकाः कथिताः ॥ १७४ ॥
 निरवनेमतुरः स्तम्भान् समैकयूत्रोपगान् क्रजन् सुहृदान् ।
 सहान्तरान् धरित्रीवदानः सुभ्रि(रुण?)पीठगतान् ॥ १७५ ॥
 प्रामादस्योक्तदिशि प्रविदध्याद् विरचिताएकरदैर्घ्यम् ।
 भूमिपृष्ठं रमणीयं तदर्धतो विहितगाम्भीर्यम् ॥ १७६ ॥
 तद्गर्भतले स्तम्भो लोहमयाभारसंस्थितः कार्यः ।
 भ्रमसहितः पीठयुतो ग्रस्तश्छादकतुलामिः ॥ १७७ ॥
 संस्थाप्योपरि पीठस्य कुम्भिकामतिदृढां विमक्तां च ।
 धनुरुच्छ्रितस्ततोऽम्भमष्टभिरावेष्टयेद् भद्रैः ॥ १७८ ॥
 स्वेच्छमथ भूमिकोच्छ्रयमस्योर्ध्वे कल्पयेन्नितान्तमृजुम् ।
 निदधीत वेष्टनोर्ध्वे पट्टयुतं स्तम्भशीर्षं च ॥ १७९ ॥
 हीरग्रह(ण?)पर्यन्तं मंदला गजशीर्षिका विधातव्या ।
 सुहृदा प्रयत्नरचिता मनोभिरामा यथाशोभम् ॥ १८० ॥
 पट्टस्योपरि कार्या चतुष्पिका क्षेत्रमानतोऽभीष्टात् ।
 तस्यामुपरि विधेयस्तलवन्धो दृढतरन्यासः ॥ १८१ ॥
 स्तम्भैर्द्वादशभिरथ क्षेत्रे युक्त्या समुच्छ्रितैर्भव्यैः ।
 रूपवतीकोणस्थितिरर्थिका भूः प्रथमिका कार्या ॥ १८२ ॥

१. 'य मुशिभि' क. पाठः । २. 'स', ३. 'चरिता', ४. 'धि' क. पाठः ।

'तद्गुमि' ख. ग. पाठः ।

मध्ये भ्रमश्च तस्या गर्भस्तम्भप्रतिष्ठितः कार्यः ।

क्षेत्रप्रमाणवशतस्तां पश्चाच्छादयेत् पट्टैः ॥ १८३ ॥

रथिकाशिखाग्रकेषु च फल्काः(मण्ड)रणस्य तद्वदुपरिष्ठान् ।

भ्रमचक्राणि न्यस्येन्मध्ये स्तम्भे च पञ्चैव ॥ १८४ ॥

अत उपरि यथाशोभं हि भूमिका पुष्पकाकृतिः कार्या ।

मध्यस्तम्भाधारा कृतकलशविभूषणा शिरसि ॥ १८५ ॥

स्तम्भेऽ(वर्ध)स्ताद् भ्रमिते भृशं भ्रमत्यर्धभूमिका तत्र ।

रथिकाभ्रमरकयुक्ता परस्परं चक्रयन्त्रेण ॥ १८६ ॥

वसन्तरथिकाभ्रमे समधिलङ्घ्याराधना-

परिभ्रमणसम्भृताभ्यधिकविभ्रमं भूपतिः ।

करोति नयनोत्स(वस्त्रि)वं त्रि)दशधात्रि यत्कीर्तनं

वसन्तसमये भवत्यमलकीर्तिधामैव सः ॥ १८७ ॥

आरोप्य स्थिरमेकं स्तम्भं भूमीगृहादिरहितमथ ।

हस्तचतुष्कोच्छ्राया कार्योपरि भूमिका चास्य ॥ १८८ ॥

मध्ये भ्रमरकयुक्तं शेषं पूर्ववदिहाचरेदखिलम् ।

पुष्पकमपि च स्तम्भे शिथिलं कलशोच्छ्रितं कुर्यात् ॥ १८९ ॥

तस्योपरि च ग्रीवा चतुरासनसंयुता विधातव्या ।

घण्टास्तम्भा कार्यौ स्तम्भेन सहाय्यौ तत्र ॥ १९० ॥

एवं पुष्पकभूमिकान्तरतलस्थायी निगूढो जनो

यावद् भ्रामकयन्त्रचक्रनिकरं सम्यक् क्रमाच्चालयेत् ।

तावत् ता रथिकासना मृगदृशस्तत्र स्थिताः पुष्पके

कामावासकुतूहलार्पितदृशो भ्राम्यन्ति सर्वा अपि ॥ १९१ ॥

अथ कोणगतान् स्तम्भांश्चतुरो विनिवेशयेद् ऋजून् गुरुहान् ।

सुश्चिष्टपीठसंस्थान् समान्तरान् मेदिनीवशतः ॥ १९२ ॥

तेषामुपरि (लता)तला)न्तरसंयुक्ता भूमिका विधातव्या ।

रथिकास्तत्र चतस्रो जायन्ते पूर्ववैद् दिक्स्थाः ॥ १९३ ॥

१. 'मयः', २. 'कां तर' क. पाठः । ३. 'मयं च' ग. पाठः । ४. 'सुश्चिष्टपी' क. पाठः । ५. 'पूर्वयुगाभिः ।' क. 'वद्विक्लृप्ताः' ग. पाठः ।

मदृशं नगरंभूयिः काशी मुधिरासमन्ताना ।

मध्यममकनुना मन्तरा मन्तराभयाना न ॥ १९४ ॥

१ नानाविधकर्मरती नगन्तवो वादरेणा स्यात् ।

भन्यान्मन्त्राणिपटनरान्मन्त्रा-

निर्देशनपरिष्कारभमनाभिरामम् ।

इषा नगन्तविकर्म मुग्धमन्त्रिणा

भूषागमानमुपपाति न रिम्भ'यन्ती' कः) ॥ १९५ ॥

प्रविधाय मन्त्रभूमिं प्रथमां नागान्तगम्यमाणं (?) ।

चतुर्था स्मरती गन्तुर्मेघा चित्रेणा भूः ॥ १९६ ॥

प्रतिशोणमाग'त'ना, स्या मन्त्रे भवन्ति मन्त्रा भ्रमराः ।

अन उपरिष्ठाद् भूम्या भ्रमराभाष्टामनाः काशीः ॥ १९७ ॥

मेवाः शुद्धाः काशी गदिरस्तधिश्रिताशान्याः ।

पीठेषु मध्य(ग)सं, स्यास्तनोऽयम भूमिकाः काशीः ॥ १९८ ॥

पीठस्य मध्यमंमध्यम्योन्यासाद्विषोर्जितर्धकः ।

सर्वे वेगाद् भ्राम्यन्ति सान्त(ना)ग) विभ्रमे भ्रमराः ॥ १९९ ॥

दोलागनो विहितवास्वर्धु(कृ?)नानि-

चित्रेण यस्मिन्मध्यमसु विभ्रमेण ।

पृथ्वीपतिर्मुदमुपति समुद्रसन्ती

कीर्त्तिर्न माति भुवनत्रिनयेऽपि तस्य ॥ २०० ॥

चतुरश्रमथ क्षेत्रं कृत्वांशिभोजितं ततोऽष्टाभिः ।

कोणैः शेषस्तस्मिन्चतुर्ध्रं कल्पयेद् भद्रम् ॥ २०१ ॥

तद्विगुणमूर्ध्वमेतस्य भूमिकाभागमङ्गुल्यया कार्यम् ।

तत्राद्यंशचतुष्केण भूमिका स्यात् समुच्छ्रयतः ॥ २०२ ॥

तत्राष्टपदचतुर्भागवर्जिता भूमिका उपर्युपरि ।

क्रमशो भवन्त्यथैवं ताः स्थुस्तिस्त्रोऽर्धसंयुक्ताः ॥ २०३ ॥

१. 'रिम्भ भू' क. पाठः । २. 'सतनाविनमेभ्रम(?)' ख. पाठः । ३. 'ना-

विषमे भ्रम' ग. पाठः । ४. 'धू+तानि चि' क. पाठः ।

१ इह किञ्चिदर्थे मातृकामु गलितमिव भाति ।

शेषांशोच्छ्रययुक्ता घण्टा चतुरश्रकायता कार्या ।
 त्रिचतुर्भूम्यौ कार्ये सपद्चतुर्भागविस्तारे ॥ २०४ ॥
 रङ्गः स्यादाद्यभुवि द्वितीयभुवि कोणगास्तथा रथिकाः ।
 स्युर्भद्राकृतियुक्ता दोला अपि तत्र रमणीयाः ॥ २०५ ॥
 रथिकास्तृतीयभूमौ कार्या भद्रेषु चातिरमणीयाः ।
 कोणेष्वथासनान्यर्धवास्तुकेऽपि भ्रमः कार्यः ॥ २०६ ॥
 दोलारथिके चतुरासने भ्रमोऽष्टासनो भवेत् तत्र ।
 आसनमिदं तत् कथितं सुवतेः स्थानं यदेकं स्यात् ॥ २०७ ॥
 निखिलान्यपि भ्रमणसंपुलं तानि विभ्रति भ्रमणम्(?) ।
 यत्रासनानि स इह भ्रम इत्युक्तोऽपराधिका(?) ॥ २०८ ॥
 यष्टेरुर्ध्वमधस्ताद् भ्रमस्य चक्रं (नि)योजयेदेकम् ।
 लघुचक्राणि च तद्वन्नियोजयेदासनेष्वत्र ॥ २०९ ॥
 लघुचक्रारकट्टचे संलग्नाः कीलका द्वाः कार्याः ।
 तुल्यान्तराः समस्ताः प्रलघु(क)चक्रारवृन्तर्गताः ॥ २१० ॥
 रथिकाशिखाग्रचक्रं भ्रमचक्रारक(वि?)नियोजितं कार्यम् ।
 यष्टिचतुष्टयमस्मिस्तिर्यक् चक्रद्वयोपेतम् ॥ २११ ॥
 ऊर्ध्वं द्वितीयभूमेस्तृतीयभूमेरथान्तरे कुर्यात् ।
 नियतं रथिकायष्टिभ्रमसंलग्नानि यन्त्राणि ॥ २१२ ॥
 आसनाधारयष्टीनां रथिकाचक्रयोजितान् ।
 अथः समान्तरान् कुर्याच्चतुरः परिवर्तकान् ॥ २१३ ॥
 त(द्व)द् द्वितीयभूमीदोलागर्भे समान्तरे यष्टी ।
 लग्ने तथैकचक्रे याम्योत्तरचक्रयोर्न्यस्येत् ॥ २१४ ॥
 तद्वदथो भूकोणगरथिकाचूडोग्रचक्रसंस्तताः ।
 यष्टीस्ततश्चतस्रो द्विचक्रका इतश्चक्रयोर्न्यस्येत् ॥ २१५ ॥
 प्रान्तचक्रद्वये कोणरथिकाचक्रयोजिता ।
 दोलागर्भगता यष्टिस्तिर्यक् कार्यापरापरा ॥ २१६ ॥

१. 'घु' ग. पाठः । २. 'चक्रभ्रमरच' ख. पाठः । ३. 'क्रम' ग. पाठः ।

४. 'म' ख. ग. पाठः । ५. 'ल' ग. पाठः ।

पूर्वे भद्रे द्वारं कुर्यात् सोपानराजितमधस्तात् ।
गर्भात् पश्चिमभागे नियोजयेद् देवतादोरुहम् ॥ २१७ ॥

अन्योन्यं चक्रभ्रममिच्छामुक्तिं विधानतः सम्यक् ।
ज्ञात्वा प्रयोजनीयं शीघ्रवहं मन्दवहनं वा ॥ २१८ ॥

एष समासेन यथा भ्रममार्गः कीर्तितः स्फुटोऽस्माभिः ।
अन्येष्वपि कर्तव्यः सम्यग् भ्रमहेतवे तद्वत् ॥ २१९ ॥

स्तम्भादिद्रव्याणां विन्यासैः कल्पितं दृढैः श्लक्ष्णैः ।
सुश्लिष्टसन्धिवन्धं धृतं तथा दीर्घमुख्यधरैः ॥ २२० ॥

परिवारितमथ तिलकैः समन्ततः सिंहकर्णसंयुक्तम् ।
त्रिपुरं सम्यक् कुर्याद् विचित्ररूपं (स्व)कैश्चित्रैः ॥ २२१ ॥

बुद्ध्या क्लृप्तैः पूर्वयन्त्रैश्च युक्तं यन्त्राध्यायं वेत्ति यः सम्यगेतम् ।
प्राप्नोत्यर्थान् वाञ्छितान् कीर्त्तियुक्तान् स क्षमापालैरन्वहं पूज्यते च ॥

एतद् द्वादशराजचक्रमखिलं क्षमापादचूडामणे-
र्दोःस्तम्भप्रतिबद्धवृत्तिं परितो यस्येच्छया भ्राम्यति ।

स श्रीमान् भुवनेकरामनृपतिर्देवो व्यधत्त द्रुतं

यन्त्राध्यायमिमं स्वबुद्धिरचितैर्यन्त्रप्रपञ्चैः सह ॥ २२३ ॥

इति मत्स्यपुराणविष्णुसूक्तोक्तदेवधिरचिने समस्तज्ञगूढचारावज्ञाग्नि वास्तुशास्त्रे
यन्त्रविधानं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ गजशाला नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

लक्षणं गजशालानामिदानीमभिदध्महे ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे मार्गैर्मक्ते ततोऽष्टभिः ॥ १ ॥

मध्ये द्विभागविस्तारं स्थानं कुर्यात् हस्तिनः ।

कल्याणः प्रासादवद् भागा उषष्टमध्यायमाः क्रमान् ॥ २ ॥

तद्वहिर्भागोऽलिन्दो वहिस्तस्यापि चापरः ।

भागैर्नेकेन भित्तिः स्याद् द्वितीयालिन्दकाद् यदिः ॥ ३ ॥

तस्या द्वारप्रवेगे तु कर्णव्यूहं कर्षणावुभौ ।

कर्णप्रामादिका कार्या द्वितीयालिन्दसंश्रिता ॥ ४ ॥

द्वे द्वे वातायने कुर्याद् भित्तां दिधु निमृष्यपि ।

प्राग्ग्रीवोऽग्रे भवेच्छाला सुभदेयमुदाहृता ॥ ५ ॥

अस्या एव यदा पक्षप्राग्ग्रीवा भवतां मुगे ।

नन्दिनी नामतः शाला तदा स्यात् मज्जद्वये ॥ ६ ॥

अस्या एव यदा स्यातां प्राग्ग्रीवा पार्श्वयोर्द्वयोः ।

तदा सुभोगदा नाम तृतीया परिकीर्तिता ॥ ७ ॥

अस्या एव यदा पृष्ठे प्राग्ग्रीवः क्रियतेऽपरः ।

भद्रिका नाम शाला स्यात् तदा द्विस्त्रिंशद्विदा ॥ ८ ॥

पञ्चमी चतुरश्रा स्याद् वर्षणी नाम पूजिता ।

प्राग्ग्रीवाल्लिन्दनिर्युद्धीना पृष्टी तथापरा ॥ ९ ॥

शाला प्रमारिका धान्यधनजीवितद्वारिणी ।

तदेतां वर्जयेत् कुर्यादन्याः सर्वार्थसिद्धये ॥ १० ॥

प्रवारिकेति प्रथितेह शाला सा प्राणसस्यद्रविणच्छिदे स्यात् ।

कुर्यादतस्तां न यथोदितास्तु कार्याः परा जीवितविचष्टद्वये ॥ ११ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते ममण्डपगृहकारणश्लाघा वास्तुशास्त्रे

गजशाला नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

अथाश्वशाला नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथ लक्ष्माश्वशालायाः प्रोच्यते विस्तरादिह ।

स्ववेदप्रनास्तोः कर्तव्यं पदे गन्धर्वसंज्ञके ॥ १ ॥

१. 'पु', २. 'खः' क. पाठः । ३. 'ते', ४. 'जि' स. पाठः ।

१. '१' इदं सर्वत्र 'प्रमीव' इति पाठ्यं भाति ।

अथवा पुण्यदन्ताद्यै स्थानं वागाय नाजिनाम् ।

श्रमनिमनमात्रं गच्छयेत् तन् परिष्कारितम् ॥ २ ॥

अग्नीत्पराधिकं मयं पण्यारत्न्यधमं भवेत् ।

स्थलप्रदेशे निपुले गुप्ते रम्ये शुभा तथा ॥ ३ ॥

गमे य चतुरश्रे च स्थितिः मत्तन्यमेव च ।

स्थानं ह्योनां कर्तव्यं प्रदेशे गुरुरिष्टमे ॥ ४ ॥

निम्नगुल्मद्रुमस्थाणुर्चत्पायननवेष्टमभिः ।

बल्मीकशर्करामिध वर्जिते तन् समागमेत् ॥ ५ ॥

निःसज्जे शल्यहीने च प्रागुद्वनवणे तथा ।

प्रदेशे तद् विधातव्यमालोक्य गुणमाहितैः ॥ ६ ॥

ग्राह्यणानुमते शस्ते दिने स्थपतिभिः सह ।

भूमेर्विभागमालोक्य शुभगानानपेद् द्रुमान् ॥ ७ ॥

न जाता ये श्मशानेषु देवतायतनेषु वा ।

अन्येष्वपि निपिष्टेषु जातान् वृक्षान् विवर्जयेत् ॥ ८ ॥

वृक्षान् प्रशस्तानानीय समीपे भर्तुर्वेष्टनः ।

ततो भूमिं परीक्षेत प्रशस्तौमथ निन्दिताम् ॥ ९ ॥

चितायतनबल्मीकग्रामधान्येस्त्रलेषु च ।

विहारेषु च कर्तव्यमश्वानां न निवेशनम् ॥ १० ॥

भवन्ति स्वामिनः पीडा ग्रामधान्येस्त्रलेषु च ।

श्मशाने वेष्टमकरणाश्वराणां मृत्युमादिशेत् ॥ ११ ॥

स्थानं विहारबल्मीकविहितं स्यादनर्थकम् ।

तन्नित्यसन्तापकरं क्षयकृच्च तपस्विनाम् ॥ १२ ॥

दैवोपघातजननं स्त्रीणां च क्षयकारकम् ।

विहितं पादपैद्यैर्दृष्टं स्याद् भूतभीतिदम् ॥ १३ ॥

भवेद् रोगकरं भर्तुर्विहितं कण्टकिद्रुमैः ।

दीर्णायामुन्नतायां च कृतं भूमा क्षयावहम् ॥ १४ ॥

१. 'स्त' क. पाठः । २. 'शुभगानानीय' खट्वु' क, 'शुभगाना' ख. पाठः । ३. 'स्ता' मय', ४. 'नाखि' ख. पाठः । ५. 'न', ६. 'पाद' श्वराणां', ७. 'क' क. पाठः ।

नतायां क्षुद्रयकरं कृतं भवति मन्दिरम् ।
 तस्मात् कार्यं प्रशस्तायां भूमौ तद् वाजिद्वये ॥ १५ ॥
 मङ्गल्यरमणीये च चतुरश्रे मनोनुगे ।
 शुभे च विहितं सद्य भोक् कल्याणकारकम् ॥ १६ ॥
 निर्गच्छतो यथा वामे पार्श्वे भर्तुस्तुरङ्गमाः ।
 भवन्ति कृपात् स्थपतिस्तथा वाजिनिवेशनम् ॥ १७ ॥
 अन्तःपुरप्रदेशस्य कार्यं दक्षिणतश्च तत् ।
 प्रवेशे दक्षिणं तेषां हेयितं जायते यथा ॥ १८ ॥
 तथा भर्तुर्हितार्थाय कर्तव्यं सद्य वाजिनाम् ।
 प्राणुदग् वा मुखं तस्य विधातव्यं सैतोरणम् ॥ १९ ॥
 माग्रीवकेण संयुक्तं चतुःशालमसङ्कटम् ।
 दशारविसमुच्छ्रायमष्टारविप्रविस्तृतम् ॥ २० ॥
 नागदन्तकसंशोभि पुरः कुड्यार्थसंयुतम् ।
 पृष्ठे समग्रकुड्यं वा तत्र स्थानानि कल्पयेत् ॥ २१ ॥
 तानि तु प्राङ्मुखानि स्युस्तथैवोद्गुमुखानि च ।
 आयामे किङ्कुमात्राणि त्रिकिङ्कूणि च विस्तरात् ॥ २२ ॥
 प्राङ्मुखतोर्ध्वभागानि चतुरश्राणि कारयेत् ।
 अग्रोष्ठां मुखसम्भारां तेषु भूमिं प्रकल्पयेत् ॥ २३ ॥
 स्थानं मूत्रस्य मध्ये तु हस्तमात्रं समन्ततः ।
 आस्तीर्णं च समश्चक्षणनीरन्ध्रः फलं कर्तव्यं ॥ २४ ॥
 धातव्यर्जुनपुष्पागककुमादिविनिर्मितैः ।
 अष्टाङ्गुलसमुच्छ्रायैरध्वर्षारविप्रविस्तृतैः ॥ २५ ॥
 अर्च्छिद्रैः संहर्तव्यैर्द्वयैसा पार्श्वयोर्द्वयोः ।
 भजन्तुसङ्कुलैः काष्ठै रुचकाभि(?)ष्टिपद्मैः ॥ २६ ॥
 पवसस्य भवेत् स्थानं निर्गुरैः स्वास्तुतं शुभैः ।
 किङ्कुमयोच्छ्रितं तत् स्यादेकान्ते सुसमाहितम् ॥ २७ ॥

हस्तप्रमाणं च कुर्यात् स्थानमप्यत्र ॥
 मूर्तिमददृष्टेः स्थितेः परमः समम् ॥ २८ ॥
 स्थाने स्थाने परः त्रीणाः सुखाः त्रिभिर्भिः ।
 यथाशक्तिप्रदायं नो द्यावः ततोऽपि ॥ २९ ॥
 यथाऽपि तत्तमेऽपि च सुखं त्रिभिर्भिः ।
 चतुर्भिः स्थाने स्थाने भावार्थेनानुत्तमम् ॥ ३० ॥
 स्थानेऽप्येव सुखं त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ।
 तत्र कुर्यात् त्रिभिर्भिः स्थितेः परमम् ॥ ३१ ॥
 त्रिभिर्भिः सुखं त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ।
 यथाशक्तिप्रदायं च त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ॥ ३२ ॥
 त्रिभिर्भिः सुखं त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ।
 भवत्यत्र त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ॥ ३३ ॥
 स्थाने त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ।
 त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ॥ ३४ ॥
 त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ।
 त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ॥ ३५ ॥
 त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ।
 त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ॥ ३६ ॥
 त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ।
 त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ॥ ३७ ॥
 त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ।
 त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ॥ ३८ ॥
 त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ।
 त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ॥ ३९ ॥
 त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ।
 त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः त्रिभिर्भिः ॥ ४० ॥

एवंविधानि चान्यानि संनिदध्यात् प्रयत्नतः ।
 पुरःस्तम्भाश्रितं भाण्डं सन्नाह्यदेर्विधीयते ॥ ४१ ॥
 ग्राह्यमुखे तुरगं गेहे वारुण्यां स्थापयेद् दिशि ।
 पूर्वामुखे पदे वापि मित्रस्य वरुणस्य च ॥ ४२ ॥
 भवन्ति तेन बहवः पुष्टिं च प्राप्नुवन्ति ते ।
 सा हि दिक् पूजनीया च स्तोतव्या च प्रकीर्तितौ ॥ ४३ ॥
 होमशान्तिकेदानेषु धर्म्या याश्च पराः क्रियाः ।
 तासु प्रशस्यते पूर्वा शक्रेणाधिष्ठिता स्वयम् ॥ ४४ ॥
 तस्यामुदेति दिनकृदनुलोमं ततः पुनः ।
 अश्वानां पृष्ठतो याति स प्रतीचीमनुक्रमात् ॥ ४५ ॥
 स्नानाधिवासने पूजा मातृल्यानि पराणि च ।
 ग्राह्यमुखानां तुरङ्गाणां कर्तव्यानि शुभार्थिभिः ॥ ४६ ॥
 एवं कृते भूमिवलमित्राणां यशसोऽपि च ।
 दृष्टिर्भवति भूपस्य तस्मात् प्राची प्रशस्यते ॥ ४७ ॥
 भर्तृदृष्टिभद्रं स्थानमग्रप्रासस्य तद् भवेत् ।
 दक्षिणाभिमुख्यायां तु शालायां वाञ्छितार्थदम् ॥ ४८ ॥
 स्थानं भवति वाहानां पदे क्लृप्तं विभावसोः ।
 वह्निनाध्यासिता सा दिग् आत्मा वह्निश्च वाजिनाम् ॥ ४९ ॥
 अजरो बहुभोक्ता च तत्र बद्धो भवेद्दयः ।
 उदङ्मुखेऽपि भवने प्राप्नुवन्ति शुभं ह्याः ॥ ५० ॥
 तथास्थितानामश्वानां दक्षिणेन दिवाकरः ।
 उदेत्यनन्तरं याति तान् विधाय प्रदक्षिणम् ॥ ५१ ॥
 प्रयाति वापतोऽश्वं चऽश्वानां स्थाप्यास्तेनोत्तरामुखाः ।
 चन्द्रार्कां मति(हर्ष)हेप)न्ते तथा धर्मीत वाजिनः ॥ ५२ ॥
 नृपतिश्च जयं सिद्धिं पुत्रानामुध विन्दति ।
 भेरागाश्च भवन्त्यश्वो वर्धयन्ति च सन्ततिम् ॥ ५३ ॥

१. 'ताः' क. ख. पाठः । २. 'पु' ; ३. 'यगोक्त्य' क. पाठः । ४. 'गृहीतो
 बहिष्ठ वा' ; ५. 'आरोप्य' क. पाठः ।

दक्षिणाभिमुखान् कुर्याच्च सन्नाथान् न चाग्रगान् ।
 पितृकार्याद्यतोऽन्यत्र दक्षिणा वर्जितैव दिक् ॥ ५४ ॥
 अस्यामेव दिशि भेता यतः सर्वे प्रतिष्ठिताः ।
 उदेति वामतो याति चास्तं दक्षिणतो रविः ॥ ५५ ॥
 सोमश्च पृष्ठे भवति तेनाश्वा देवपीडिताः ।
 ग्रहैर्विकारैर्विविधैः पीड्यन्तेऽरातिविद्वलाः ॥ ५६ ॥
 भयेन व्याधिभिश्चार्ता ग्रासं नेच्छन्ति खादितुम् ।
 पराजयमतुष्टिं च स्वामिनोऽनर्थसङ्गतिम् ॥ ५७ ॥
 कुर्वन्त्यतो न वध्नीयात् कथञ्चिद् दक्षिणामुखान् ।
 पश्चिमाभिमुखानां च वद्धानां वाजिनां सदा ॥ ५८ ॥
 उदेति पृष्ठतो भानुः पुरतोऽस्तं प्रयाति च ।
 न भवेद् विजयस्तेन भर्तुस्तत्पृष्ठवर्तिनः ॥ ५९ ॥
 शक्रस्य पृष्ठवर्तित्वात् प्रातिलोभ्याच्च भास्वतः ।
 कुप्यन्ति व्याधयस्तेषां तूर्णं देहविनाशनाः ॥ ६० ॥
 तैस्ते ध्यायन्ति वेपन्ते जले ग्रासं प्रयान्ति च ।
 यवसं नाभिनन्दन्ति क्षमां मुञ्चन्ति सर्वथा ॥ ६१ ॥
 दिशोऽभिमुखमाग्रेऽप्या वध्यन्ते यदि वाजिनः ।
 व्यथन्ते रक्तपित्तोत्थैस्तदा रोगैरनेकधा ॥ ६२ ॥
 जायन्ते स्वामिनो बन्धवधहृच्छोर्षदायिनः ।
 वाजिनां च भवेत् तत्र बद्धिदाहकृतं भयम् ॥ ६३ ॥
 भर्तुः पराजयो विघ्नः स्याच्च देहस्य संशयः ।
 नैर्ऋत्याः ककुभो बाहा वध्यन्ते संमुखं यदि ॥ ६४ ॥
 तदा न तेऽभिनन्दन्ति खादनं पानभोजने ।
 यथा यथा क्षितिं पादैर्दारयन्ति पुनः पुनः ॥ ६५ ॥
 हेषन्ते वीक्ष्य बहुशो मनुष्यान् पक्षिणः पशून् ।
 नमयन्ति च गात्राणि नैर्ऋतीं चाभितः स्थिताः ॥ ६६ ॥

तथा तथैषां कुपिता नाशं कुर्वन्ति राक्षसाः ।
 बध्यन्ते यदि बाह्यानाद् वायव्याभिमुखं हयाः ॥ ६७ ॥
 तदा ते वातिकै रोगैः पीड्यन्ते प्रतिवासरम् ।
 चलः कायो भवेद् भर्तुः क्लेशश्चाश्वोपजीविनाम् ॥ ६८ ॥
 नराणां च भवेन्मृत्युर्दुर्भिक्षप्रभवं भयम् ।
 ऐशान्यभिमुखं बद्धाः प्रणश्यन्ति तुरङ्गमाः ॥ ६९ ॥
 मूर्धोदयस्याभिमुखं बद्धानां चेदमादिशेत् ।
 निबध्यन्ते यदा बाह्या ब्राह्मी दिशमुपाश्रिताः ॥ ७० ॥
 बध्यन्ते ते ग्रहैर्दिव्यव्याधिभिश्च विचिन्तनाः ।
 कव्यहव्यक्रियास्तत्र भर्तुर्न विजयावहाः ॥ ७१ ॥
 द्विजानामुपतापाय जायन्ते तत्र वाजिनः ।
 अनुवंशं च शान्दार्पां स्थानमश्वस्य नेष्यते ॥ ७२ ॥
 स्वामिनस्तदजीर्णाय स्थान्नाशाय च वाजिनाम् ।
 स्थाने प्रशस्ते तुरगान् सर्वथा वासयेदतः ॥ ७३ ॥
 नच धार्याः क्षणमपि रोगिणः कल्पसन्निधौ ।
 कल्याणामपि रोगाः स्युर्यतो रोगिसमाश्रयात् ॥ ७४ ॥
 हयागारस्य पूर्वेण कार्यं भेषजमन्दिरम् ।
 तस्यैव वामतः सर्वसंभारान् परिकल्पयेत् ॥ ७५ ॥
 वाजिनां भेषजार्थाय भाण्डानि च विनिक्षिपेत् ।
 अगदानोपधीः स्नेहान् वर्तीश्च लवणानि च ॥ ७६ ॥
 भेषजागारसविधेः कुर्याच्चारिष्टमन्दिरम् ।
 भवनं व्याधितानां च कार्यं वासाय वाजिनाम् ॥ ७७ ॥
 सुगुप्तं तच्च कर्तव्यं पूर्वनिर्दिष्टवैश्ववत् ।
 संवद्धं च विधातव्यमेतद् वेश्मचतुष्टयम् ॥ ७८ ॥

उद्यानभूमयः कार्याः कूजत्पिकमधुव्रताः ।
 ऋतवः फलपुष्पाद्यैः स्वैः स्वैश्चिह्नैरलङ्कृताः ॥ ३६ ॥
 मनोरमैर्विशेषैश्च खगैश्च समयोचितैः ।
 कादम्बकुररक्रौञ्चहंससारसमेखलाः ॥ ३७ ॥
 तीरान्तोद्गतवानीरकेतकीपण्डमण्डिताः ।
 जलान्तलीनमत्स्यैश्च सञ्छन्ना नलिनीवनैः ॥ ३८ ॥
 लेख्याश्च गृहभिर्त्तीनामधोभागेषु दीर्घिकाः ।
 फलैः समं समक्षेक्षुर्मणिकाञ्चनभाजनाः ॥ ३९ ॥
 विन्यस्तपद्मिनीपत्राः सौत्पलाः पानभूमयः ।
 विचित्रातोयहस्ताश्च नृत्यगीतविचक्षणाः ॥ ४० ॥
 मुदिता ललना लेख्याः प्रेक्षासङ्गीतभूमिषु ।
 प्रकल्प्याः पञ्जरस्थाश्च चकोरशुकसारिकाः ॥ ४१ ॥
 प्रहृष्टाः परपुष्टाश्च मधुराश्च सकुक्कुटाः ।
 इति यानि मदिष्टानि प्रयोक्तव्यानि वैष्मनि ॥ ४२ ॥
 तानि सर्वाणि शस्तानि सर्वोपकरणेष्वपि ।
 देवयोनिगणास्तद्वत् पुरुषाश्च विनिन्दिताः ॥ ४३ ॥
 साक्रन्दाश्च न शस्यन्ते पीठशय्यासनादिषु ।
 पुरस्तात् कीर्तितान्यत्र प्रयोक्तव्यानि यानि च ॥ ४४ ॥
 तानि शस्तानि कक्षासु सभादेवकुलेषु च ।
 दिव्यमानुषसम्बद्धान्याख्यानाख्यायिकादिषु ॥ ४५ ॥
 प्रोक्तानि तानि तावन्ति शुभान्यालेख्यकादिषु ।
 इति कथितप्रयोज्यं योजनीयं च बुद्ध्या
 भवनशयनकक्षादेवधिष्ययादिकेषु ।
 विरचयति यथोक्तं निन्दितं वर्जयेद् यः
 स भवति नृपतीनां शिल्पिनां चार्चनीयः ॥ ४६ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणवृषधारापरनामि बास्तुशास्त्रे
 अप्रयोज्यप्रयोज्यं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

अथ शिलान्यासविधिर्नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

अथ ब्रूमः शिलान्यासविधिं यथागमम् ।
तत्रोदगयने पुण्ये शुक्लपक्षे शुभेऽहनि ॥ १ ॥
स्थिरग्रहस्य दिवसे करणे च गुणान्विते ।
तिष्येऽश्विनीपु रोहिण्यामुत्तरेष्वपि च त्रिषु ॥ २ ॥
रेवत्यां श्रवणे हस्ते शिलाविन्यासमाचरेत् ।
स्थिरस्य राशेरुदये सौम्यमित्रावलोकिते ॥ ३ ॥
सम्यग्हनिमित्तशकुनस्वस्तिपुण्याहवाचिते ।
हर्षोदये च मनसः कुर्याद् वास्तोर्निवेशनम् ॥ ४ ॥
भद्रः प्रकृत्या शास्त्रज्ञः शुचिः स्नातः समाहितः ।
कर्मारभेत स्थपतिः कृतदेवार्चनक्रियः ॥ ५ ॥
पूर्णां समामविकलां चतुरश्रामनिन्दिताम् ।
शिलामाद्यां चये साध्वीं परीक्षेत विचक्षणः ॥ ६ ॥
कुम्भाङ्कुशध्वजच्छत्रमत्स्यचापरतोरणः ।
दूर्वानागफलोष्णीपपुष्पस्वस्तिकवेदिभिः ॥ ७ ॥
नन्दावर्तः सचमरैः कूर्मपद्मनिशाकरैः ।
वज्रैः मण्डस्तैः प्राकारैर्भूषिताः कर्मणो हिताः ॥ ८ ॥
दीर्या ह्रस्वाल्पविपमालोमाध्यातापरीक्षिता ।
दिङ्मूढा चाङ्गहीना च साख्यज्जारा सशर्करा ॥ ९ ॥
खण्डा दुर्पकनिभिन्ना कृष्णा दोषभयावहा ।
गृणां पशुतुरङ्गाणां पदाङ्गाः स्वास्तियुद्धये ॥ १० ॥
क्रव्यान्मृगविट्जानां पादः स्पृष्टास्तु वर्जयेत् ।
नन्दाभद्रानयापूर्णाधनमः स्युरिमाः शिलाः ॥ ११ ॥
यामिष्टी काश्यपी तद्वद् भार्गव्याङ्गिरसीति ताः ।
तत्र मागुर्नरे देशे मन्त्रिरेणव्य वायुनः ॥ १२ ॥

१. 'हस्तपञ्चमा' (१) क. 'हस्तपञ्चमा' ग. पङ्कः । २. 'पु' ग. ग. पाङ्कः ।

३. 'रा' क. पङ्कः । ४. 'शर' क. 'वध' ग. पङ्कः । ५. 'रा' ग. पाङ्कः ।

नैर्ऋत्यां वा सकुसुमां समां गोचर्मसम्मिताम् ।
 वेदीं सगन्धकलशां चतुश्चां प्रकल्पयेत् ॥ १३ ॥
 आग्नेय्यामादितो नन्दां स्थापयेत् क्रमशः शिलाम् ।
 अकालमूलैरव्यङ्गैः सपत्रोत्पलपल्लवैः ॥ १४ ॥
 सर्वोपधिहिरण्याद्यैर्हैमराजतमृन्मयैः ।
 कुम्भैस्तान्नमयैश्चापि मन्त्रैस्तामभिषेचयेत् ॥ १५ ॥
 तीर्थप्रसवणाम्भोभिः सरस्वाक्षतपङ्कजैः ।
 सुगन्धिभिः संपुण्याहमभिषेकं प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥
 जाह्नवीयमुनारेवासरस्वत्यादिसम्भ(वैः?वम्) ।
 महानदीजलं शस्तं शुभतीर्थमव तथा ॥ १७ ॥
 तथाद्रिवनवेशन्तदेवायतनजानि च ।
 अभिषेकार्थमम्भं सन्ति च्छालाभमुपाहरेत् ॥ १८ ॥
 मन्त्रेणानेन चैतासामभिषेकं समाचरेत् ।
 हिरण्यवर्णाः पावन्यः शुचयो दुरितच्छिदः ॥ १९ ॥
 पुनन्तु शान्ताःश्रीमत्य आपो युष्मान्मधुच्युतः ।
 मन्त्रपूतेन पयसा स्नापयित्वा ततः शिलाम् ॥ २० ॥
 स्थपतिर्गन्धकल्केन महत्येनानुलेपयेत् ।
 हिमचैन्दनपूर्णेन व्यवकीर्य सुगन्धिना ॥ २१ ॥
 तरसा छादयेद्देवां सलजैः पुष्पदामभिः ।
 धूपमाल्योपहारैश्च दधिमांसाक्षतादिभिः ॥ २२ ॥
 पूजयेदिष्टकां देवीं वस्त्रयुग्मैश्च पुष्कलैः ।
 निवेशनान्ते नैर्ऋत्यां तदा विमानवस्थितान् ॥ २३ ॥
 सम्पत्तुल्लयाञ्च शुचीन् प्राज्ञानर्चयेद् दक्षिणाफलैः ।
 ओङ्कारस्वस्तिपुण्याहगीतवादित्रनिस्वनैः ॥ २४ ॥
 कर्ता जनितरोमाञ्चस्तेभ्यः कुर्यान्नमस्कियाम् ।
 निवेद्य वास्तोष्पतये भूतेभ्यश्च ततो बलिम् ॥ २५ ॥

तासां चतुर्णामन्याः कुपोद्गतिन्याः पृथक् ।
 माकारस्तमिनकाङ्क्षं द्वे तेषां श्रीवन्मन्त्राणां ॥ २६ ॥
 नन्दानर्त्तस्तु पूर्णायां मन्त्रे(रेकोऽद्वैतः) यथाक्रमम् ।
 कर्णे प्राग्दक्षिणे नन्दां वास्तुनः स्थापयेदप्यः ॥ २७ ॥
 अन्याः क्रमेण भद्राद्याः कोणेध्वजेषु च त्रिषु ।
 प्रतिष्ठापनमन्त्राभ्यं तासां चतुर्णामपि ॥ २८ ॥
 पत्वार ऋषिभिर्गीताः प्राञ्चनारम्भदर्शनाः ।
 वीर्येणादिवराहस्य वेदार्यस्तभिर्मन्त्रि(ताः?ताम्) ॥ २९ ॥
 वसिष्ठं नन्दिनीं नन्दां प्राक् प्रतिष्ठापयाम्यहम् ।
 गुणहर्तं गुदिवसे सा त्वं नन्दे! निवेदिता ॥ ३० ॥
 आयुः कारयितुर्दीपं श्रियं चाभ्यामिहावह ।
 भद्रासि सर्वतोभद्रा भद्रे! भद्रं विधीयताम् ॥ ३१ ॥
 कश्यपस्य प्रियमुते! श्रीरस्तु गृहमेधिनः ।
 जये! विजयतां स्वामी गृहस्यास्य महात्मनः ॥ ३२ ॥
 आचन्द्रार्कं यशश्चास्यं भूम्यामिह विरोहतु ।
 त्वयि सम्पूर्णचन्द्राभे! न्यस्तायां वास्तुनस्तले ॥ ३३ ॥
 भवत्येष गृहस्वामी पूर्णे! पूर्णमनोरथः ।
 इति मूलचं(योऽयं) मन्त्रैः कुर्यात् स्वस्तिकवाचनैः ॥ ३४ ॥
 ताभिर्हिरण्यवर्णाभिः शिलाभिः सममद्भुतम् ।
 प्राग्दक्षिणवचना धन्या न प्रत्यग्दक्षिणाप्लवा ॥ ३५ ॥
 इष्टकाश्चैत्यभवनप्राकारपुरकर्मसु ।
 चित्तानि चित्तिविन्यासे चतुर्मुखनिकेतने ॥ ३६ ॥
 पुरोधाः शान्तिवेदीषु प्रतिमास्थापनेषु च ।
 याज्ञिकेन विधानेन क्रमशः स्थापयेच्छिलाः ॥ ३७ ॥

१. 'रे च स्व', २. 'हेया श्री', ३. 'य' ग. पाठः । ४. 'ष्ट',

५. 'स्वा', ६. 'मे' क. पाठः । ७. 'म' ल. ग. पाठः । ८. 'भिः' कशिलाभिः समं
 द्रुवम्, ९. 'के', क. पाठः ।

§ त्रैशोकौर्णसंभा(सं?ख्यं)स्ताः सामाभिः सं महाव्रतैः ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्भिर्बृहत्या च यथाक्रमम् ॥ ३८ ॥

चयान् समस्तांश्चिनुयाच्चतुरो विरमेत् ततः ।
ज्ञात्वा भित्तिप्रमाणं च चितेध्वयचतुष्टयम् ॥ ३९ ॥

समाप्यमादिकर्मैवं कनिष्ठं च यथोत्तरम् ।
प्रतिष्ठितास्ताः प्रथमं भूतले सुस्थिताः समाः ॥ ४० ॥

न चालयेच्चालने स्याद् गृहभर्तुर्महद् भयम् ।
कम्पने च भयं विद्यादेतासां स्थिरतां पुनः ॥ ४१ ॥

स्थपतेर्गृहभर्तुश्च मङ्गलं परमं विदुः ।
प्राग्दक्षिणैषां चलने गृहभर्तुर्महद् भयम् ॥ ४२ ॥

भार्याविनाशो नैर्ऋत्यां शून्यं(?) भीतिर्मरुदिशि ।
गुरोश्च भयमैशान्यामपचारेऽपि तद् भवेत् ॥ ४३ ॥

प्रथमं स्थापि(तेनै?ताने)वं स्तम्भानपि न चालयेत् ।
नोद्धरेत् प्रणुद्याच्च विधिस्तुल्यो यतोऽनयोः ॥ ४४ ॥

विन्यासं प्रथमं तस्मात् कुर्यात् सम्यक् समाहितः ।
शिलानां स्थपतिस्तद्वत् स्तम्भानामपि सर्वथा ॥ ४५ ॥

द्वारप्राकारशालानां नगराणां च वेश्मनाम् ।
तत्प्रमाणो विधिर्यस्मात् तस्मात् तत्रादृतो भवेत् ॥ ४६ ॥

एवं शिलान्यासविधानमेतद् यथावदस्माभिरिहोपदिष्टम् ।
अस्मिन् कृते वेश्मसुरालयादि निष्पत्तिमभ्येति विनैव विग्रम् ॥

इति मदराजाधिपराजभ्रीमोजदेवविरचिते समग्रद्वग्व्यूजधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

शिलान्यासविधिर्नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥

१. 'सु' ख. ग. पाठः । २. 'स्म', ३. 'नयोश्चाल', ४. 'न्या', ५. 'तत्रा-
श्मात्तत्रा' क. पाठः ।

§ 'त्रैश्वे' इति मानूकानु दृश्यते ।

अथ बलिदानविधिर्नाम पदत्रिंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामो यद्विरूपविधेः क्रमम् ।

येन येनार्चिता देवास्तुत्यन्ति समदेवताः ॥ १ ॥

मण्डलं याम्तुनो मध्ये गोमयेन प्रकल्पयेत् ।

कम्पनं तत्र विन्यसेत् सप्तगुणं सत्ताञ्जनम् ॥ २ ॥

याम्तुदेवास्ततः कल्प्या यथास्थाननियोगतः ।

सर्भूर्पर्विविधैर्मन्त्रैरर्घ्यं यथाशिवेदयेत् ॥ ३ ॥

अर्चयेद् विश्वकर्माणं मान्यैर्भूर्पर्विलेपनैः ।

भक्तैः फलैर्वैद्यैर्विधैः पूजयेत् गुग्गुमादितः ॥ ४ ॥

आज्येन पयसा दध्ना पूजयेच्छिखिनं पुनः ।

शालिगोधूममुद्राद्यैर्धान्यैः पय्यन्यमर्चयेत् ॥ ५ ॥

जयन्तं पूजयेदाघ्रद्राक्षाखर्जुरिकादिभिः ।

मालतीमल्लिकाभिश्च पूजयेत् त्रिदशाधिपम् ॥ ६ ॥

पुष्पै रक्तस्तथा धूपै रक्तचन्दनलेपनैः ।

ततः सूर्यं जगन्नाथं पूजयेद्धोकचक्षुषम् ॥ ७ ॥

जम्बीरैर्वीजपूरैश्च नारङ्गैः पीतकैः फलैः ।

पूजयेत् सत्यनामानं देवं तेन स तुष्यति ॥ ८ ॥

मत्स्यमांसैश्च तुष्यन्ति सर्वे रक्षःपुरोगमाः ।

सितैः फलैर्नारिकेलैर्भृशैश्च परितुष्यति ॥ ९ ॥

गन्धधूपप्रयोगैश्च नभोनामानमर्चयेत् ।

पुष्पैः सुगन्धिभिः शुक्लैर्मस्तुतः पारितुष्यति ॥ १० ॥

कृसरं मधुसंयुक्तं पूष्णे भक्त्या निवेदयेत् ।

वितथं तु शुभैरन्यैर्पद्ममांसविवर्जितैः ॥ ११ ॥

पूजितस्तुष्टिमायाति विवस्वांश्च महामुनिः ।

पुष्पैः सपुष्पकैस्तुष्टिमवाप्नोति गृहधृतः ॥ १२ ॥

मत्स्यमांसयुतैर्भक्ष्यैर्यमतुष्टिः सदा भवेत् ।
 पुत्रागागरूपेन गन्धर्वानर्चयेद् बुधः ॥ १३ ॥
 मृगमांसयुतैर्भक्षैर्भृङ्गराजं च तर्पयेत् ।
 राजजम्बूफलैर्विल्वैर्देवमभ्यर्चयेन्मृगम् ॥ १४ ॥
 पायसमधुसंपुक्तमांसैर्भक्तैश्च शोभनैः ।
 कर्पूरसुरभिद्रव्यगर्भैः संपूजयेत् पितृन् ॥ १५ ॥
 सपुष्पमोदकैर्लज्जितैः पल्लवैश्च त्रिमिश्रितैः ।
 दौवारिकं मयत्रेण पूजयेद् विघ्नकारकम् ॥ १६ ॥
 अपूर्वैः शोभनैर्गन्धैर्धूपैर्माल्यैरनुत्तमैः ।
 पुष्पैः कण्टकजातीनां सुग्रीवं पूजयेत् सदा ॥ १७ ॥
 सपुष्पैर्ला(पे?)ज)कैर्मक्ष्यैर्दधिपुक्तान्नपायसैः ।
 अर्चयेत् पुष्पदन्तं तु यशोवीर्यान्वितं सुरम् ॥ १८ ॥
 मांसैश्च मूकरादीनां वनतेयं सदार्चयेत् ।
 वरुणं च महासत्त्वं पूजयेद् धूपचन्दनैः ॥ १९ ॥
 राहुं च मांससंपुक्तैस्तर्पयेद् भक्ष्यभोजनैः ।
 रुधिरैण प्रदत्तेन तुष्टिमेति शनैश्चरः ॥ २० ॥
 मांसेन तु क्षयस्तुष्टिं रोगाणामधिपो व्रजेत् ।
 मेदसा पूजयेद् रोगं सर्वलोकभयङ्करम् ॥ २१ ॥
 वासुकिं धीरदानेन पूजयेत् सततं नरः ।
 पूर्वयत् पूजयेद् देवं विश्वकर्माणमीश्वरम् ॥ २२ ॥
 सितप्रसूनविन्यासैर्भल्लाटं पूजयेद् बुधः ।
 दधिपुक्तेन चाग्नेन सोमं सर्वत्र पूजयेत् ॥ २३ ॥
 कुबेरं धूपदानेन पूजयेत् सततं नरः ।
 अदितिं च सुवर्णेन पद्मरपि च पूजयेत् ॥ २४ ॥
 अर्कमन्दारमालाभिर्द्वैपमं च समर्चयेत् ।
 अन्धेषामपि देवानामर्चनं धूपसाम्प्रतैः(?) ॥ २५ ॥

सर्वपुष्पफलैर्धर्मा कार्यं बुद्धिमता सदा ।

इत्येते बलयः सर्वे शान्त्यर्थं परिकल्पिताः ॥ २६ ॥

शोधने कर्षणे भूमेः साधने रूपकल्पनं ।

गृहे प्रवेशने रम्ये तिथिमभ्युदयेषु च(?) ॥ २७ ॥

स्कन्धाचारनिवेशेषु पुरग्रामनिवेशने ।

देवालयधित्तिपवेश्मनिवेशनेषु

मोक्तान् बलीन् प्रवितरेत् प्रयतः सुरेभ्यः ।

भारम्भमन्यमपि वास्तुगतं चिकीर्षुः

कुर्वन्निमं विधिमभीप्सितभाजनं स्यात् ॥ २८^१ ॥

इति महाराजाधिराजभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारपरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

बलिदानविधिर्नाम पट्त्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ कीलकसूत्रपातो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

वर्णानां यानि दारुणि कीलकार्थं नियोजयेत् ।

इदानीं तानि वक्ष्यामि श्रेयःकीर्त्तिहिताय च ॥ १ ॥

खदिरोदुम्बराश्वत्थशालशाकधवार्जुनाः ।

अञ्जनः कदराशोकतिनिशारुणचन्दनाः ॥ २ ॥

शिरीषसर्जन्यग्रोधवेणवः कीलकर्मणि ।

पुन्नामानो द्रुमाः शस्ताः स्त्रीनामानो विगर्हिताः ॥ ३ ॥

अश्वत्थः खदिरेथैर्ता विमाणां वृद्धिकारका ।

रक्तचन्दनवेणूथकीर्त्त्या क्षत्रस्य पूजिर्ता ॥ ४ ॥

शाकध खदिरश्चेति सामन्तानां हिताविमौ ।

कीर्त्त्या शालशिरीषोत्प्या वैश्यानां कीर्त्तिर्ता शुभौ ॥ ५ ॥

शूद्रजातेस्तु तिनिशधवार्जुनसमुद्भवाः ।

वैश्यवैश्मसु सौभाग्यकार्ये च स्युरशोकजाः ॥ ६ ॥

न्यग्रोधो वणिजां धाम्नि भूमिकर्मण्युदुम्बरः ।
 महामा(त्रीत्रा)र्ध्ववेद्यानां कीलाः सर्जार्जुना गृहे ॥ ७ ॥
 विमाणां सर्ववर्णोत्थाः क्षत्रियाणां त्रिवर्णजाः ।
 वर्णद्वयोक्ता वैश्यानां शूद्राणां स्वानुलोमतः ॥ ८ ॥
 प्रतिलोमा न कर्तव्याः कीलका भूतिमिच्छता ।
 प्रमाणान्यथ कीलानां निगद्यन्ते पृथक् पृथक् ॥ ९ ॥
 द्वाविंशदङ्गुलाः कीला विमाणां स्युः शुभावहाः ।
 क्षत्रियाणां पुनश्चाष्टाविंशत्यङ्गुलसम्मिताः ॥ १० ॥
 चतुर्विंशत्यङ्गुलाश्च वैश्यानां शुभदायिनः ।
 विंशत्याद्यङ्गुलैः कीलाः शूद्रजातेस्तु ते हिताः ॥ ११ ॥
 षडङ्गुलपरीणाहाः सर्वेष्वेते शुभावहाः ।
 ब्राह्मणक्षत्रियविशां वेदाष्टाश्रपदश्रयः ॥ १२ ॥
 षडश्रयस्तु शूद्रस्य प्रकृतेस्तु यदृच्छया ।
 दार्ममौञ्जीर्णकार्पासं विमादीनां यथाक्रमम् ॥ १३ ॥
 अर्धपर्वपरीणाहं दृढं सूत्रं तु वर्तितम् ।
 अलाभे स्वस्य सूत्रस्य प्रोक्तादन्यतमं बुधः ॥ १४ ॥
 गृह्णीयात् सूत्रमन्ये तु गृह्णीयुः स्वेच्छयेव ते ।
 इत्थं संभृत्य सम्भारान् गृहभर्ता शुभेऽहनि ॥ १५ ॥
 शुक्लपक्षे शुचिः स्नातः स्थपतिश्च सिताम्बरः ।
 गृहस्थाननिमित्तात् तु देवस्थानानि लक्षयेत् ॥ १६ ॥
 कुसुमाक्षतमर्ग्यश्च कर्तव्या गृहदेवताः ।
 आर्द्रा स्थानानि शङ्कूनां परीक्षेत समन्ततः ॥ १७ ॥
 तेषु सर्वेषु कर्तव्यमर्चनं तु यथाविधि ।
 गृहस्य मध्ये सिक्त्वा तु निरूप्य ब्रह्मणः पदे ॥ १८ ॥
 गोमयेन समालिप्तां कुर्याद् वेदीं सुलक्षणां ।
 चतुरर्धां चतुर्द्वारामक्षतः सुप्रतिष्ठिताम् ॥ १९ ॥

१. 'राविविद्यानां' ल., 'स्वविद्यानां' ग. पाठः । २. 'दद्यान्',
 'धिये', ४. 'ना', ५. 'पाठ', ६. 'पदक' ल. ग. पाठः ।

तस्या मध्ये प्रतिष्ठाप्यः कुम्भो र्द्विमांश्य राजनः ।
 ताम्रको मृन्मयां वापि पूर्वालाभे परः परः ॥ २० ॥
 अकालमूलः सोऽन्यज्ञो जलपूर्णः स्वलङ्कृतः ।
 मणिरत्नप्रवालैश्च स्वर्णरूप्येण गर्भिनः ॥ २१ ॥
 प्रतिष्ठा(प्या?प्योऽ)ध्वतः पुष्पफलबीजसमन्वितः ।
 श्वेतेन चन्दनेनैव चर्चयित्वा समन्ततः ॥ २२ ॥
 तस्योपरिष्ठाद् विन्यस्येत् क्षीरवृक्षस्य पल्लवम् ।
 सुगन्धिनार्थं धूपेन धूपयित्वा चतुर्दिशम् ॥ २३ ॥
 वेष्टयेदहतेनैव शुक्रयस्त्रेण सर्वतः ।
 वास्तुमध्ये यतो ब्रह्मा कुम्भरूपं(पं?पः)स तिष्ठति ॥ २४ ॥
 कुम्भस्योत्तरभागे तु कीलकान् स्थापयेद् शुभः ।
 कीलानर्थां परीक्षेत स्थापयेच्च यथाविधि ॥ २५ ॥
 श्वेतचन्दनलिप्तांस्तान् श्वेतपुष्पैर्विभूषयेत् ।
 सालक्तकान् सुरभिणा धूपेन च सुधूपितान् ॥ २६ ॥
 ऊर्णामयेन सूत्रेण त्रिवर्णेनाभिवेष्टयेत् ।
 मधुसर्पिर्दधिक्षीरैर्मूलभागेषु लेपयेत् ॥ २७ ॥
 अर्चयेत् परशुं सूत्रमष्टीलादीनि सर्वतः ।
 अथोपकरणान्यत्र धूपपुष्पाक्षतादिभिः ॥ २८ ॥
 ततः पूर्वोत्तरे वास्तोर्भागे सप्तार्चिषः पदे ।
 गोमयेन समालिप्ते कुशास्तरणमास्थितः ॥ २९ ॥
 अग्निकार्यं प्रकुर्वीत पुरोधाः शान्तिमेव च ।
 सांवत्सरैः शुचिः स्नातः कृतस्नानः(?) समाहितः ॥ ३० ॥
 शङ्खुना साधयेद्धर्मं सम्यक् तद्वटिकाथवा(?) ।
 रात्रिलग्नं तु नक्षत्रैर्मध्यास्तोदयसंश्रितैः ॥ ३१ ॥

१. 'च', २. 'यवीधेत'(!) ख. ग. पाठः । ३. 'तास्ते श्वे', ४. 'काः',
 'ताः' क. पाठः । ५. 'शीलावानि' ख. ग. पाठः । ६. 'रशुचिः'
 'शुचुतता', ७. 'तं खाटि' ख. ग. पाठः ।

एवं संसाधयेद्ध्रं यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः ।
 पूजया तुष्टिकारिण्या पूजयेच्च पुरोहितम् ॥ ३२ ॥
 अभ्यर्चिते यतस्तस्मिन् ब्रह्मा भवति पूजितः ।
 सांवत्सरस्य कर्तव्या ततः पूजा यथाविधि ॥ ३३ ॥
 सांवत्सरेऽर्चिते यस्मात् पूजितः स्याद् बृहस्पतिः ।
 स्थपतिं पूजयेत् पश्चात् त्वष्टृतुष्टिचिकीर्षया ॥ ३४ ॥
 तदधीनं यतः कर्म शुभं वा यदि वाशुभम् ।
 श्वेतचन्दनदिग्धांस्ताञ् श्वेतपुष्पैश्च पूजितान् ॥ ३५ ॥
 सदशैरहतैर्वस्त्रैरह्नुलीयैः प्रपूजयेत् ।
 परिकर्मकरा ये च तान् यथाशक्ति पूजयेत् ॥ ३६ ॥
 हेम्ना बस्त्रादिदानैश्च वाग्मिर्वा परितोषयेत् ।
 यथा सुमनसस्ते स्युस्तथा कर्तव्यमादरात् ॥ ३७ ॥
 ततः स्थपतिराचम्य बलिकर्म समाचरेत् ।
 सूत्रपाते बलिं धीमान् सार्वभौतिकमाचरेत् ॥ ३८ ॥
 तस्यालाभे बलिः कार्यो यो भवेत् सोऽभिधीयते ।
 विदधीत चरुञ् श्वेतरक्तपीतासितान् पृथक् ॥ ३९ ॥
 पायसं कुसरं क्षीरं निष्पावाञ् श्वेतमोदनम् ।
 पार्विकादधिरूपांश्च पललोह्यापिकाघृतम् ॥ ४० ॥
 दध्योदनं च संमिश्रं देवताभ्यो निवेदयेत् ।
 तिलैर्घृतेन सहितैर्देवमग्निं च पूजयेत् ॥ ४१ ॥
 ततश्च पायसं दध्ना ब्रह्मस्थाने निवेदयेत् ।
 ततश्चानुक्रमेणैव देवताभ्यो बलिं हरेत् ॥ ४२ ॥
 बलिकर्म यथान्यायं कृत्वा च द्विजवाचनम् ।
 स्वशास्त्रीयाञ् शुचीन् प्राज्ञान् पूजयेद् दक्षिणाफलैः ॥ ४३ ॥
 ओङ्कारस्वस्तिपुण्याहैर्गातवादित्रनिस्वनैः ।
 ततो विमैः सह स्वामी कुर्यात् तस्य प्रदक्षिणम् ॥ ४४ ॥

अक्षतान् प्रथमं कुम्भे दापयित्वा द्विजोत्तमः ।

ततो दक्षिणपूर्वेण गत्वा पुण्याहवाचकः ॥ ४५ ॥

अहताम्बरसंवीतः शुचिः स्थपतिरासने ।

निपद्य माह्मुस्रः शङ्कुं धृत्वा दक्षिणपाणिना ॥ ४६ ॥

पश्चादादाय यामेन प्रतिष्ठाप्य च भूतले ।

मन्त्रानमूञ् जपन् वीरो हन्यात् परशुना ततः ॥ ४७ ॥

विशन्तु ते तलं नागा लोकपालास्तथैव च ।

प्रतिष्ठन्तु गृहं चास्मिन्नायुर्यलकरं भवेत् ॥ ४८ ॥

प्रहारान् सुस्थिरानष्टौ दद्यात् कीलस्य मूर्धनि ।

हन्यमाने ततः कीले निमित्तान्युपलक्षयेत् ॥ ४९ ॥

गोविप्ररथनागाढ्याः कन्या नृपवरस्त्रियः ।

शङ्खदुन्दुभिर्वंशानां तथा गीतस्य च ध्वनिः ॥ ५० ॥

आविर्भवति यद्यस्मिन् हन्यमाने प्रभुस्तदा ।

सततं सुखमामोति शान्त्यैश्वर्यैश्च वर्धते ॥ ५१ ॥

हतं क्षुतं विपन्नं वा निपेधः सूत्रकीलयोः ।

पापण्डिनां च सर्वेषां दर्शनं न सुखावहम् ॥ ५२ ॥

दृष्ट्वा शुभनिमित्तानि ततः शङ्कुं निवेशयेत् ।

हन्यमानो यदा कीलो विशेद् भूमौ शनैः शनैः ॥ ५३ ॥

कर्मसिद्धिर्भवेत् तत्र गृहं रत्नपरिच्छदम् ।

हन्यमानोऽपि न विशेद् धरित्रीं कीलको यदा ॥ ५४ ॥

न तत्र कर्मसिद्धिः स्यादनिमित्तं च लक्षयेत् ।

एकेनापि प्रहारेण यत्र कीलो विशेन्महीम् ॥ ५५ ॥

नै सिद्धिं याति तत्रैकः कृतं वा नोपभुज्यते ।

आयस्याष्टीलया हन्यान्न काष्ठेन कथञ्चन ॥ ५६ ॥

काष्ठेन ताडितः कीलो वह्निदोषकरो भवेत् ।

अश्मना यदि ताड्येत तदा व्याधिं प्रयच्छति ॥ ५७ ॥

१. 'कुम्भे' क. पाठः । २. 'ज्व' ख., 'ड' ग. पाठः । ३. 'रः' क. पाठः ।

४. 'शान्त्यैश्च' क, 'शान्त्यर्थैश्च', ख. ग. पाठः । ५. 'स' ख. ग. पाठः ।

ऐन्द्रीं प्रतिनतः कीलो धनसम्मानकारकः ।
 आग्नेय्यां मणते कीले भवत्यग्निभयं महत् ॥ ५८ ॥
 याम्यायां मरणं राज्ञां दिशि राक्षसतो भयम् ।
 धननाशस्तु वारुण्यां वायव्यां रोगतो भयम् ॥ ५९ ॥
 सौम्यं सौम्यान्ते राजपसादायेशतो गतः ।
 कीलके कूर्चके जाते पुत्रपौत्रान्वयैर्गृहे ॥ ६० ॥
 परमाशुद्धिमाप्नोति धनधान्यैश्च वर्धते ।
 हन्यमानो यदा यत्नात् कीलः कश्चिदपि स्फुटेन् ॥ ६१ ॥
 नाशं विद्यात् तस्य पत्न्या ज्येष्ठस्य तनयस्य वा ।
 यदि भज्येत कीलः स्वात् स्वामिनो जायते वधः ॥ ६२ ॥
 यदा कीलः पतेद्धस्ताद् भ्रंशः स्यात् स्थपतेस्तदा ।
 हस्तभ्रष्टश्च(?) स भवेदष्टीले हस्तविच्युते ॥ ६३ ॥
 सुखेन हन्यमानश्चेत् कीलः स्वस्थो न जायते ।
 अष्टौ प्रहारानपरास्तस्य दद्यात् तदा पुनः ॥ ६४ ॥
 स्रग्गन्धधूपोपहारैः कुर्याच्च परिपेचनम् ।
 इदं साम महापुण्यं परिचिन्त्य समासतः ॥ ६५ ॥
 त्रैशोकं तु जपेद् विद्वान् यावच्छङ्कुभिपेचनम् ।
 गत्वाथ नैर्ऋतीमाशां ततः शङ्कुं निवेशयेत् ॥ ६६ ॥
 ऊर्णायवेन साम्रास्य सम्यक् स्तपनमाचरेत् ।
 वायोर्दिशं ततो गत्वा तत्र शङ्कुं निवेशयेत् ॥ ६७ ॥
 अभिपेकं महारत्नसाम्रा तस्य समाचरेत् ।
 अथैशानीं दिशं गत्वा शङ्कुं तस्यां निवेशयेत् ॥ ६८ ॥
 भाग्रेण साम्रा कुर्वीत प्राग्बत् तस्याभिपेचनम् ।
 ततोऽनु सूत्रं वधीयात् सव्यं द्विगुणवेष्टितम् ॥ ६९ ॥
 प्रदक्षिणं प्रसार्यतदुक्तः शङ्कुक्रमो यथा ।
 (मीव)ध्यमानं यदा सूत्रं शङ्कुः किमपि मुञ्चति ॥ ७० ॥

१. 'च गते' ख. ग. पाठः । २. 'च' ख. पाठः । ३. 'लस्यात्', ४. 'स्व',
 ५. 'लद्वारयो', ६. 'वर्त्य स' क. पाठः । ७. 'यवेशन' क, 'यवेश' ख. पाठः ।
 ८. 'प्राग्बत् (प्राग् ब) मत्' क. पाठः । ९. 'कुः' ख. ग. पाठः ।

मन्त्रं पुनश्च विनाशितं राक्षसिहृत्यवे ।
मन्त्रं बन्धः प्रहर्षणो यावत् पूर्वं प्रसार्यते ॥ ७१ ॥

कृष्णमणिं बाहुना पोषं । तिष्ठं न दुष्यति ।
द्वयं प्रसार्य विनाशितं पूर्वं प्रकल्पितान् ॥ ७२ ॥

संस्तु संस्तु ततः स्थानेननेन विधिना बुधः ।
महुरूपानेष दातव्याः सिताद्याथरवः क्रमात् ॥ ७३ ॥

प्राग्दक्षिणस्या विदिशो मन्त्रं चमं हृदा जपेत् ।
मारुतानां च सर्वेषां मानवानां नर्थश्च च ॥ ७४ ॥

बलिं तेषु प्रयच्छामि मन्त्रेण परिमन्त्रितम् ।
रक्तं बलिमुपादाय नैर्ऋत्यभिमुखस्तथा ॥ ७५ ॥

नैर्ऋत्यधिपतिश्चैव नैर्ऋत्यां ये च राक्षसाः ।

बलिं तेषु प्रयच्छामि रक्तमोदनमुत्तमम् ॥ ७६ ॥

कृष्णं बलिमुपादाय गत्वा च दिशमानिलीम् ।

नमस्ते नागराजाय ये चान्ये तं समाश्रिताः ॥ ७७ ॥

बलिं तेषु प्रयच्छामि कृष्णमोदनमुत्तमम् ।

बलिमुदधृत्य हारिद्रमैशानीमाश्रयेन् दिशम् ॥ ७८ ॥

नमो रुद्रेषु सर्वेषु ये चान्ये तान् समाश्रिताः ।

प्रयच्छामि बलिं तेषां हारिद्रौदनमुत्तमम् ॥ ७९ ॥

एवमेतान् बलीन् सर्वान् यथावत् प्रतिपादयेत् ।

ततः कुम्भोदकं पुण्यं साम्ना दिव्येन मन्त्रयेत् ॥ ८० ॥

वामदेव्येन कुर्वीत मोक्षणं तेन वास्तुनः ।

हुमा विप्रादीनामिति निगदिताः शङ्कुघटने

फलं यच्छङ्कोश्च स्फुटमिह निमित्तानि बहुशः ।

तथा सूत्राताने विधिरनु च मन्त्रैः प्रतिदिशं

बलिः कीलेषूक्तस्त्रिदशपरितोपाय विधिवत् ॥ ८१ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणगूत्रधारापरनाशि यास्तुशास्त्रे

कीलकगूत्रपातो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ वास्तुसंस्थानमातृका नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामो वास्तुसंस्थानमातृकाम् ।
 निवासहेतवे सम्यक् सर्वकर्मोपजीविनाम् ॥ १ ॥
 चतुरश्रं समं * साचि दीर्घं दृत्तं च शम्भुकम् ।
 शकटाक्षभगादर्शवज्रकन्धाकृतीनि च(?) ॥ २ ॥
 छिन्नकर्णं विकर्णं च शृङ्गाभं धुरसन्निभम् ।
 शंखाननं कूर्मपृष्ठं सदंशं व्यजनाकृति ॥ ३ ॥
 शरावस्वस्तिकाकारं मृदङ्गपणवोपमम् ।
 विशर्करं कवन्धामं यवमध्यसमाकृति ॥ ४ ॥
 उत्सन्न(रा?)नदन्ताभे तथा परशुसन्निभम् ।
 विस्त्रावितं च श्वभ्रं च † प्रलम्बं च विवाहिकम् ॥ ५ ॥
 त्रिकुटं पञ्चकुटं च परिच्छिन्नं तथापरम् ।
 दिक्स्वस्तिकाभं श्रीवृत्तं वर्धमानसमाननम् ॥ ६ ॥
 एणीपदं नरपदं चत्वारिंशत् समासतः ।
 क्षेत्राण्युक्तान्यधामीषां विनियोगो विधीयते ॥ ७ ॥
 चतुश्रे समे राजा शय्याकारे पुरोहिताः ।
 दीर्घे कुमारकाः सेनापतिर्दृत्तायते वसेत् ॥ ८ ॥
 वसेषुः शम्भुकाकारे सर्वे वाढाः सुखार्थिनः ।
 अन्नःपुरं समं समे वाणिजाः शकटाकृता ॥ ९ ॥
 वेद्यास्तु भगसंस्थाने दर्पणाभे सुवर्णकृत् ।
 संस्थानतो वज्रसमे जना नगरगोष्ठिकाः ॥ १० ॥
 वसेषुः ‡ शङ्खसंस्थाने सेत्रे पुत्राभिन्नापिणः ।
 छिन्नकर्णे महामाया विकर्णे मृगलुब्धकाः ॥ ११ ॥
 शृङ्गाभे चक्रदन्धानो गणाचार्याः धुरोपमे ।
 प्र(रा?)नदन्ताः शक्तिमुखे कूर्मपृष्ठे तु मान्डिकाः ॥ १२ ॥

१. 'सकर्म', २. 'शृङ्गाभ', ३. 'व' वा. ग. कठः ।

* पुरोहितादौ नित्यमन्त्रं कारयन्त्या वाक्ताः (१०००)

† विरोधे 'व' 'वि'

यत्र प्रवेशतो वास्तु(१)गृहं भवति वामतः
 तद्धीनबाहुकं वास्तु निन्दितं वास्तुचिन्तकैः ॥ १३ ॥
 तस्मिन् वसन्नल्पवित्तः स्वल्पमित्रोऽल्पवान्धवः ।
 स्त्रीजितश्च भवेन्नित्यं विविधव्याधिपीडितः ॥ १४ ॥
 वास्तुप्रवेशतो यत् तु गृहं दक्षिणतो भवेत् ।
 प्रदक्षिणप्रवेशत्वात् तद् विद्यात् पूर्णबाहुकम् ॥ १५ ॥
 तत्र पुत्रांश्च पौत्रांश्च धनधान्यसुखानि च ।
 प्राप्नुवन्ति नरा नित्यं वसन्तो वास्तुनि ध्रुवम् ॥ १६ ॥
 गृहपृष्ठं समाश्रित्य वास्तुद्वारं यदा भवेत् ।
 मत्स्यक्षायस्त्वसां निन्धो वामावर्तप्रवेशवत् ॥ १७ ॥
 ब्राह्मणो निवसेन्मुख्ये द्विनाम्नि क्षत्रियो वसेत् ।
 वितथे निवसेद् वैश्यः शूद्रः सुग्रीवनामनि ॥ १८ ॥
 एते वैशेषिकाः सर्वे वर्णानामनुपूर्वशः ।
 वास्तुद्वारनिवेशाश्च वासैः सह निरूपिताः ॥ १९ ॥
 यथोत्तरमथोच्यन्ते वर्णानां गृहकल्पनाः ।
 † शूद्रविद्वद्भूमिभूमाणां च राज्ञां च जयकाङ्क्षिणाम् ॥ २० ॥
 सार्धत्रिभूमि शूद्राणां वैश्यं कुर्याद् विभूतये ।
 अतोऽधिकतरं यत् स्यात् तत् करोति कुलक्षयम् ॥ २१ ॥
 वैश्यस्य वर्धयेद् गेहमर्धपञ्चमभूमिकम् ।
 अतिप्रमाणे तत्रास्य धनबन्धुपरिक्षयः ॥ २२ ॥
 क्षत्रियस्य तृदं कुर्यादर्धपष्ठतलं परम् ।
 सम्पदलभ्यते तदतिरिक्तं तु तच्छिदे ॥ २३ ॥
 परं विप्रस्य भवनमर्धसप्तमभूमिकम् ।
 स्वाध्यायाचारभोगार्थमत्युचं तु भयावहम् ॥ २४ ॥
 यजन्ते राजमूयार्थः क्रतुभिर्येऽवनीश्वराः ।
 तर्लरर्धाष्टमस्तेषां कास्येद् भवनोत्तमम् ॥ २५ ॥

आहर्तानेकपञ्चानां राजा राजाधिपथ यः ।
 तस्याप्यर्धाष्टमतलं भवनं सन्निवेशयेत् ॥ २६ ॥
 राजरेयेन वा यथा यो द्विजः स्यात् समाहितः ।
 गवां कोटिप्रदो यो वा सोऽपि तस्मिन् भवेत्(द्यु?)धीः ॥ २७ ॥
 यथाममाणनिर्दिष्टे वसन्तस्ते नृपादयः ।
 प्राप्नुवन्ति परामृद्धिमवृद्धिं तु विपर्यये ॥ २८ ॥
 सपीठतलकं वेद्यमानतः संप्रकीर्तितम् ।
 साधारणेन हस्तेन परं शूद्रस्य विंशतिः ॥ २९ ॥
 चत्वारिंशद् विंशः पष्टिः क्षत्रियस्य प्रशस्यते ।
 अशीतिर्द्विजमुख्यस्य शतहस्ता महीपतेः ॥ ३० ॥
 नातः परं नृणामूर्ध्वममाणं शस्तमुच्यते ।
 देवदानवदैत्यानां विशाचोरगरक्षसाम् ॥ ३१ ॥
 सिद्धगन्धर्वयक्षाणां विधातव्यमतोऽधिकम् ।
 एरुर्भामादधो नैव शृङ्गं शूद्रस्य विद्यते ॥ ३२ ॥
 वैश्यस्य भवनं कार्यमधो ना(न्य?)ध्यर्धभूमिकान् ।
 द्विभूमिकादधः कार्यं क्षत्रियस्य न मन्दिरम् ॥ ३३ ॥
 सार्धद्विर्भामाद् विप्रस्य त्रितलादपि भूपतेः ।
 हीनममाणादमुतो शृङ्गं यन् कुशिलिपना स्याद् विहितं कथञ्चित् ।
 भर्तुर्भिये सिद्धिविनाशनं तन् पशुस्तशीलादिविपर्ययाय ॥ ३४ ॥
 गुणदोषान् भवक्षयामि द्वाराणां सर्ववास्तुषु ।
 सुस्थितं चतुरश्रं च कान्तं स्वद्रव्ययोजितम् ॥ ३५ ॥
 कर्तुं स्वकीयदिग्भागे नदूर्ध्वं नवधोचर्कः ।
 नालं नकुञ्जं नाप्यनि(?)पिण्डितं नवहिर्गतम् ॥ ३६ ॥
 नाध्यातं नकुञ्जं मध्ये गतं नान्तरकुक्षिषु ।
 नविदुतं नसंक्षिप्तं यन् तन् स्याद् द्वारमृद्धिदम् ॥ ३७ ॥

न प्राकारेण कुड्येन न विटङ्केन वा पुनः ।
 अन्तर्हितानि दुष्यन्ति द्वारमर्माणि कुत्रचित् ॥ ५१ ॥
 अत्युच्चं स्याद् भयं राज्ञो निम्ने तस्करतो भयम् ।
 कुलपीडा भवेत् कुब्जे बहिर्याते पराभवः ॥ ५२ ॥
 आध्मातेऽत्यन्तदारिद्र्यं कृशमध्ये क्षयो नृणाम् ।
 रथ्याविद्धे भवेद् रोगो मरणं चत्वरेण च ॥ ५३ ॥
 शृङ्गाटकेन वैधव्यं दुहितृणां प्रजायते ।
 बाष्पा कूपेन वा विद्धे स्यादतीसारतो भयम् ॥ ५४ ॥
 कोणान्मृत्युभयं दद्याद् वृक्षे रोगभयं भवेत् ।
 स्तम्भेन म्रियते स्वामी भ्रमेणार्थो न तिष्ठति ॥ ५५ ॥
 प्रणालेन महद् दुःखं महाभीतिर्पहाकलिः ।
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन द्वारवेधं विवर्जयेत् ॥ ५६ ॥
 यस्याग्रतः पृष्ठतश्च द्वारे भित्तयोर्द्वयोरपि ।
 अन्योन्यं भिद्यते यस्मिन्नैकगत्याश्रिते उभे ॥ ५७ ॥
 वांस्तु तद् भिन्नदेहाख्यं भिन्नस्वामिविधायकम् ।
 न तत्र जायते वृद्धिः स्थापितस्य न कस्यचित् ॥ ५८ ॥
 गृहकुक्षौ कृतं द्वारं सर्वरोगभयङ्करम् ।
 पूर्वद्वारं तु माहेन्द्रं प्रशस्तं सर्वकामदम् ॥ ५९ ॥
 गृहक्षतं तु विहितं दक्षिणेन शुभावहम् ।
 गन्धर्वमथवा तत्र कर्तव्यं श्रेयसे (तसि)दा ॥ ६० ॥
 पश्चमेन प्रशस्तं स्यात् पुष्पदन्तं जयावहम् ।
 भट्टाटमुत्तरे द्वारं प्रशस्तं स्याद् गृहेशितुः ॥ ६१ ॥
 एकाशीतिपदे तस्मिन् शतश्रपदेऽपि वा ।
 द्वारोऽप्य(प)दगास्तासां ब्रूमो बह्न्यादितः फलम् ॥ ६२ ॥
 हुताशभीतिः स्त्रीजन्म भूत्यर्थः म्रियतो नृपे ।
 क्रोधे चानृतता(ः) पुंसः क्रौर्यं स्यात् पूर्ववत् क्रमात् ॥ ६३ ॥

गुणा(पि०ति)मैष्यनीयत्वे मध्यमानगुनादिहृत् ।

रीदं कृतप्रमवसं गाम्यतः गुणवर्गपदम्(?) ॥ ६४ ॥

गुणोपगीडा रिपुवृद्धिर्येगुनानवाप्तिम्ननयार्थसम्पन् ।

स्वाप्तिवृत्तसाद् भयमर्थनाश उक्तः क्रमादित्यपरोन्मुखेषु ॥ ६५ ॥

बन्धव्यपात्वे(?) रिपुवृद्धिर्येगुनाप्तिरग्या गुणसम्पदश्च ।

गुणार्थलब्धिद्विपयान्मनेन दोषाप्तिर्या नैकैर्नदिहमुखेषु ॥ ६६ ॥

गुणाश्च दोषाश्च यथावदन्ते निरूपिता द्वारसमाश्रिता ये ।

ताम् शिल्पविच्छास्रविदां यरिष्टो विज्ञाय पूज्यत्वमुपैति लोके ॥ ६७ ॥

इति महाराजाधिराजभीमोद्भवेयविरचिते समसङ्गग्रन्थवत्सरात्मने वास्तुशास्त्रे

द्वारगुणदोषो नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ पीठमानं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।

देवानां मनुजानां च पीठमानमथोच्यते ।

पीठं कनीयो भागं च सार्धभागं तु मध्यमम् ॥ १ ॥

द्विभागमुत्तमं तत् स्यादेवा पीठसमुच्छ्रितः ।

महेश्वरस्य विष्णोश्च ब्रह्मणश्चोत्तमं भवेत् ॥ २ ॥

इतरेषां च देवानां कर्तव्यं तन्न धीमता ।

ईश्वरस्य यथाकामं पीठं कार्यं विचक्षणैः ॥ ३ ॥

यस्मिन् स्थाने विधातव्यो ब्रह्मा विष्णुस्तथैव च ।

ईश्वरः सर्वतः कार्यो न दोषस्तत्र विद्यते ॥ ४ ॥

इतरेषां तु देवानां पीठं भागं समुच्छ्रितम् ।

यस्य येन विभागेन वास्तुमानं विधीयते ॥ ५ ॥

तस्य तेनैव भागेन पीठोच्छ्रायो विधीयते ।

मनुजानां च पीठानि वेश्मनां देवपीठैकैः ॥ ६ ॥

१. 'पा' ग, पाठः । २. 'रवे', ३. 'धि', ४. 'तथैव', ५. 'ठके' ख,

तुल्यानि कुर्यादुपरि कृता वृद्धिकराः सुराः ।
 पुरमध्ये तु कर्तव्यं ब्रह्मणो गृहमुत्तमम् ॥ ७ ॥
 चतुर्मुखं च तत् कार्यं यथा पश्यति तत् पुरम् ।
 अधिकं सर्ववेदमभ्यस्तथा राजगृहादपि ॥ ८ ॥
 राजवेदमाधिकमपि शस्यतेऽप्यसुरालयात् ।
 पञ्चमो लोकपालनां राजा श्रेष्ठतमो यतः ॥ ९ ॥
 एवमेतानि देवानां पीठान्पुक्तान्पशेषतः ।
 चातुर्वर्ण्यस्य पीठानि ब्रूमो विप्राद्यनुक्रमान् ॥ १० ॥
 पद्मत्रिंशद्द्व्यगुलान्तसेधं पीठं विप्रस्य शस्यते ।
 इतरेषां तु वर्णानां ह्रस्वं स्याच्चतुरद्व्यगुलम् ॥ ११ ॥
 चातुर्वर्ण्यस्य पीठानि भुङ्क्ते विप्रो गृहाणि च ।
 त्रयाणां क्षत्रत्रियो वैश्यो द्वयोः शूद्रः क्रमात् स्वकम् ॥ १२ ॥
 एवं विभागं पीठानां स्थपतिः परिकल्पयेत् ।
 दितं कारयितुर्वाञ्छन् नृपतेश्च समृद्धये ॥ १३ ॥
 प्रमाणं स्थापिता देवाः पूजार्हाश्च भवन्ति हि ।
 प्रमाणं पीठानामिदमभिहितं ब्रह्मपुराजि-
 त्पुराणीणामत्रापरादिविषदां यच्च नियतम् ।
 ततो विप्रादीनामपि निगदितं यन् तदस्त्रिलं
 यैर्याचित्यां योज्यं श्रियमभिलषद्भिः स्थपतिभिः ॥ १४ १/२ ॥

इति महाभारतप्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

पीठमानं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ चयविधिर्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधीयन्ते चयस्यैव गुणागुणाः ।

शुचिमतः समधारयतुश्चैव यः शुभः ॥ १ ॥

१. 'नांशु पी', २. 'नामन्वर्गदीनां एवं दृष्टव्यमप्यहम्', ३. 'यत्नी', ४. 'स्वादीयं' एत. ग. पाठः । ५. 'दृष्टव्यमप्यहम्' । ६. पाठः ।

तुल्यानि कुर्यादुपरि कृता वृद्धिकराः सुराः ।
 पुरमध्ये तु कर्तव्यं ब्रह्मणो गृहमुत्तमम् ॥ ७ ॥
 चतुर्मुखं च तत् कार्यं यथा पश्यति तत् पुरम् ।
 अधिकं सर्ववैश्वभ्यस्तथा राजगृहादपि ॥ ८ ॥
 राजवैश्वमाधिकमपि शस्यतेऽन्यसुरालयात् ।
 पञ्चमो लोकपालनां राजा श्रेष्ठतमो यतः ॥ ९ ॥
 एवमेतानि देवानां पीठान्युक्तान्यशेषतः ।
 चातुर्वर्ण्यस्य पीठानि ब्रूमो विप्राद्यनुक्रमात् ॥ १० ॥
 पद्मत्रिंशदङ्गुलोत्सेधं पीठं विप्रस्य शस्यते ।
 इतरेषां तु वर्णानां ह्रस्वं स्याच्चतुरङ्गुलम् ॥ ११ ॥
 चातुर्वर्ण्यस्य पीठानि भुङ्क्ते विप्रो गृहाणि च ।
 त्रयाणां क्षत्रियो वैश्यो द्वयोः शूद्रः क्रमात् स्वकम् ॥ १२ ॥
 एवं विभागं पीठानां स्थापतिः परिकल्पयेत् ।
 हितं कारयितुर्वाञ्छन् नृपतेश्च समृद्धये ॥ १३ ॥
 प्रमाणे स्थापिता देवाः पूजार्हाश्च भवन्ति हि ।
 प्रमाणं पीठानामिदमभिहितं ब्रह्ममुरजि-
 त्पुरारीणामत्रापरादिविपदां यच्च नियतम् ।
 ततो विप्रादीनामपि निगदितं यत् तदखिलं
 यैथौचित्यायोज्यं श्रियमभिलषद्भिः स्थापतिभिः ॥ १४ ॥
 इति महाराजाधिराजश्रीमोज्ज्वलदेवविरचिते सम्राट्कनकचक्रवर्त्तनस्य वास्तुशास्त्रे
 पीठमानं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ चयविधिर्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधीयन्ते चयस्येह गुणागुणाः ।
 सुविभक्तः समश्चरुश्चतुरश्रश्चैव शुभः ॥ १ ॥

१. 'गांष्टु पी', २. 'नामन्यजतीनां यद् दृष्टक्रमाशकम्', ३. 'त्यापोर्ग्य' ख. ग. पाठः । ५. 'द्वयमभयः' क. पाठः ।

असंभ्रान्तमसन्दिग्धमपि नाशयेन्न्यवर्हितम् ।

अनुत्तममनुदत्तमकुब्जं न च पीडितम् ॥ २ ॥

समानखण्डमृज्वन्तमन्तरङ्गं तथैव च ।

सुपार्श्वं सन्धिमुच्छिष्टं सुप्रतिष्ठं सुसन्धि च ॥ ३ ॥

अजिह्वं चेति चेयस्य गुणा विंशतिरित्यमी ।

एतेषां वैपरीत्येन दोषाणामपि विंशतिः ॥ ४ ॥

दक्षिणं तु यदा कुड्यं विचिनोति बहिर्मुखम् ।

तदा व्याधिभयं विद्यान्मृत्युदण्डं च निर्दिशेत् ॥ ५ ॥

पश्चिमं तु यदा कुड्यं विचिन्वन्ति बहिर्मुखम् ।

धनहानिं तदा विद्याद् दस्युभ्यश्च भयं भवेत् ॥ ६ ॥

उत्तरं तु यदा कुड्यं विचिनोति बहिर्मुखम् ।

कर्तारं स्वामिनं वापि व्यसनं प्रापयेत् तदा ॥ ७ ॥

प्राच्यं बहिर्मुखं कुड्यं चिनोति स्थपतिर्यदा ।

राजदण्डभयं तत्र निर्देष्टव्यं विचक्षणैः ॥ ८ ॥

एतदेव फलं ब्रूयात् पतिते दलिते तथा ।

यस्य प्राग्दक्षिणः कर्णः प्रवर्तेत बहिर्मुखः ॥ ९ ॥

स्यात् तत्राग्निभयं घोरं गृहमर्तुश्च संशयः ।

गच्छेद् बहिर्मुखः कर्णो यदा दक्षिणपश्चिमः ॥ १० ॥

फलहोपद्रवस्तत्र स्याद् भार्यायाश्च संशयः ।

पश्चिमोत्तरकर्णे तु सम्प्रयाते बहिर्मुखे ॥ ११ ॥

पशुवाहनपुत्राणां संशयस्तत्र जायते ।

प्रागुत्तरो यदा कर्णः प्रचीयेत बहिर्मुखः ॥ १२ ॥

गुरूणां संशयस्तत्र गोवृषादिश्च जायते ।

विशालं यदि जायेत सर्वबाहुषु विन्वतः ॥ १३ ॥

कर्णिकासमसंस्थानं तद् भवेन्मल्लिकाकृति ।

न तादृशो भवेदापस्तत्र यादृग् व्यसो भवेत् ॥ १४ ॥

१. 'हं च ग' ख, 'हं च ग' ग, पाठः । २. 'मलम' ख, ग, पाठः ।

३. 'बु', ४. 'नि', ५. 'नि', ६. 'दा', ७. 'व' क, पाठः ।

चयस्य तस्य दोषेण गृहणीणीक्षीर्णः पलायते ।
 चिन्वतो यदि संक्षिप्तमप्यर्थं तत्र जायते ॥ १५ ॥
 ब्रह्मसंज्ञं तदुद्दिष्टं तत्र राजभयं भवेत् ।
 विस्तृतं यदि शोषेषु संक्षिप्तं चैव मध्यतः ॥ १६ ॥
 तनुमध्यं तदुद्दिष्टं तत्र विद्यात् क्षुधो भयम् ।
 उच्छिन्नं यदि कर्णेषु परिहीणं च मध्यतः ॥ १७ ॥
 निर्गतं नाम तद् विद्यात् तत्र चौरमयं भवेत् ।
 कर्णेषु परिहीणं चेदुच्छिन्नं चापि मध्यतः ॥ १८ ॥
 कूर्मोन्नतमिति ज्ञेयं सर्वदोषभयावहम् ।
 विप्रमोक्षतर्कणेषु निर्दिशेद् द्रविणक्षयम् ॥ १९ ॥
 प्राज्यान्नपानं तद् विद्यात् समेषु विहितेषु च ।
 इत्येते चीयमानस्य गुणदोषाः प्रकीर्तिताः ॥ २० ॥
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन चयकर्म प्रयोजयेत् ।
 उदकेन समं नीत्वा सम्यङ्निश्चयकारणम् ॥ २१ ॥
 तत्रास्मादृते न चान्यत् स्यान्निश्चयार्थं चयस्य च ।
 तस्माज्जलेन बलयं गृह्णीयात् पूर्वमादृतः ॥ २२ ॥
 सतः सुताडिते सूत्रे चयं कुर्याद् विचक्षणः ।
 द्विगुणां क्षेत्रमानस्य रज्जुं कृत्वा तदन्तयोः ॥ २३ ॥
 योऽसौ(?) कार्यां ततस्तस्यां पादोनक्षेत्रमानतः ।
 दद्याद्विरिञ्चने कीलौ क्षेत्रगर्भान्तगापिनौ ॥ २४ ॥
 निधाया(र्याः?) सकौ तस्याः श्रान्तस्थौ योजयेत् तयोः ।
 निरञ्चनामिहृष्टायां पादोनक्षेत्रसंमितम् ॥ २५ ॥
 भुजगं रथा भवेद् रज्जुस्तस्यामिष्टानुमानतः ।
 चिह्नं दद्यात् सकर्णः स्यादेवं दोषान् प्रसाधयेत् ॥ २६ ॥

१. 'ये', २. 'वा तेषु', ३. 'न' क. ख. ग. पाठः । ४. 'या' ग. पाठः । ५. 'र', ६. 'यामकौ', ७. 'ष्णा' क. पाठः । ८. 'तः' ९. 'ह', १०. 'न' ख. ग. पाठः ।

भूमि मोक्षार्थं दद्यात् मित्रान् नर पण्डिताः ।

विदमग्नाः कुर्यान्निष्ठान्ता ताः कन्येन गताः ॥ २७ ॥

यथा नय शृङ्गेन मृतं विनिर्नीतं यथा कृताः ।

कुर्यान् च मादिमन्त्रान्ते रीतिवेष्टी निर्गोत्रेण ॥ २८ ॥

यदा भस्वरिवाग्नें तमे गोदाग्निं भवेत् ।

तदा भस्वरं कुर्यान् यथावेग विनश्रयः ॥ २९ ॥

उदयाग्नें र्जगताः(?) तु यदाग्नेन मित्रिमाग्नेनः ।

नत्र नत्र नयं कुर्यात् यदि मंत्रिद्वयं द्वितम् ॥ ३० ॥

द्वन्द्वं हि भवेत् तेन तस्यान् नन् पविर्नयेत् ।

उपगिष्टान् समं पार्थं भुजं कुर्यात् विनश्रयः ॥ ३१ ॥

समन्ताद् कनकस्त्रिमश्रयो मित्रिणु पूजितः ।

तस्यान् प्रयत्नः कर्तव्यमयकर्मणि निम्पयः ॥ ३२ ॥

इति भाषितरूपितपात्ररत्नभयकर्म यथाविधि शिन्धिस्तम् ।

भवतीह यतो भुवने चित्तं गृहमर्तुरपि प्रचुरो विभवः ॥ ३३ ॥

इति महागतापिष्ठप्रभीषोत्तरेयविरचिते समस्तद्वन्द्वप्रकाररत्नाग्नि पात्रद्वन्द्वे

यथाविधिर्नामिकनत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ शान्तिकर्मविधिर्नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामो विधानं शान्तिकर्मणः ।

यथावदिष्टा दिवपालान् हुत्वा शान्तीर्यथाक्रमम् ॥ १ ॥

स्तपयेत् कणिकां कुम्भैः सहिरण्यैर्विचक्षणः ।

सर्वगन्धानुलिप्तां च माल्यदामविभूषिताम् ॥ २ ॥

कृतमाल्यानिवसितां(?) मूले च मधुलेपिताम् ।

दोषप्रशमनार्थाय तां मूलेषु निखातयेत् ॥ ३ ॥

१. 'मा' ख. पाठः । २. 'द्विष्टमे', ३. 'योजये', ख. य. पाठः । ४. 'न' ख, 'त'
पाठः । ५. 'दुर्वलं हि', ६. 'भयं कु' ख. ग. पाठः । ७. 'दुर्क'
हचक' ग. पाठः । ८. 'का' ख. ग. पाठः । ९. 'त' क. पाठः ।

मधुकुम्भमरिष्टं च शेवालं च विधानविद् ।
 वाचयित्वा तु विमेषान् कृतपुण्याहमङ्गलान् ॥ ४ ॥
 स्थापयेत् कर्णिकाः सर्वाः स्थपतिः प्रयतः शुचिः ।
 एतेन विधिना कर्म चातुर्वर्ण्यस्य कारयेत् ॥ ५ ॥
 कर्णिका रोपिता यत्र पुनस्तथाऽत्र रोप्यते ।
 न तन्निष्पद्यते वेदम स्वामी चात्र विनश्यति ॥ ६ ॥
 निस्त्रातं तु यदा दारुच्छिद्यते ताड्यते पुनः ।
 तन्नाशो धनधान्यस्य स्वामिनश्चात्र सर्वथा ॥ ७ ॥
 बल्लीनिपीडितं दारु प्रवेशे चेन्निखन्यते ।
 आशीविषमयं घोरं तस्मिन्नुत्पातलक्षणम् ॥ ८ ॥
 उत्थाने कर्णिका रक्ष्या सर्वसत्त्वाभिर्घर्षणान् ।
 नवे कर्मण्यशकुना मृगज्यालसरीसृपाः ॥ ९ ॥
 कर्णिकामधिरोहन्ति दोषास्तत्र वदेदमून् ।
 कृतापीडां परिहृतां यद्यारोहन्ति वायसाः ॥ १० ॥
 गृहिणस्तन् प्रवासः स्यादन्नं पानं च दीयते ।
 मयूरं तद्गृहं राजा हरेत् पञ्चाब्दतः परम् ॥ ११ ॥
 बराहो जायते व्याधिः कोकिलैर्मन्दतः परम् ।
 काकोल्लिखीणि वर्षाणि जायते गुमहद् भयम् ॥ १२ ॥
 शुके स्युः फलहायोनि नच निष्पद्यते गृहम् ।
 कुल्लुटेऽग्निभयं विद्याद् राजतो वा महद् भयम् ॥ १३ ॥
 सारिकायां तु दौःशील्यं स्त्रीणां गृहपतेस्तथा ।
 सर्पेरूपे(तो)तु विघ्नेन गृहं निष्ठां न गच्छति ॥ १४ ॥
 स्त्रीपुंसयोः कुलिशे तु जायते पापकारिता ।
 पारावते तु जायते स्त्रीपुंसौ गुरुनर्त्तकाः ॥ १५ ॥
 विद्याने तु कुलं दार्गः सह रोगनिर्नीह्यते ।
 ज्वरान्नो वा जलं वापि हस्ती वा हन्ति तद्गृहम् ॥ १६ ॥

आरण्यः शकुनैरेतत् स्यद् वर्षाद् धर्षणे फलम् ।

धूनां च जायते मृत्युर्मध्वासक्ते धनक्षयः ॥ १७ ॥

दुःस्वप्नदर्शनं धूके बालानां मरणं तथा ।

अस्तमीते निलीने तु राजा शून्यं हरेद् गृहम् ॥ १८ ॥

यदा त्वग्रे प्रदृश्येत धूम्रः कर्णगतोऽपि वा ।

अग्निर्देहति तत् क्षिप्रं विद्युद् वा हन्ति मन्दिरम् ॥ १९ ॥

यत्रारोहति गृध्रस्तद् द्विजाद्विस्फुटमाचरेत् ।

कृत्वा हलशतैः कृष्टं ततो वीजानि वापयेत् ॥ २० ॥

गावश्चात्र प्रदुष्टेरञ् शान्तिकानि च कारयेत् ।

मेघेऽभिष्टे भूयोऽपि तत्र कुर्वीत मन्दिरम् ॥ २१ ॥

येषु येषु गृहाङ्गेषु मधुनः सञ्चयो भवेत् ।

तस्याङ्गस्य वधं ब्रूयात् प्रेषिण्यां चाप्नुपद्रवम् ॥ २२ ॥

तस्माद्धेतोः शिखाग्रेषु मुकुटान् प्रणिधापयेत् ।

यावन्न रोपयेत् सौम्यं तावद् रक्षेत् समन्ततः ॥ २३ ॥

अभिलीनं तु शकुनैर्नहि किञ्चित् प्रशस्यते ।

तस्मात् प्रयत्नतो रक्षेद्दुत्पातात् प्रागुदीरितात् ॥ २४ ॥

भङ्गे गृहाणां दारुणां शान्तिहोमोऽथ कथ्यते ।

इन्द्रकीलो महाकूटः पृष्ठवंशोत्तरौ धेरो ॥ २५ ॥

प्रग्रहो(?)ऽलिन्दपादौ वा स्वामिनं ग्रन्त्युपद्रवाः ।

तुलास्थपत्यः(?) कूटं वा वेदिका कर्णपालिका ॥ २६ ॥

नेत्रं कपोतपालिश्च हनप्रविष्टं कुर्दुम्बिनी(?) ।

अन्वग्राः पेंक्षि(?)वंशाश्च मल्लकाः सकुमारकाः ॥ २७ ॥

गोपानस्यो मृगाल्यश्च स्थपिताः स्वकुमारिकाः(?) ।

परिधा द्वास्पर्धाश्च भ्रातरं ग्रन्त्युपद्रवाः ॥ २८ ॥

१. 'धूनां च ग.' पाठः । २. 'द्वि' क. पाठः । ३. 'देव' प्रालान्, ४. 'दाहताम्' रा. ग. पाठः । ५. 'व', ६. 'काः', ७. 'रि' म. ग. पाठः । ८. 'ट' क. पाठः । ९. 'यवय' म. ग. पाठः ।

संयुक्तं सद्ग्रहो हन्ति निकृष्टाश्चाधरो धरः ।
 स्यौण्यानि प्रतिमोको वा हन्युरिष्टान् परिच्छदान् ॥ २९ ॥
 उ(द१५)र्धिमिगिनीं हन्यादथवा परिचारकान् ।
 पुंसां पुत्रामभिर्द्रव्यैः स्त्रीणां स्त्रीनभिर्भवेत् ॥ ३० ॥
 उपघातो हतैर्नित्यं द्रव्याणां तु नपुंसकैः ।
 भूलिका स्त्रीविनाशाय गृहनाशाय वेधनम् ॥ ३१ ॥
 कीला वा सन्धिपालिर्वा मित्रनाशाय दुष्प्रति ।
 नवे गृहे नवं दारु क्रियमाणमथो कृतम् ॥ ३२ ॥
 आयोज्यमानं युक्तं वा न्यूनसंवत्सरं स्थितम् ।
 भज्यते देहनाशाय स्फुटत्यथ विभज्यते ॥ ३३ ॥
 गृहं ब्राह्मणसात् कृत्वा रत्नैरालिख्य चापरम् ।
 नवैर्वस्त्रैः परिच्छाद्य पुनर्भिद्यानि(?)कारयेत् ॥ ३४ ॥
 दग्धे भिक्षे प्रचलिते विनते विद्युता हते ।
 विरुद्धे दलिते सजे सर्वव्रीषधिभिः स्मृताः ॥ ३५ ॥
 शान्तयो विविधं हुत्वा ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य वा ।
 स्थूणिका भज्यते यस्य कीर्त्तिस्तस्योपहन्यते ॥ ३६ ॥
 चन्द्रमूर्त्यां यजेत् तत्र ततः शाम्यति पातकम् ।
 तद्विधं वृक्षमानीय पुनस्तां प्रति कारयेत् ॥ ३७ ॥
 एवं कृते सुखी स स्यात् कीर्त्तिश्चायुर्धुवा भवेत् ।
 मल्लको भज्यते यस्य पौरुषं तस्य हन्यते ॥ ३८ ॥
 इष्टानभसनक्षत्रं(?) प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
 तद्विधं वृक्षमानीय प्रति कुर्वीत मल्लकम् ॥ ३९ ॥
 एवं कृत्वा सुखी स स्याद् बलं चास्माभिवर्धते ।
 पृष्टवंशस्य भजेन गृही बन्धमवाप्नुयात् ॥ ४० ॥

१. 'धिर्मिगिना' क, 'मग्नि ह' ख. ग. पाठः । २. 'चू', ३. 'स्यान्यू'
 ख पाठः । ४. 'न्य', ५. 'य भेयतितु कार', ६. 'कमै' ख. ग. पाठः ।
 ७. 'मु' क. पाठः । ८. 'स्य तस्य पुष्टोऽपहन्य', ९. 'घनं चा' ख.

राजराजं यजेत् तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ।

सुखी भवति कृत्वा गर्जनप्रायश्चित्तं ॥ ४१ ॥

सर्वेषु स्वरिषु वाग्याम्र घ्राद्यणा दक्षिणाद्यैः ।

धारणो भज्यते यस्तु ज्येष्ठं पुत्रं स (वार्धविवार)ने ॥ ४२ ॥

पृथ्वीपरं यजेत् तत्र प्रायश्चित्तं तैथानरेत् ।

तद्विधं वृक्षमानीय पुनस्तं प्रति कारयेत् ॥ ४३ ॥

सुखी भवति कृत्वा पुत्रप्रापि विवर्धने ।

संप्रदो भज्यते यस्तु कुलज्येष्ठं स (वार्धविवार)ने ॥ ४४ ॥

पितृन् देवान् यजेत् तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ।

सुखी भवति कृत्वा प्रीयन्ते पितरस्तथा ॥ ४५ ॥

स्थूष्यं तु भज्यते यस्य तनयस्तस्य वाध्यते ।

देवानेव यजेत् तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ॥ ४६ ॥

तद्विधं वृक्षमानीय तत् स्थाप्यं प्रति कारयेत् ।

सुखी भवति कृत्वा पुत्रप्रापि विवर्धने ॥ ४७ ॥

उपधी व्यथते यत्र तत्रामात्यो विनश्यति ।

यजेत वासवं तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ॥ ४८ ॥

आनीय तद्विधं वृक्षमुपधिं प्रति कारयेत् ।

एवं कृते भवेत् सौख्यममात्यैश्च विवर्धते ॥ ४९ ॥

कायस्तु व्यथते यस्य प्रेप्यस्तस्योपहन्यते ।

यज्ञं तत्र यजेद् देवं प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ॥ ५० ॥

तद्विधं काष्ठमानीय कायं तं प्रति कारयेत् ।

एवं कृते सुखी स स्यात् प्रेप्यैरपि विवर्धते ॥ ५१ ॥

तुला तु व्यथते यस्य व्यथतेऽस्य कुटुम्बिनी ।

यजेत मेदिनीं तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ॥ ५२ ॥

१. 'ता' ख, ग, पाठः । २. 'वाध्यते' ख., 'पात्यते' ग, पाठः । ३.

'समाच', ४. 'वर्धयेत्' क, पाठः । ५. 'स्याः प्रेप्यस्त' ख, ग, पाठः ।

तद्विधं वृक्षमानीय स्थापयेत् तां स्वलङ्कृताम् ।
ततस्त्वन्याः क्रियाः पश्यन् कारयेन्मतिमान् नरः ॥ ५३ ॥
वधूमिव नर्वर्षस्रैः प्रतिच्छाद्य स्वलङ्कृताम् ।
ग्राह्यणान् वाचयेत् स्वस्ति ततस्तां प्रति कारयेत् ॥ ५४ ॥
सुखी भवति कृत्वं धननिर्त्तयं विवर्धते ।
कर्णिकास्वान्तरस्थूणामालापदोऽथ भज्यते ॥ ५५ ॥
तद्गृही दुःखमाप्नोति तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ।
आनीय स्थपतिं तत्र प्रज्ञायन्तं बहुश्रुतम् ॥ ५६ ॥
तत्र वास्तुविभागेन यो देवः स्याद् विनिश्चितः ।
तस्मै देवाय जुहुयात् प्रायश्चित्तं च कारयेत् ॥ ५७ ॥
सुखी भवति कृत्वं सर्वतथाविवर्धते ।
युगं तु व्ययते यत्र तत्र स्यात् पशुपीडनम् ॥ ५८ ॥
यजेत तस्मिन्नीशानं प्रायश्चित्तं च कारयेत् ।
तद्विधं वृक्षमानीय युगे तद् प्रति कारयेत् ॥ ५९ ॥
एवं कृते सुखं तस्य पशुवृद्धिश्च जायते ।
तुलया अंगयोर्वापि(?) पादो यस्य प्रभज्यते ॥ ६० ॥
आर्युर्हानिर्भवेत् तत्र बलदेवं प्रपूजयेत् ।
प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनस्तं प्रति कारयेत् ॥ ६१ ॥
सुखी भवति कृत्वं कुटुम्बी शान्तिकं च तत् ।
द्वाराङ्गं यस्य माहेन्द्रं हिंस्यते नर्वकर्मणि ॥ ६२ ॥
इन्द्रं तत्र यजेद् देवं प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ।
गृहक्षतस्य द्वाराङ्गे पूजयेद् यममेव त(त्?)म् ॥ ६३ ॥
पुष्पदन्तस्य द्वाराङ्गे वरुणं तत्र पूजयेत् ।
द्वाराङ्गं यस्य भर्तृष्टं हिंस्यते नर्वकर्मणि ॥ ६४ ॥

१. 'स्विमाः क्रि' ख. ग. पाठः । २. 'अतिमानं', क. पाठः । ३. 'धर्म्यं च' ख. ग. पाठः । ४. 'तथाचरेत्' ख. ग. पाठः । ५. 'आ' ग. पाठः । ६. 'य' ख. ग. पाठः । ७. 'कर्म तत्' ख. ग. पाठः । ८. 'इन्द्र' ख. पाठः । ९. 'ह्य' ख. ग. पाठः ।

सोमं तत्र यजेद् देवं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।

सुखी भवति कृत्स्नं कुडुम्बी शान्तिकं च तत् ॥ ६५ ॥

स्थूणाराजस्य यस्याग्रं वक्रं दक्षिणतो भवेत् ।

शरीरं व्यथते तत्र मृतिसंयत्सरं स्थिरम् ॥ ६६ ॥

पृष्ठतो दीर्घशोकः स्यादुत्तरेण धनक्षयः ।

पूर्वतो राजदण्डः स्यात् तस्मात् तद् कञ्चु शस्यते ॥ ६७ ॥

चत्वार्यङ्गानि हिंस्पन्ते शरीरा ये च वेदमनः ।

तुला वा पृष्ठवंशो वा धार(ण्यां?णी)चोत्तराम्बरः ॥ ६८ ॥

उक्तांस्तत्र वलीन् कुर्यात् प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ।

एवं धन्यं शिवं पुष्टिप्रजावृद्धिकरं भवेत् ॥ ६९ ॥

इत्थं निमित्तानि गृह्णाथितानि

ज्ञात्वा प्रदृष्टाञ् शकुनांश्च सर्वान् ।

शान्तिं प्रकुर्वन् पृथगुक्तरूपां

प्राप्नोति कीर्तिं सुखमर्थमायुः ॥ ७० ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविग्निते समराङ्गणस्वधाराभरणसि वास्तुशास्त्रे

शान्तिकर्मविधिर्नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ द्वारभङ्गफलं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।

यद्वा नवकर्मोक्तं तद् यज्ञेषु गृहेषु च ।

ज्ञेयं ग्रामे पुरे वापि नगरे पत्तने तथा ॥ १ ॥

संस्थानमाकृतिर्मानं कामचूद्धी च यादृशु ।

एकमेव विजानीयात् सर्वत्रैव विचक्षणः ॥ २ ॥

गृहस्येव निमित्तानि दारुकर्मणि निर्दिशेत् ।

पानं पने विजानीयात् तक्षणं तक्षणेन च ॥ ३ ॥

१. 'कर्म त' म. 'कर्म' म. पाठः । २. 'ते।' क. पाठः । ३. 'घोत'

म. म. पाठः । ४. 'ह' क. पाठः । ५. 'भ' म. म. पाठः ।

- यूपोच्छ्रायमिव ब्रूयाद् दारुणामपि चोच्छ्रयम् ।
भङ्गेन भङ्गो नि(दिं?दें?)श्यः समाधिश्च समाधिना ॥ ४ ॥
- नवकर्मणि यत् स्निग्धं सुगन्धिं प्रियदर्शनम् ।
गम्येद्वरं(?) मनुष्याणां धन्यं तदभिनिर्दिशेत् ॥ ५ ॥
- पुरं वा यदि वा ग्रामो गृहं वा यदि निष्प्रभम् ।
आयासबहुलं तद्धि तादृशैर्लक्षणैर्भवेत् ॥ ६ ॥
- परिध्वस्तोपमं रूक्षं नवकर्मणि यद् भवेत् ।
भ्रमं रोगं च शोकं च तस्मिन् वेदमनि निर्दिशेत् ॥ ७ ॥
- जनेन च यदाकीर्णं निश्छायमिव ल(क्ष?क्ष्य?)ते ।
कुटुम्बी तत्र पण्मासान् नात्र जीवेन्न संशयः ॥ ८ ॥
- यच्छून्यमप्यशून्याभं वेदम वा यदि वा पुरम् ।
सर्वकामगुणैर्धुक्तं ध(नं?न्यं?) तदभिनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥
- पूर्वो नगरभागश्चेद् रम्यः स्यात् प्रियदर्शनः ।
प्रियभार्या मनःस्वास्थ्यं धनं धान्यं च भूयते ॥ १० ॥
- पूर्वदक्षिणभागश्चेत् पुरस्य प्रियदर्शनः ।
महद् यशस्तदामोति राजा हेम च पुष्कलम् ॥ ११ ॥
- पुरस्य दक्षिणो भागो यदा रम्यस्तदा भवेत् ।
राज्ञः सेनापतिप्राप्तिर्वर्धनं धान्यं च पुष्कलम् ॥ १२ ॥
- रमणीयो यदा भागः पुरदक्षिणपथिमः ।
अर्थसंपत् तदा राज्ञः मजाट्टिश्च जायते ॥ १३ ॥
- पुरपथिमभागेन रमणीयेन पार्थिवः ।
पुत्रवान्धवधान्याढ्यः संप्राप्नोन्पुत्रति पराम् ॥ १४ ॥
- पश्चिमोत्तरभागे तु रमणीये नराधिपः ।
मेप्यैः पुत्रैर्याहर्नश्च हृदिमेतुत्तरोत्तराम् ॥ १५ ॥
- उत्तरे रमणीये तु पुरभागे नरेश्वरः ।
शत्रून् विजयते सर्वान् वर्धते च पुरोहितः ॥ १६ ॥

१. 'य', २. 'भान् धनवानाढ्यः' ख. ग. पाठः । ३. 'विनरोत्तमः ।'
४. 'पुत्रोत्तरेः' ख. पाठः ।

यदि पूर्वोक्तो भागः पुण्य विग्रहस्तः ।
 तत्राभ्युत्थमानन्दं शिष्टं राज्ञो विनिर्दिशेत् ॥ १७ ॥
 निष्पन्नस्य पुण्यदेवो भागो न स्वान्मनोगमः ।
 तस्य तस्यैव भागस्य परित्यागं विनिर्दिशेत् ॥ १८ ॥
 नच यदि पुण्डरीके कपाटं परिप्रीयेते ।
 स्त्रीनामभेदमन्यद् वा स्त्रीनामं तद् विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥
 देवागारं पुण्डरीके प्राक्ताग्राह्यकेषु च ।
 हस्तिनालाश्वनाद्यासु रथनाला(स्त्र?स्त्र)यापि वा ॥ २० ॥
 फेणुगामागृध्रगारं निमित्तं तु शुभाशुभम् ।
 यदि किञ्चिन् प्रदश्येत राजस्नदभिनिर्दिशेत् ॥ २१ ॥
 भक्तो यत्रोर्ध्ववंशस्य तत्र राजा विनश्यति ।
 भर्गलापीलिकाकुंभीभक्ते च नवकर्मणि ॥ २२ ॥
 ग्रामे नश्यन्ति चैतानि तदा ग्रामो विनश्यति ।
 दिशुत्थितं तु राष्ट्राणां घटार्थेषु कुटुम्बिनाम् ॥ २३ ॥
 नवकर्मणि यत्किञ्चिद् भज्यते यदि वा नमेत् ।
 वि(ध्व)स्ते वा स्फुटे वापि कुटुम्बिमरणं ध्रुवम् ॥ २४ ॥
 फलं सर्वनिमित्तेषु शुभं वा यदि वाशुभम् ।
 संवत्सरं परं ग्राह्यं नवकर्मकृते गृहे ॥ २५ ॥
 परिसंवत्सरान्ते च पुराणमिति निर्दिशेत् ।
 तुम्बिका भज्यते यत्र नवकर्मणि निष्ठिते ॥ २६ ॥
 श्रेष्ठा तु महिला तत्र पद्भिर्मासैर्विनश्यति ।
 एवमेव नवं यस्य सदनं तु विनश्यति ॥ २७ ॥
 प्रेष्यदासादिविश्वासात् तद् विनाशयति ध्रुवम् ।
 पृष्ठवंशो नवो यस्य नवकर्मणि भिद्यते ॥ २८ ॥

१. 'तु' ॥ देवागारे पुरन्दारे पुत्राम यदि भज्यते । तत्र राजा विनश्येत स्त्रीनाम यदि
 कत् स्त्रियः ॥ देवा', ख. ग. पाठः । २. 'पि' क. ३. 'शुचीम' ख, 'शुद्धी' ग.
 पाठः । ४. 'विधये वा' ख. ग. पाठः । ५. 'शुद्धका', ६. 'ख' क. पाठः ।
 ७. 'विविधास्यास्तद् विभाषय' ख. ग. पाठः । ८. 'तं वि' क. पाठः । ९. 'भज्य-
 ते' ख. ग. पाठः ।

कुटुम्बी म्रियते तत्र गृहं संवत्सरात् परम् ।

प्रेम्पाश्वात्र विनश्यन्ति दीर्यमाणे विनश्यतः ॥ २९ ॥

लुमासु मिथमानासु कन्यामरणमादिशेत् ।

मुण्डकेषु विनष्टेषु सुदृढस्य विनश्यति ॥ ३० ॥

अनुपूर्वेषु भिन्नेषु पुत्राणां मरणं ध्रुवम् ।

विपत्तां मुण्डगोधानां माता तस्य विनश्यति ॥ ३१ ॥

नागपाशकर्मज्ञे तु भृत्यानां मरणं भवेत् ।

कपाटे भ्रातृमरणमर्गलायां स्त्रिया वधः ॥ ३२ ॥

सुतस्य चर्मागलापार्श्वे विनष्टे मरणं भवेत् ।

द्वारबन्धे विनष्टे तु शीघ्रं कुर्यात् कुलक्षयम् ॥ ३३ ॥

इन्द्रकीलो दृढो यस्य भङ्गमायाति मूलतः ।

सपुत्रपशुवर्गस्य तस्य मृयात् कुलक्षतिम् ॥ ३४ ॥

तोरणं भज्यते यस्य द्रव्यं तस्य विनश्यति ।

गृहभर्तृश्च मरणं त्रिदशैरवधारयेत् ॥ ३५ ॥

वास्तुमध्ये विनष्टे तु कुलदृढो विनश्यति ।

सोपानं भिद्यते यत्र नवकर्मणि निष्ठिते ॥ ३६ ॥

तस्य प्रेम्पाश्वा गावश्च हिरण्यं च विनश्यति ।

वेदिका भज्यते यस्य भार्या तस्य विनश्यति ॥ ३७ ॥

गवाक्षस्तु विनश्येत पट्टस्तम्भोऽपि वा दृढः ।

गजशृण्ण्डाय भिन्नोऽश्वः कपोताल्यधवा नवा ॥ ३८ ॥

स्थपनीपट्टिकाश्च स्त्रीविनाशं तदादिशेत् ।

विटङ्कस्य तुलाया वा भङ्गे जाते कथञ्चन ॥ ३९ ॥

शालास्तम्भस्य वा नाशे भार्या तस्य विनश्यति ।

स्तम्भशीर्षे यदि भ्रश्येत् स्फुटेत् स्तम्भोऽपि वा दृढः ॥ ४० ॥

१. 'बी' ख. ग. पाठः । २. 'प्यमाणो वि' क. पाठः । ३. 'भज्यमा',
४. 'त्त' ख. ग. पाठः । ५. 'पु', ६. 'व्य' क. पाठः । ७. 'मृयात्', ८. 'यम्',
९. 'मज्यते', १०. 'पुटस्त' ख. ग. पाठः । ११. स्तब्दाय' ख, 'स्वङ्गय' ग.
पाठः । १२. 'जध', १३. 'चै' ख. ग. पाठः । १४. 'भवेत्' क. पाठः ।
१५. 'मा' ख. पाठः । १६. 'वै', १७. 'दे', ख. ग. पाठः ।

यदि पूवीत्तरो भागः पुरस्य प्रियदर्शनः ।
 तत्राभ्युत्तरमानन्दं शिप्रं राज्ञो विनिर्दिशेत् ॥ १७ ॥
 निष्पन्नस्य पुरादेर्यो भागो न स्यान्मनोरमः ।
 तस्य तस्यैव भागस्य परिहारिणं विनिर्दिशेत् ॥ १८ ॥
 नवे यदि पुरद्वारे कपाटं प्रविशीर्यते ।
 स्त्रीनामधेयमन्यद् वा स्त्रीनाशं तद् विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥
 देवागारे पुरद्वारे प्राकाराट्टालकेषु च ।
 हस्तिशालाश्वशालासु रथशाला(स्तस्व)थापि वा ॥ २० ॥
 कोष्ठागारायुधागारे निमित्तं तु शुभाशुभम् ।
 यदि किञ्चित् प्रदृश्येत राज्ञस्तदभिनिर्दिशेत् ॥ २१ ॥
 भङ्गो यत्रोर्ध्ववंशस्य तत्र राजा विनश्यति ।
 अर्गलापीलिकाकुञ्जीभङ्गे च नवकर्मणि ॥ २२ ॥
 ग्रामे नश्यन्ति चैतानि तदा ग्रामो विनश्यति ।
 दिगुत्थितं तु राष्ट्राणां गृहार्थेषु कुटुम्बिनाम् ॥ २३ ॥
 नवकर्मणि यत्किञ्चिद् भज्यते यदि वा नमेत् ।
 वि(ध्व)स्ते वा स्फुटे वापि कुटुम्बिमरणं ध्रुवम् ॥ २४ ॥
 फलं सर्वनिमित्तेषु शुभं वा यदि वाशुभम् ।
 संवत्सरं परं ग्राह्यं नवकर्मकृते गृहे ॥ २५ ॥
 परिसंवत्सरान्ते च पुराणमिति निर्दिशेत् ।
 तुम्बिका भज्यते यत्र नवकर्मणि निष्ठिते ॥ २६ ॥
 श्रेष्ठा तु महिला तत्र पदभिर्मासैर्विनश्यति ।
 एवमेव नवं यस्य सदनं तु विनश्यति ॥ २७ ॥
 प्रेर्यदासादिविश्वासात् तद् विनाशयति ध्रुवम् ।
 पृष्ठवंशो नवो यस्य नवकर्मणि भिद्यते ॥ २८ ॥

१. 'त् ॥ देवागारे पुरद्वारे पुद्गाम यदि भज्यते । तत्र राजा विनश्येत स्त्रीनाम यदि
 लन् द्विषः ॥ देवा', ख. ग. पाठः । २. 'वि' क. ३. 'शुचीम' ख, 'छरी' ग.
 पाठः । ४. 'वियंते वा' ख. ग. पाठः । ५. 'गुप्तका', ६. 'क्ष' क. पाठः ।
 ७. 'विरिध्यास्वास्तद् विभाषय' ख. ग. पाठः । ८. 'त वि' क. पाठः । ९. 'भाप-
 ते' ख. ग. पाठः ।

कुटुम्बी म्रियते तत्र गृहं संवत्सरात् परम् ।

प्रेम्णाश्वात्र विनश्यन्ति दीर्यमाणे विशेषतः ॥ २९ ॥

लुमासु मिथ्यमानासु कन्यामरणमादिशेत् ।

मुण्डकेषु विनष्टेषु सुदृढेभ्यः विनश्यति ॥ ३० ॥

अनुपूर्वेषु भिक्षेषु पुत्राणां मरणं ध्रुवम् ।

विपत्तौ मुण्डगोधानां माता तस्य विनश्यति ॥ ३१ ॥

नागपाशकर्मज्ञे तु भृत्यानां मरणं भवेत् ।

कषाटे भ्रातृमरणमर्गलायां स्त्रिया वधः ॥ ३२ ॥

सुतस्य चागर्गलापार्श्वे विनष्टे मरणं भवेत् ।

द्वारवन्द्ये विनष्टे तु शीघ्रं कुर्यात् कुलक्षयम् ॥ ३३ ॥

इन्द्रकीलो दृढो यस्य भङ्गमायाति मूलतः ।

सपुत्रपशुवर्गस्य तस्य द्रूयात् कुलक्षतिर्मु ॥ ३४ ॥

तोरणं भज्यते यस्य द्रव्यं तस्य विनश्यति ।

गृहभर्तुश्च मरणं त्रिदशरवधारयेत् ॥ ३५ ॥

वास्तुमध्ये विनष्टे तु कुलवृद्धो विनश्यति ।

सोपानं मिथ्यते यत्र नवकर्मणि निष्ठिते ॥ ३६ ॥

तस्य प्रेम्णाश्च गावश्च हिरण्यं च विनश्यति ।

वेदिका भज्यते यस्य भार्या तस्य विनश्यति ॥ ३७ ॥

गवाक्षस्तु विनश्येत पट्टस्तम्भोऽपि वा दृढः ।

गजशृण्ण्डाथ भिक्षोऽथः कपोताल्यधवा नवा ॥ ३८ ॥

स्थपनीपट्टिकाश्च स्त्रीविनाशं तदादिशेत् ।

विटङ्कस्य तुलाया वा भङ्गे जाते कथञ्चन ॥ ३९ ॥

शौलास्तम्भस्य वा नाशे भार्या तस्य विनश्यति ।

स्तम्भशीर्षं यदि भक्षयेत् स्फुटेत् स्तम्भोऽपि वा दृढः ॥ ४० ॥

१. 'वी' ख. ग. पाठः । २. 'प्यमाणो वि' क. पाठः । ३. 'भज्यमा',
४. 'स' ख. ग. पाठः । ५. 'पु', ६. 'व्य' क. पाठः । ७. 'द्रूयात्', ८. 'यम्',
९. 'भज्यते', १०. 'पुटत' ख. ग. पाठः । ११. 'स्वन्दाय' ख., 'स्वन्दाय' ग.
पाठः । १२. 'प्रभ', १३. 'वे' ख. ग. पाठः । १४. 'वा',
१५. 'मा' ख. पाठः । १६. 'वे', १७. 'दे', ख. ग. पाठः ।

भग्यते प्रतिपातो वा स्वापिनस्य चो मनेत् ।

भङ्गे तु मङ्गवादिभ्याः कृत्स्नद्वयो मनेत् ॥ ४१ ॥

प्रासादगतके पुत्राः प्रतिष्ठितं कृदुभिनः ।

विनष्टं च विनश्यन्ति वदभिर्मात्रे मनेत् ॥ ४२ ॥

प्रागादमन्दने भग्रे भग्रासु वसर्माय च ।

भाषा कृदुभिनस्य नाशमायागमंशयः ॥ ४३ ॥

मन्त्रीनां वा विन्त्रीनां वा प्रागादो यस्य मज्यते ।

प्रन्तीने भृत्यमृत्युः स्याद् विन्त्रीने तु धनशयः ॥ ४४ ॥

मिथ्रे विनष्टं प्रासादं द्विगन्ते सर्वश्रेष्ठयः ।

मरणं वा मनेत् तत्र कृष्टव्यार्थि च निर्दिशन् ॥ ४५ ॥

येषु स्थानेषु भङ्गो वा विनतिर्वा प्रकीर्तिता ।

उपद्रुतिर्विपातो वा तेषां फलमपीरितम् ॥ ४६ ॥

म्लिग्धानि यदि दृश्यन्ते तानि दाढ्यान्विनानि च ।

धनमायुश्च ह्ये च पूर्वोक्तानां तदादिशेत् ॥ ४७ ॥

कर्णिकाभ्यन्तरी स्थूणा शालापादांश्च द्विषते ।

यदि तद् दुःखमाप्नोति गृहमर्तो न संशयः ॥ ४८ ॥

संप्रधार्य च मेधावी बलावलमतन्द्रितः ।

निर्दिशन् बलमाप्नोति धनमायुर्यशस्तथा ॥ ४९ ॥

एवमादिकनिमित्तमूचितं संप्रधार्य मतिमान् बलावलम् ।

स्पष्टमादिशति योऽत्र शास्त्रवित् कीर्त्तित्त्वात् (+धर्मव)र्त्तानि सोऽश्नुते ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणद्वारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

द्वारभङ्गफलं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ स्थपतिलक्षणं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

स्थापत्यमुच्यतेऽस्माभिरिदानीं प्रक्रमगतम् ।

ज्ञातेन येन ज्ञायन्ते स्थपतीनां गुणागुणाः ॥ १ ॥

१. 'शे' क. पाठः । २. 'यते', ३. 'वृद्धिदः' ख. ग. पाठः । ४. 'वि' क. पाठः ।
५. 'तः' क. ख. ग. पाठः । ६. 'ये' ख. ग. पाठः । ७. 'भयन', ८. 'ननानि' क. पाठः ।

शास्त्रं कर्म तथा प्रज्ञा शीलं च क्रियमान्वितम् ।
 लक्ष्यलक्षणमुक्तार्थशास्त्रनिष्ठो नरो भवेत् ॥ २ ॥
 सामुद्रं गणितं चैव ज्योतिषं छन्द एव च ।
 सिराज्ञानं तथा शिल्पं यन्त्रकर्मविधिस्तथा ॥ ३ ॥
 एतान्यह्नानि जानीयाद् वास्तुशास्त्रस्य बुद्धिमान् ।
 शास्त्रानुसारेणाभ्युद्य लक्षणानि च लक्षयेत् ॥ ४ ॥
 प्रसिद्धशास्त्रदृष्टान्तैर्वास्तुज्ञानं प्रसाधयेत् ।
 वास्तुनः ससिरावंशैर्मर्मवेधैः मुनिश्चितैः ॥ ५ ॥
 वास्तुद्वारखणान् भूयः सर्वान् जानाति शास्त्रतः ।
 यस्तु शास्त्रमविज्ञाय प्रयोक्ता स्थपतिर्भवेत् ॥ ६ ॥
 हन्तव्यः स स्वयं राज्ञा मृत्युवद् राजहिसकः ।
 मिथ्याज्ञानादहङ्कारी शास्त्रे चैवाकृतश्रमः ॥ ७ ॥
 अकालमृत्युलोकस्य विचरेद् वसुधातले ।
 यस्तु केवलशास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः ॥ ८ ॥
 स मुह्यति क्रियाकाले दृष्टा भीरुरिवाहवम् ।
 केवलं कर्म यो वेत्ति शास्त्रार्थं नाधिगच्छति ॥ ९ ॥
 सोऽवधुरिव नीयेत विवशोऽन्येन वर्त्मसु ।
 कर्म वास्तुविधेः स्थानं मानमुन्मानमेव च ॥ १० ॥
 क्षेत्रजा(ति?)नि च कर्माणि तुमालेखा(च?)तुर्दश ।
 च(त्वा?)तुरी गण्डिकाच्छेदान् वृत्तच्छेदेषु सप्तसु ॥ ११ ॥
 सुश्लिष्टं सन्धिसन्धानैरधरोचरसंयुतम् ।
 वाग्देखान्वितं शुद्धं यो जानाति स कर्मविन् ॥ १२ ॥
 शास्त्रकर्मसमर्थोऽपि स्थपतिः मग्नया विना ।
 फलेषुः कर्मभिरन्याभिः(?) स्याद्विर्मद इव द्विपः ॥ १३ ॥

१. 'विचो न', २. 'क्षयं च', ३. 'जेन च', ४. 'वे' स, ग, पाठः ।
 ५. 'ले' स, पाठः । ६. 'दि' क, पाठः । ७. 'दा व' स, ग, पाठः । ८. 'क्ता'
 क, स, ग, पाठः । ९. 'व्य' स, ग, पाठः ।

प्रत्युत्पन्नमतिर्यः स्याद् बार्ह(तः?कः) स्थपतिस्तथा ।
कर्मकाले न मुद्येत् स प्रज्ञानेनोपचृंहितः ॥ १४ ॥

अप्रज्ञेयं दुरालोकं गूढार्थं बहुविस्तरम् ।
प्रज्ञापोतं समारुह्य प्राज्ञो वास्तुनिरं(?) तरेत् ॥ १५ ॥

ज्ञानवांश्च तथा वाग्मी कर्मस्वपि च निष्ठितः ।
एवं युक्तोऽपि न श्रेयान् यदि शीलविवर्जितः ॥ १६ ॥
रोपाद् द्वेपात् तथा लोमान्मोहाद् रागात् तथैव च ।
अन्यचिन्त्यत्वमायाति दुःशीलानामविक्षयात्(?) ॥ १७ ॥

शीलवान् पूजितो लोके शीलवान् साधुसम्मतः ।
शीलवान् सर्वकर्माईः शीलवान् प्रियदर्शनः ॥ १८ ॥
शीलोऽधाने परं यन्नमा(धि?ति)ष्टेत् स्थपतिः सदा ।
ततः कर्माणि सिध्यन्ति जनयन्ति शुभानि च ॥ १९ ॥

तथाचाष्टविधं कर्म ज्ञेयं स्थपतिना सदा ।
आलेख्यं लेख्यजातं च दारुकर्म चयस्तथा ॥ २० ॥

पापाणसिद्धहेम्नां च शिल्पं कर्म तथैव च ।
एभिर्गुणैः समायुक्तः स्थपतिर्याति पूज्यताम् ॥ २१ ॥

स्थापत्यमङ्गैरिदमष्टमिर्यथतुर्विधं वेत्ति विशुद्धबुद्धिः ।
स शिल्पिनां संसदि लब्धपूजः परां प्रतिष्ठां लभते चिरायुः ॥ २२ ॥

इति मत्स्यपुराणविष्णुसंहितायां श्रीमद्भगवद्गीतासहिते समस्तसंस्कृतग्रन्थसंग्रहात् प्राच्यशास्त्रे

स्थपतिलक्षणं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

-
१. 'ह' ख. पाठः । २. 'सुर्ननाचरे' ख. ग. पाठः । ३. 'वी' क. पाठः ।
४. 'ल' ख. ग. पाठः । ५. 'येधे स्थ' ग. पाठः । ६. 'स', क. पाठः ।
७. 'हस्ये धर्म' ख. ग. पाठः । ८. 'य' ग. पाठः ।

अथ अष्टाङ्गलक्षणं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।

प्रोक्तं चतुर्थं स्थापत्यं वास्तुतत्त्वस्य सिद्धये ।

ब्रूमस्तदेव चेदानीमङ्गैः संयुक्तमपिभिः ॥ १ ॥

तेष्वङ्गं प्रथमं प्रोक्तं वास्तुपुंसो विकल्पना ।

पुरस्य विनिवेशस्तु द्वितीयं द्वारकर्म च ॥ २ ॥

रथ्याविभागः प्राकारनिवेशोऽष्टालकस्य च ।

विनिवेशः प्रतोलीनां विभागस्थानकानि च ॥ ३ ॥

प्रासादश्च तृतीयं स्याच्चतुर्थं तु ध्वजोच्छ्रितः ।

पञ्चमं नृपतेर्वेश्म स्थानान्तरविभक्तिं च ॥ ४ ॥

चातुर्वर्ण्यविभागश्च गृहभागश्च षष्ठकम् ।

सप्तमं यजमानस्य शालायां मानमीरितम् ॥ ५ ॥

यज्ञवेदीप्रमाणं च कोटिहोमविधिस्तथा ।

अष्टमं राजशिविरनिवेशो दुर्गकर्म च ॥ ६ ॥

यो वेत्थङ्गान्यमून्यर्था सोऽत्र स्थपतिसत्तमः ।

यशो मानं स लभते पूज्यते च नराधिपैः ॥ ७ ॥

अष्टास्त्रहमकर्मज्ञं स्थपतिं यः प्रयोजयेत् ।

न तस्य वास्तु सिध्येत सिद्धमप्यनुखावहम् ॥ ८ ॥

तस्मात् कर्म च शास्त्रं च यो वेत्ति द्वितयं नरः ।

अष्टाहमपि यो वेत्ति स राज्ञः स्थपतिर्भवेत् ॥ ९ ॥

अङ्गानि पूर्वमुक्तानि वास्तुशास्त्रोक्तविस्तरात् ।

तेषु प्रासादिकं यन् तद् वक्ष्यामोऽग्रे सर्विंस्तरम् ॥ १० ॥

अथाङ्गं सप्तमं ब्रूमो यत् तद् यज्ञेषु युज्यते ।

विनिविष्टे पुरे पूर्वं कलशेषु मुरधामसु ॥ ११ ॥

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां यज्ञार्थं मापयेद् भुवम् ।

निवेशं तत्र कुर्वीत चतुरश्रं समन्ततः ॥ १२ ॥

आगामेन विनाशयोगो इत्यादिद्वयमिति ।

पूर्वद्वारं विनाशयोगादित्यस्य पदे पूर्वः ॥ १३ ॥

तस्य अभिप्रायं तु यजमानकृती मन्त्रे ।

षोडशागामविस्ताराग्रादमुर्वा गा मन्त्रस्यते ॥ १४ ॥

यजमानकृतीद्वारे देवता गा न र्जाविता ।

गतः मभूति पूर्वंगमावन्तं पश्चिन्त्ययेत् ॥ १५ ॥

वेदिमण्ये स्थितं तन्म्यान्मानं वेद्याश्च श्रेयस्यते ।

पूर्वार्चरेण पश्चिम्नन् कर्तव्याः प्रक्रमा पूर्वः ॥ १६ ॥

एकत्रिंशन् कृतीमाणं मण्येऽष्टादश कन्ययेत् ।

प्रक्रमाः स्युः निरम्याने विंशतिधनुर्हेमरां ॥ १७ ॥

पुरुषस्य निरम्यत्र प्राग्वन्तं तु प्रतिष्ठितम् ।

तस्मान् पूर्वार्चरं श्रेयं मन्त्रयोगे पूजितम् ॥ १८ ॥

वेद्यन्तरं तु कर्तव्यं शकटं येन गच्छति ।

तस्मादुत्तरवेदी या कार्या प्रत्युत्तरेण तु ॥ १९ ॥

द्विहस्तायामविस्तारो होमश्रेष्ठः कृताञ्च हि ।

प्राग्दक्षिणेन संस्थानं यजमानस्य शस्यते ॥ २० ॥

कटिमात्रं सदा कार्यं नाभिमात्रमयापि वा ।

ततोऽधिकेन दुर्भिक्षमनाष्टष्टिश्च जायते ॥ २१ ॥

एषा यज्ञक्रिया प्रोक्ता कोटिहोमोऽथ वक्ष्यते ।

पुरस्याभ्यन्तरे भागे हुताशस्य पदे तथा ॥ २२ ॥

तस्मिन् स्थाने विधातव्यः कोटिहोमः सदा पुरे ।

लक्षहोमश्च कर्तव्यो नित्यो नैमित्तिकोऽपि वा ॥ २३ ॥

अथ भूमिवशात् स्थानं कदाचिन्नैव लभ्यते ।

सर्वतो ब्रह्मणः स्थानाद्धोमस्थानं निवेशयेत् ॥ २४ ॥

पेशानीं दिशमाश्रित्य ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।

पुरश्चरणतत्त्वज्ञैः पदकर्मनिरतैः सदा ॥ २५ ॥

१. 'प्रतिक' क. पाठः । २. 'कथ्यते', ३. 'रे' क. ख. ग. पाठः ।

४. 'राः' क. ग. पाठः ।

नित्यं शान्तिपरिवर्ति राजा तु विजयी भवेत् ।
 नोपसर्गास्तु जायन्ते नच लक्ष्मीः पुरं त्यजेत् ॥ २६ ॥
 अनादृष्टिमयं नास्ति मुभिर्लं जायते सदा ।
 उक्तं याज्ञिकमहं तु सर्वाङ्गेभ्यः प्रशस्यते ॥ २७ ॥
 सर्वं स्थपतिना ज्ञेयं तत्त्वज्ञैर्ब्राह्मणैः सह ।
 एकाशीतिपदेनैव यज्ञभूमिं तु मापयेत् ॥ २८ ॥
 निवेशं शिविरस्याथ कथयामोऽङ्गमष्टमम् ।
 यदा तु नृपतिः स्थानात् स्वाद् यात्राभिमुखो भवेत् ॥ २९ ॥
 शिविरस्य निवेशं च तत्त्ववेत्ता परीक्षयेत् ।
 अर्थशास्त्रविभिन्नो वा स्थपतिर्वा प्रकल्पयेत् ॥ ३० ॥
 शिविरं चतुरश्रं स्याद् दृत्तं वृत्तायतं कचिद् ।
 चतुरथायतं वापि विषमं वा कचिद् भवेत् ॥ ३१ ॥
 भूमिभागवशात् क(ल्पं?ल्पं)महारथ्यामयान्वितम् ।
 शिविरस्य तु चत्वारि कुर्याद् द्वाराणि यत्रतः ॥ ३२ ॥
 रथ्या सार्धां तु सेनायाः पुररथ्याप्रमाणतः ।
 मित्रे स्थानं नरपतेः कार्यं पृथ्वीधरेऽपि वा ॥ ३३ ॥
 आर्यम्णे वा विधातव्यं पदे वैवस्व(तो?ने)ऽथवा ।
 निवेशो मन्त्रिणां कार्यः पश्चि(मो?मे)राजवेद्यमनः ॥ ३४ ॥
 पुरोहितस्योत्तरतो घनाध्यक्षस्य पूर्वतः ।
 अन्तःपुरं दक्षिणतो भाण्डागारं तथैव च ॥ ३५ ॥
 गृहं प्रविशतो राज्ञो न्यस्येद् दक्षिणतो हयान् ।
 वामे च दन्तिनो न्यस्येदेवं सैन्यं निवेशयेत् ॥ ३६ ॥
 पापतः परित्वा तस्य कारयेद् राजवेद्यमनः ।
 हस्तांगीधतुरो वापि पश्चहस्तानपापि वा ॥ ३७ ॥
 चतुष्पाटिपदाग्लेन विभाग्यं शिविरं युषः ।
 निवेशः शिविरस्पोक्तो दुर्गकर्माथ कथ्यते ॥ ३८ ॥

दुर्गं तु पद्विधं प्रोक्तं राज्ञां तु विजिगीषताम् ।

अब्दुर्गं पङ्क्तदुर्गं वा वनदुर्गरिणे तथा ॥ ३९ ॥

पौर्वतीयं महादुर्गमिति कल्प्यानि पार्थिवैः ।

सर्वेषामेव दुर्गाणां पार्वतीयं प्रशस्यते ॥ ४० ॥

दुर्गस्थानविभागोऽत्र षोडशाख्येन कीर्तितः ।

मध्ये तु ब्रह्मणः स्थानमसम्बाधं विधीयते ॥ ४१ ॥

ब्रह्मस्थानं समारभ्य द्दर्शं पञ्चशयाः स्मृताः ।

उपरथ्या त्रिहस्ता तु शेषास्तु द्विशयाः स्मृताः ॥ ४२ ॥

सन्निकृष्टा विधातव्या दुर्गा(र्ग)रथ्या समन्ततः ।

द्वारं रथ्याप्रमाणेन कार्यं नात्यन्तमुच्छ्रितम् ॥ ४३ ॥

परचक्रसमं बाधं(?) मुरक्षं तत् सदा भवेत् ।

दुर्गेश्वरगृहस्थानं ब्रह्मणः परितो भवेत् ॥ ४४ ॥

वैवस्वतेऽथवार्यन्ते मैत्रे पृथ्वीधरेऽपि वा ।

यथा पुरे पुरा प्रोक्तं स्थानं दुर्गेऽपि तत् तथा ॥ ४५ ॥

वीराः शुभा हृदोपाथ भूमिपालस्य संमताः ।

धनुर्वेदविधिज्ञाश्च कृतास्त्राः शास्त्रपारगाः ॥ ४६ ॥

दुर्गे स्थाप्याः सुरूपाश्च बहवश्च वरस्त्रियः ।

अन्तःपुरं च कोशं च कुमारांश्चात्र वासयेत् ॥ ४७ ॥

एवं दुर्गविधानस्य समाप्तोऽयमुदाहृतः ।

इत्यष्टाक्षो वास्तुशास्त्रस्य सारः संक्षेपेण स्पष्टमस्माभिरुक्तः ।

यत्र ज्ञाते शिल्पियेद् वास्तुविद्यापाथोनाथं सन्तरन्त्यप्रयासात् ॥ ४८ ॥

इति महागजाभिराजभीमोजदेवविरचिते समराष्ट्रगुरुभारगवरनामि वास्तुशास्त्रे
अष्टाक्षलक्षणं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

१. 'जो' ग. पाठः । २. 'प', ३. 'गु', ४. 'य' ग. ग. पाठः ।
५. 'युद्धास्तु वि' क. पाठः ।

अथ तोरणभङ्गादिशान्तिको नाम पदचत्वारिंशोऽध्यायः

पुरातनं नवं वापि कृतं वाथार्थनिमित्तम् ।
 देवतानां नृपाणां च तोरणं निषेतेद् यदि ॥ १ ॥
 भज्यते दह्यते वाथ नमते सज्जतेऽथवा ।
 दध्विद्युज्जलाद्यैर्वा हन्यते तत् कदाचन ॥ २ ॥
 तत्र दोषान् प्रवक्ष्यामो दोषप्रशमनानि च ।
 तोरणं निषेतेद् सर्वं शिरो वास्य कथञ्चन ॥ ३ ॥
 राज्ञां सेनापतीनां च प्रतीहारपुरोधसाम् ।
 प्रधानां भगजानां च विप्रपौरजनस्य च ॥ ४ ॥
 तत्र मृत्युभयं विद्याद् दुर्भिक्षं चापि निर्दिशेत् ।
 तस्मात् प्रशमहेत्वर्थं विधिं कुर्यादिमं युधः ॥ ५ ॥
 ऋत्विग्भिर्ग्राह्यैर्धार्तरः स्थपतिः सपुरोहितैः ।
 रात्रौ होमवलिं कुर्यान्नगरे तु चतुर्दिशम् ॥ ६ ॥
 कर्णचत्वरशृङ्गाटेऽप्यवनीपालवेदमनि ।
 स्थानेष्वेतेषु विमार्द्यैर्वेदिं निष्पाद्य साक्षताम् ॥ ७ ॥
 फलशूर्द्धगन्धैश्च श्वेतमाल्याम्बरैर्युताम् ।
 तत्र होमं प्रकुर्वीत शान्तिकं बलिमेव च ॥ ८ ॥
 एवं प्रशमयेत् सर्वं यत्किञ्चिद् दुरितोत्थितम् ।
 तोरणं भज्यते चेत् तद्राष्ट्रमङ्गं विनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥
 अस्य प्रशमहेत्वर्थं पूर्वोक्तं कारयेद् विधिम् ।
 तदेवैकं प्रदयेत् तोरणं नगरैर्यथैवदि ॥ १० ॥
 तद्वा बह्विभयं ब्रूयाद् राष्ट्रस्य नगरस्य च ।
 सवाद्याभ्यन्तरं विप्रैर्विधिमेनं प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥

१. 'कृतीनां च' ख. ग. पाठः । २. 'पश्यते य' क, 'नृपतेर्वेदि' ग. पाठः । ३.
 'नानां ग' ख. ग. पाठः । ४. 'वी', ५. 'तदा यैकं' क. पाठः । ६. '१', ग. पाठः ।

ननं वा शीर्णमग्रे वा व्याधिर्वाडा विनिर्दिशेत् ।
 हागे यदि च कर्त्तव्यं पुनः संस्कारमस्य च ॥ १२ ॥
 वातेन विद्युता वापि तारणे यदि भक्षणं ।
 तस्मिन् रोगाः प्रवर्धन्ते कृच्छ्रादावनश्याः ॥ १३ ॥
 शान्तिकर्म प्रकुर्यात् ततः शान्तिकरं भवेत् ।
 एवमादी कृते पथान् पुनः संस्कारयेद् ब्रुवः ॥ १४ ॥
 पूर्ववपचनिर्माणाद् विशिष्टं मनयेत् पुनः ।
 दृढसन्धिनिगुहं च दृढद्रव्यमगन्धितम् ॥ १५ ॥
 विविधं रूपकर्मोक्तं गुह्यस्थानं मनोरमम् ।
 अकुञ्चयन्तं चैव पूर्वोक्तकृष्टतरं तथा ॥ १६ ॥
 नियुक्ते तु पुनः शान्तिं ब्राह्मणान् वाचयेत् ततः ।
 पुराणे वा नवे वाथ कृते नार्थकृतेऽथवा ॥ १७ ॥
 प्रासादे वा गृहे वापि कपोतः प्रविशेद् यदि ।
 तत्र दोषाः प्रपद्यन्ते शान्तिकर्म तथैव च ॥ १८ ॥
 कालमूर्तिः कपोतश्च पापमूलकरण्डकम् ।
 विहङ्गापशदो हीनः कृष्णचारी विहङ्गमः ॥ १९ ॥
 चतुर्विधः समालयातो मुनिभिः स तपोधनः ।
 श्वेतो विचित्रकण्ठश्च विचित्रोऽज्योऽथ कृष्णकः ॥ २० ॥
 कपोतो भवने यस्य श्वेतवर्णो विशेत् कश्चित् ।
 कीर्त्तिविद्याधनं पुण्यं शीघ्रं च नयते क्षयम् ॥ २१ ॥
 नित्यं रोगाः प्रवर्धन्ते शिशुपीडा च जायते ।
 चित्रकण्ठो हरेज्जायां पुत्रान् सर्वान् विचित्रकः ॥ २२ ॥
 सर्वाः सिद्धीश्च कृष्णाङ्गः प्रदुष्य च कुलं हरेत् ।
 रोगाः सर्वेऽपि वर्धन्ते विषदो व्यसनानि च ॥ २३ ॥
 बन्धनानि च जायन्ते प्रविष्टे तु कपोतके ।
 तस्मद् यत्रपरो भूत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ २४ ॥

१. 'यः' क. ग. पाठः । २. 'दृढं' ख. ग. पाठः । ३. 'न' ग. पाठः । ४. 'कलि-
 सूत्रं क' क. पाठः । ५. 'यु' क. पाठः । ६. 'थं' ग. पाठः ।

स्नातस्त्रिकालशुद्धात्मा सोपवासो जितेन्द्रियः ।

देवपूजार्चनस्ततो नित्यं दानपरः शुचिः ॥ २५ ॥

यवान्नप्रायभोजी च नित्यं होमपरायणः ।

गुरुविप्ररतश्चैव श्वेतमाल्याम्बरस्तथा ॥ २६ ॥

गृही सगृहिणीकस्तु व्रतमेतत् समाचरेत् ।

श्वेतके पञ्चरात्रं च चित्रकण्ठे दशैव तत् ॥ २७ ॥

चित्रे पञ्चदशाहानि कृष्णे दिवसविंशतिः ।

व्रतस्येन तु कर्तव्यमग्निकार्यं मनोरमम् ॥ २८ ॥

यथालाभं समादाय तस्य देहं सपिच्छकम् ।

निकृन्तेत् खण्डखण्डानि विभागाष्टगतानि तैम् ॥ २९ ॥

घृतैः प्लुतानि पुण्यानि मधुलाजान्वितानि च ।

पञ्चवारुणसंज्ञेन वह्निकार्यं कृतेऽर्क्षतः ॥ ३० ॥

ततश्च मांसं जुहुयाद्धव्यमात्रेण मन्त्रवित् ।

हुते क्रव्ये ततः क्षीरं दधि मध्वाज्यमेव च ॥ ३१ ॥

संपूजयेद् ग्रहान् सर्वान् ब्राह्मणान् वाचयेत् ततः ।

स्ववित्तपादं श्वेते तु विप्रेभ्यः प्रतिपादयेत् ॥ ३२ ॥

वित्तार्थं चित्रकण्ठे तु पादोर्ध्वं सर्वचित्रके

कृष्णे सर्वधनत्यागः कर्तव्यो ब्राह्मणात् पुनः ॥ ३३ ॥

एवं शान्तिर्भवेद् गेहे सर्वदोषक्षयार्थदा ।

महती धियमामोति धनलाभश्च जायते ॥ ३४ ॥

पुत्रैः पौत्रैर्द्विमात्रोप्यनन्तामायुर्दार्ढ्यं प्राप्नुयात् संयतात्मा ।

एतत् कृत्वा मुच्यते सर्वपार्ष्ण्यैर्दृच्छारदः शीतरश्मिः ॥ ३५ ॥

इति महापद्मभिराजप्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणगूढपाशधरनाग्नि वास्तुशास्त्रे

तोरणभङ्गकपोतमवेशशान्तिकौ नाम पद्मचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ वेदीलक्षणं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

वेद्यश्चतस्रो विज्ञेया याः पुरा ब्रह्मणोदिताः ।
 वयं ताः संप्रवक्ष्यामो नामसंस्थानमानतः ॥ १ ॥
 प्रथमा चतुरश्रा स्यात् समद्रा च द्वितीयका ।
 तृतीया श्रीधरी नाम चतुर्थी पद्मिनी स्मृता ॥ २ ॥
 यज्ञकाले तथोद्वाहे देवतास्थापनेषु च ।
 नीराजनेषु सर्वेषु बद्धिहोमे च नित्यशः ॥ ३ ॥
 नृपाभिषेचने चैव शक्रध्वजनिवेशने ।
 नृपयोग्या भवन्त्येता वर्णानामनुपूर्वशः ॥ ४ ॥
 चतुरश्रा तु या वेदी नवहस्ता समन्ततः ।
 अष्टहस्ता प्रमाणेन सर्वभद्रा प्रकीर्तिता ॥ ५ ॥
 श्रीधरी सप्त विज्ञेया हस्तान् मानेन वेदिका ।
 पट्टस्ता चैव शास्त्रज्ञैर्नलिनीह विधीयते ॥ ६ ॥
 चतुरश्रा तु कर्तव्या चतुरश्रा समन्ततः ।
 भद्रस्तु सर्वतोभद्रा भूषणीया चतुर्दिशम् ॥ ७ ॥
 श्रीधरी चापि विज्ञेया कोणविंशतिसंयुता
 नलिनीति च विज्ञेया पद्मगंस्थानधारिणी ॥ ८ ॥
 कर्तव्योः स्वस्वविस्तारादृच्छयेण त्रिभागिकाः ।
 कुर्यान्मन्त्रवतीभिस्ता इष्टकाभिस्तु पा(य?यि)तौः ॥ ९ ॥
 चतुरश्रा यज्ञकाले विवाहे श्रीधरी स्मृता ।
 देवतास्थापने वेदीं सर्वभद्रां निरेनयेत् ॥ १० ॥
 नीराजने माप्रिकार्षं तथा राजाभिषेचने ।
 वेदी पञ्चावती या च तथा शक्रध्वजोच्छ्रये ॥ ११ ॥
 चतुर्मुखा तु कर्तव्या गोपान्नं चतुर्दिशम् ।
 दर्शारम्भमायुता गार्ग्यण्टोपशोभिता ॥ १२ ॥

१. 'हस्ताः ३', २. 'हस्ताः ३', ३. 'हस्ताः ३', ४. 'हस्ताः ३', ५. 'हस्ताः ३'.

चतुःस्तम्भसमायुक्ता चतुष्कुम्भविराजिता ।
 काञ्चनै राजतैस्ताम्रैर्मृन्मयैः कलशैस्तथा ॥ १३ ॥
 कोणेकोणे तु विन्यस्तैर्वल्गुवानरभूपितैः ।
 स्तम्भप्रमाणं वेदीनां कार्यं छाद्यवशेन च ॥ १४ ॥
 एकेन द्वित्रिभिर्वापिच्छाद्यैः सामलसार्कैः ।
 स्तम्भमूलानि चाभ्यज्य गुहेन मधुसर्पिणा ॥ १५ ॥
 परमाग्नेन चाभ्यज्य तान् विन्यस्येद् यथातथम् ।
 देवताः पूजयित्वा तु ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयेत् ॥ १६ ॥
 चतुर्विधमितीरितं यदिह वेदिकालक्षणं
 समग्रमपि वर्तते मनसि यस्य तच्छिल्पिनः ।
 स याति भुवि पूज्यतामवनिभोक्तुरामोति च
 श्रियं स्थपतिसंसदि स्फुरति चास्य शुभ्रं यशः ॥ १७ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणवृत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 वेदीलक्षणं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ गृहदोषनिरूपणं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अतः परं गृहादीनामप्रशस्तसमुच्छ्रितम् ।
 क्रियते कथितं यस्मादेकत्र सुसमं भवेत् ॥ १ ॥
 रक्षोम्बुनाथकीनाशमरुदहनदिकृष्टवा ।
 मध्यष्टवा च भूर्व्याधिदारिद्र्यपरकावहा ॥ २ ॥
 वह्निष्टवा वह्निभिषे मृतये दक्षिणष्टवा ।
 रुजे रक्षःष्टवा प्रत्यवष्टवा धान्यभनच्छिदे ॥ ३ ॥
 कलहाय प्रवासाय रोगाय च मरुष्टवा ।
 मध्यष्टवा तु भूमिर्या सर्वनाशाय सा भवेत् ॥ ४ ॥

तुपास्थिकेशकीटत्वं(क)शहभस्मोपरान्विताम् ।
कर्पराज्ञारिणीं दुष्टसत्त्वानार्यजनां त्यजेत् ॥ ५ ॥

चैत्रे शोककरं वैश्व ज्येष्ठे मृत्युप्रदायकम् ।
पशुनाशनमापादे शून्यं भाद्रपदे कृतम् ॥ ६ ॥

औश्विने कलहाय स्यात् कार्तिके भृत्यनाशनम् ।
माघे चाग्निभयाय स्यान्मासेष्वेव न कारयेत् ॥ ७ ॥

पावकस्य पदे पृष्ठवंशस्यापि च पश्चिमे ।
पुरप्रासादकर्णे च कीलादि प्राक् प्रयोजयेत् ॥ ८ ॥

पूर्वपश्चिमदिङ्मूढं वास्तु स्त्रीनाशकृद् भवेत् ।
उदङ्मूढं न निष्पत्तिं याति सर्वं च नाशयेत् ॥ ९ ॥

यत्तु दक्षिणदिङ्मूढं जायते मरणाय तत् ।
प्राग्वास्तुनि (तु) कुर्वीत प्रासादं मन्दिरं पुरे ॥ १० ॥

वलितं चलितं भ्रान्तं विमृत्रं च समुत्सृजेत् ।
यत् स्यान्मुखविनिष्क्रान्तं वलितं तत् प्रकीर्तितम् ॥ ११ ॥

चलितं पृष्ठनिष्क्रान्तं दिङ्मूढं भ्रान्तमुच्यते ।
विमृत्रं कर्णहीनं स्यात् फलमेवां प्रचक्ष्महे ॥ १२ ॥

वलिते चलति स्थानं चलिते विग्रहो भवेत् ।
भ्रान्तं योपिडिनाशाय विमृत्रं भूरिशत्रुकृत् ॥ १३ ॥

मूषकोत्करवल्मीकप्रान्ता वक्रा भुजङ्गवत् ।
छिन्ना भिन्ना विकर्णा च न वास्तुनि शुभा स्थितिः ॥ १४ ॥

मूषकोत्करवत्यर्थं दन्ति वल्मीकिनी मुतम् ।
विकर्णा कुरुते कर्णे रोगं^१ छिन्ना विनाशिनी ।

भिन्ना भेदं करोत्युर्वीं कुटिल्या मतिवक्रताम् ॥ १५ ॥

सपादं सत्रिभागं वा गार्धं द्विगुणमेव च ।
यत् स्यान्मुखायतं वैश्व तदनिष्टकलप्रदम् ॥ १६ ॥

१. 'वी', २. 'द्वययम' ग. ग. पाठः. 'अधिव्ये क', ४. 'शुभम्'
क. पाठः । ५. 'वृ' क. ग. पाठः । ६. 'गान्' ग. पाठः ।

यद् द्विशालं त्रिशालं वा चतुःशालमथापि वा ।
 मूपया रहितं वेष्म नदनिष्टकलप्रदम् ॥ १७ ॥
 पुरतः पृष्ठतः पार्श्वे यदि वालिन्दवन्तिता ।
 गृहे न शस्यते शाला देवागारे तु शस्यते ॥ १८ ॥
 अन्यपृष्ठस्थितद्वारं वेष्म खादकमुच्यते ।
 परस्परविरोधाय तद् वेष्म गृहिणोस्तयोः ॥ १९ ॥
 सगल्यं पादहीनं च समसान्धि शिरोगुरुं ।
 वेष्मनामिदमुद्दिष्टं मर्मदोषचतुष्टयम् ॥ २० ॥
 बांस्तुक्षेत्रस्य यत्राङ्गे यस्य वर्त्म भवर्तने ।
 तदङ्गं वास्तुनस्तस्पन्धिषां तेनेति निर्दिशेत् ॥ २१ ॥
 छिन्नाङ्गं विकलं तत् स्याद् भीतिदं सर्वदोषकृत् ।
 तद्वर्तुर्भग्यतेऽङ्गं तद् वेधरतस्याफलोऽन्यथा ॥ २२ ॥
 स्वगृहद्वयमध्येन निर्वाहो यदि वर्त्मनः ।
 द्वारवेधोदितान् दोषांस्तदा प्राप्नोति निश्चितम् ॥ २३ ॥
 मार्गधैको यदा गच्छेद्दुर्भयोर्गृहपार्श्वयोः ।
 मार्गवेधस्तदा स स्याच्छोकसन्तापकारकः ॥ २४ ॥
 उत्सङ्गः पूर्णवाहुश्च हीनवाहुस्तथापरः ।
 मृत्युक्षाय इति प्रोक्तं प्रवेशानां चतुष्टयम् ॥ २५ ॥
 गृहस्य सम्मुखं यत्र द्वारं भवति वास्तुनः ।
 उत्सङ्ग इति सै प्रोक्तः पूर्णवाहुः प्रदक्षिणः ॥ २६ ॥
 चामतो हीनवाहुः स्यात् प्रत्यङ्क्षो वाध्वायस्तु पृष्ठतः ।
 चतुर्थोऽयं समुद्दिष्टः प्रवेशो वास्तुनो बुधः ॥ २७ ॥
 उत्सङ्गारूपे प्रवेशे स्यात् प्रजाहानिः कुटुम्बिनः ।
 धनधान्यक्षयो वास्य मरणं वा ध्रुवं भवेत् ॥ २८ ॥
 पूर्णवाही पुत्रपौत्रा धनधान्यसुखानि च ।
 भवन्ति वसतो नित्यं गृहिणस्तत्र वास्तुनि ॥ २९ ॥

१. 'कः' ख. ग. पाठः । २. 'य' क. पाठः । ३. 'क्ष', ४. 'मु',
 'सुक्तो वा' ख. पाठः ।

१. 'पूर्णवाहुस्तु' दक्षिणे २. 'तु' पाठो युक्तः ।

आद्यन्तविस्तृतं यत् स्यात् संक्षिप्तं चापि मध्यतः ।
 मृदुमध्यं तदुद्दिष्टं क्षुब्धयं तत्र जायते ॥ ५६ ॥
 विषमैरुन्नतैः कर्णैर्धनक्षयकरं गृहम् ।
 भित्तिवचापि कर्णेषु प्रागुक्तं फलमादिशेत् ॥ ५७ ॥
 मध्ये द्वारं न कर्तव्यं मनुजानां कथञ्चन ।
 मध्ये द्वारे कृते तत्र कुलनाशः प्रजायते ॥ ५८ ॥
 द्वारं द्वारेण वा विद्धमशुभायोपपद्यते ।
 अनिष्टद्रव्यसंयुक्तं धनधान्यविनाशनम् ॥ ५९ ॥
 नवं पुराणसंयुक्तमन्यं स्वामिनमिच्छति ।
 अधोग्रं राजदण्डाय विद्धे द्वारं विगर्हितम् ॥ ६० ॥
 नवं पुराणसंयुक्तं द्रव्यं तु कलिकारकम् ।
 न मिश्रजातिद्रव्योत्थं द्वारं वा वेष्टम् वा शुभम् ॥ ६१ ॥
 गृहस्थानेषु यद् द्रव्यमधिवास्य प्रतिष्ठितम् ।
 तच्चालनेन चलनं गृहभर्तुः प्रजायते ॥ ६२ ॥
 अन्यवास्तुच्युतं द्रव्यमन्यवास्तेन न योजयेत् ।
 प्रासादे न भवेत् पूजा गृहे च न वसेद् गृही ॥ ६३ ॥
 द्रव्येण देवदग्धेन भवनं यद् विधीयते ।
 न तत्र वसति स्वामी वसन्नपि विनश्यति ॥ ६४ ॥
 मूर्योद्भवा द्युमच्छाया ध्वजच्छाया च गर्हिता ।
 द्वारातिक्रमणादेताः क्षुब्ध्याधिकालिकारकाः ॥ ६५ ॥
 प्रासादशिखरच्छाया ध्वजच्छायेति कीर्तिता ।
 त्रिपञ्चसप्तमी भर्तुर्गृहतारा न शोभना ॥ ६६ ॥
 निम्नोन्नतं करालं च सम्मुखं पृष्ठदेशगम् ।
 वामाधत्तं च न शुभं द्वारमग्रतरं गृहे ॥ ६७ ॥
 निम्ने स्यात् स्त्रीजितो भर्ता दुर्जनस्थितिरुन्ने ।
 सम्मुखे मुत्तपीडा स्यात् पृष्ठे चपलाः स्त्रियः ॥ ६८ ॥
 वामे विसृज्यो द्वा(रि?)रे भवत्यग्रतरे प्रभो(?) ।
 द्वारं तस्माद्य कर्तव्यमीदृशं विचक्षणैः ॥ ६९ ॥

नागदन्ततुलास्तम्भभित्तिमूपामवाशकाः ।
 द्वारमध्ये न दातव्या न चैते विषमस्थिताः ॥ ७० ॥
 इतिहासपुराणोक्तं वृत्तान्तप्रतिरूपकम् ।
 निन्दितं च गृहे नेष्टं शस्तं देवकुलेषु तत् ॥ ७१ ॥
 यानीन्द्रजालतुल्यानि यानि मिथ्याकृतानि च ।
 भीषणानि च यानि स्युर्न कुर्यात् तानि वेश्मसु ॥ ७२ ॥
 स्वयमुद्धाटितं द्वारमुच्चाटनकरं भवेत् ।
 धनहृद् धन्धुर्वरं स्यादथवा कलिकारकम् ॥ ७३ ॥
 स्वयं यत् पिहितं द्वारं तद् भवेद् बहुदुःखदम् ।
 सशब्दं भयकृत् पादशीतलं गर्भपातनम् ॥ ७४ ॥
 द्रव्यं नाधोमुखं कार्यं प्रत्यग्याम्याननं नच ।
 पश्चिमाग्रे परिलेशो दक्षिणाग्रे तु शून्यता ॥ ७५ ॥
 स्तम्भद्वारं च भित्तिं च विपरीतं न कारयेत् ।
 अमीषां वैपरीत्येन दोषाः स्फुर्वहवो नृणाम् ॥ ७६ ॥
 मूलसूत्रानुसारेण कर्तव्या भूमिकोपरि ।
 उपर्युपरि यद् वेश्मसमं संतापकारकम् ७७ ॥
 अधोभूमौ क्षणा ये स्युस्तत्समाधौर्ध्वभूमिषु ।
 परित्यजन्नपहितो (?) न कुर्वीत यथोत्तरम् ॥ ७८ ॥
 शाला निम्ना भवेद् यस्मिन्नलिन्दस्त्वधिको भवेत् ।
 निधनं जायते तत्र सदा शोकमयानि च ॥ ७९ ॥
 मूलद्वारानुसारेण द्वाराण्युपरिभूमिषु ।
 कुर्याद् भयप्रदाने स्युर्विहितान्यन्यथा पुनः ॥ ८० ॥
 क्षुब्धयमदमाध्मा(नैतं) कुब्जं कुलविनाशनम् ।
 अत्यर्थं पीडितं पीडां करोत्यर्न्तनतं क्षयम् ॥ ८१ ॥
 मवासो बाह्यविनो दिग्भ्रान्ते दस्युतो भयम् ।
 मूलद्वारं क्षयं कुर्याद् विद्धं द्वारान्तरेण यत् ॥ ८२ ॥

१. 'तां' क. पाठः ।

'समस्तं ता' ख. ग. पाठः । ३. 'दु' ग. पाठः ।

४. 'ताः' ख. ग. पाठः । ५. 'क' क. पाठः । ६. 'न्तं' क. ग. पाठः ।

प्रवागो भृगुर्गो द्रोणो विदे चत्वारिभ्यः ।
 नार्गं द्रव्यं भवताविद्धं श्रेयसं विभुद्वयम् ॥ ८३ ॥
 पद्मविदे भवेन्तोक्तः मन्त्रियमाविणि स्वयः ।
 कृतेन विदेऽप्यग्रां विनाशो देवनेन च ॥ ८४ ॥
 स्वर्भेन दूषणं ग्रीणां वक्षणा तु कुलधयः ।
 मानादभ्यधिकं द्वारं राजनो जायते मयम् ॥ ८५ ॥
 व्यासने माननो हीने चार्गिभ्यश्च मयं भवेत् ।
 व्यापयः शस्त्रविदेन घनस्य च परिधयः ॥ ८६ ॥
 देवध्वजेन वन्द्यः स्यात् समर्थभयमंशयः ।
 सन्निपातमयं चाप्या तुल्या दृष्टत्वमाकृते(?) ॥ ८७ ॥
 हृदयं कुलालनकेण दारिद्र्यं चारिणा भवेत् ।
 व्याधिकर्षं कचकृतेन आपाकेन(?) सुतशयः ॥ ८८ ॥
 नि(धोस्त्व)तोदखलेन स्याच्छिख्या चाग्नी भवेत् ।
 तोयभाण्डेन दुर्मन्त्री मस्मना चार्गसो गृही ॥ ८९ ॥
 दारिद्र्यं छापया विदे भवेद् द्वारं कुटुम्बिनः ।
 स्थलस्यन्दनचलमीकविदेशगमनं भवेत् ॥ ९० ॥
 कृशं विकृतमत्युच्चं करालं शिथिलं पृथु ।
 वक्रं विशालमुत्तानं (शूस्वृ)लाग्रं ह्रस्वकुक्षिकम् ॥ ९१ ॥
 स्वपादचलितं ह्रस्वं हीनकर्णं मुखानतम् ।
 पार्श्वगं सूत्रमार्गाच्च भ्रष्टं द्वारं न शोभनम् ॥ ९२ ॥
 तत् करोति क्षयं घोरं विनाशं स्वामिसम्पदः ।
 वसतां कलहं नित्यमतस्तत् परिवर्जयेत् ॥ ९३ ॥
 अन्तर्द्वाराद् बहिर्द्वारं नोच्चं कुर्यान्न सङ्कटम् ।
 उच्चं विसङ्कटं चापि तच्छिवाय न जायते ॥ ९४ ॥
 पट्टसन्धिर्यदा मध्ये द्वारस्य स्यात् कथञ्चन

तुला उपतुला वास्युर्द्वारि तिर्यग् यदा कृताः ।
 दारिद्र्यव्याधिसन्तापा भवन्ति स्वामिनस्तदा ॥ ९६ ॥
 अनुवंशमनुमाप्ता जयन्त्यो यदि मन्दिरे ।
 वित्तापुपोस्तदाल्पत्वमनारोग्यं च जायते ॥ ९७ ॥
 उदुम्बरे (विनिहिता(नि?)) ललाटी नाम सा तुला ।
 दूषणं मरणं चापि कल्पानां विदधाति सा ॥ ९८ ॥
 उत्तराङ्गोदरे न्यस्ता ललाटेन समा यदि ।
 तुला ललाटिका सापि कुलक्षयकरी भवेत् ॥ ९९ ॥
 तुलापिण्डेन विन्यस्ता ज्ञेया यज्ञोपवीतिनी ।
 वसतो व्यसनं कुर्यात् कुटुम्बस्यासुखं च सा ॥ १०० ॥
 यदि भारतुलैकापि मध्ये विद्धा कथञ्चन ।
 तदा वराङ्गं भञ्जेत धनं च परिहीयते ॥ १०१ ॥
 भित्तिभेदो न कर्तव्यस्तुलाग्रैरखिलैरपि ।
 कुर्याद् ब्रह्मपदन्यस्तो भारपट्टः कुलक्षयम् ॥ १०२ ॥
 अयुक्तयोर्धृक्तयोर्वा सन्धिश्चेद् भारपट्टगे ।
 सन्धौ स्यात् तत् सुतो ज्येष्ठः कर्तुंश्चापि विनश्यति ॥ १०३ ॥
 अनुवंशं न भुञ्जीत न शयीत कदाचन ।
 भुञ्जानस्यार्थनाशः स्याच्छयानस्य महारुजः ॥ १०४ ॥
 नाशोऽनुवंशं रोगाः स्युस्तिर्यवस्थे रक्षसो भयम् ।
 शयनागारविन्यस्ते मरणं नागदन्तके ॥ १०५ ॥
 कर्णोवात्(?) पक्षिराद्यष्टाध्वजच्छत्रकुमारकान् ।
 सिंहकर्णकपोतालं गृहेषु परिवर्जयेत् ॥ १०६ ॥

अतिस्पृहेन हस्वेन शरीरेण यथा नरः ।
 विरूपो दुर्बलश्चैव तथा द्रव्येण मन्दिरम् ॥ १०९ ॥
 जीर्णं घृण(कृ)क्षितं मिश्रं हीनं वक्रं विधिच्युतम् ।
 चण्डं तुण्डं वक्रकोणं सन्धिविद्धाल्पमूलके ॥ ११० ॥
 वज्रमध्यं स्पूलमूलं कुक्षिभिन्नं च दारु यत् ।
 भिन्नमूलं कूर्मपृष्ठं पक्षहीनं च वर्जयेत् ॥ १११ ॥
 पातितान् वर्जयेद् वृक्षान् द्विपाश्वामिजलानिलैः ।
 प्रभूतपक्षिनिलयान् काककौशिकसेवितान् ॥ ११२ ॥
 मधुग्रहपिशाचाहिदुष्टांश्चैत्यश्मशानजान् ।
 चतुष्पथत्रिकमहानदीसङ्गममार्गजान् ॥ ११३ ॥
 देवतायतनेजातानूर्ध्वशुष्कान् क्षतच्छदान् ।
 बल्लीपिनङ्गान् सुपिरकोटरग्रन्थिसङ्कुलान् ॥ ११४ ॥
 याम्यापराशापतितांस्त्यजेत् कण्टकिनोऽपि च ।
 कपित्थोदुम्बराश्वत्थाशिरीषवटचम्पकान् ॥ ११५ ॥
 कोविदारधवारिष्टश्लेष्मातकविभीतकान् ।
 किञ्च सप्तच्छदक्षीरिफलदांश्च द्रुमांस्त्यजेत् ॥ ११६ ॥
 मर्माणि यत्र पीड्यन्ते द्वारैर्भित्तिभिरेव वा ।
 दारिद्र्यं कुलहानि वा गृहिणस्तत्र निर्दिशेत् ॥ ११७ ॥
 स्तम्भैर्विनश्यति स्वामी तुलाभिः स्त्रीवधो ध्रुवम् ।
 सद्ग्रहैर्वन्धुनाशः स्याज्जयन्तीभिः स्नुषावधः ॥ ११८ ॥
 मर्मस्थानस्थितैः कार्यैर्भर्तुः कायो निपीड्यते ।
 मर्मस्थैः सन्धिपालैस्तु सुहृद्विश्लेषमादिशेत् ॥ ११९ ॥
 घृहपीडा नागदन्तर्नागपाशैर्धनक्षयः ।
 कापिच्छकैस्तु प्रेम्णाणां धनं मर्मस्थितैर्वदेत् ॥ १२० ॥

व्याघ्रयः संप्रवर्धन्ते धननाशः कुलक्षयः ।
 राजदण्डभयं च स्यादपत्यानां च पीडनम् ॥ १२३ ॥
 पद्दारुकाणां मध्येषु द्वारमध्येषु वा पुनः ।
 कर्णद्रव्यादिभिर्विद्वेषेतदेवादिशेत् फलम् ॥ १२४ ॥
 संविद्धा नागदन्तैर्या स्तम्भैर्वातापनस्तथा ।
 शय्या शस्त्राद् भयं भर्तुः कुर्यात् तस्करतोऽपि वा ॥ १२५ ॥
 गृहमध्ये कृतं द्वारं द्रव्यकोशविनाशनम् ।
 आवहेत् कलहं भर्तुर्भार्या वास्य मदूपयेत् ॥ १२६ ॥
 द्रव्येष्वेकोत्तरेणापि महामर्मणि पीडितं ।
 मर्वस्वनाशो गृहिणो मरणं वा ध्रुवं भवेत् ॥ १२७ ॥
 द्वारस्तम्भतुलालिन्दैर्(ध्वं?)यद्रोषः संमीरितः ।
 विमूत्रे नागदन्तेऽपि तच्छून्यं जायते गृहम् ॥ १२८ ॥
 विभागपदहीनेषु रूपस्थानेषु वास्तुर्षु ।
 यक्षमातृक्रियाद्येषु रोगान्मृत्युर्न संशयः ॥ १२९ ॥
 कटुकण्ठकिदुर्गन्धिगुह्यकाशाथयान् द्रुमान् ।
 न धारयेत् समीपस्थान् पुरप्रासादवेष्टमनाम् ॥ १३० ॥
 यदरी कदली चैव दाडिमी बीजपूरिका ।
 मरोहन्ति गृहे यत्र तद्गृहं न मरोहति ॥ १३१ ॥
 द्रव्यं द्रव्याधिकं हन्ति कुलमायामतोऽधिकम् ।
 उच्छ्रयाभ्यधिकं पूजां सन्वति विस्तराधिकम् ॥ १३२ ॥
 स्तम्भाहर्भित्तिभिः पटैः शीर्षकैर्भवजस्तथा ।
 आलोकनातोरणाद्यिच्छार्थकैः फन्दकूटकैः ॥ १३३ ॥
 हीरशाखोचमात्रैश्च तुलाभिः सन्धिपालकैः ।
 अर्गलाग्रैर्वेदिकान्भिर्वर्णैर्जालैश्च नूतनैः ॥ १३४ ॥
 पातितैः पातितैः (हं?)र्जायते गृहिणो ध्रुवम् ।
 व्याधिदारिद्र्यदुःखैर्जायते निर्धनत्वं च जायते ॥ १३५ ॥

उपच्छायं छिद्रगर्भं ध्रुपितं वणिनं मुरं ।

हीनमध्यं नष्टगुणं गन्धविद्धं गिरोगुरु ॥ १३६ ॥

भ्रष्टालिन्दकशोभं च विषमस्थं तुलानलम् ।

भ्रष्टोन्मत्तद्रव्यविद्धं च कुंभदप्रविभाजितम् ॥ १३७ ॥

हीनभिच्युत्तमाहं च विनष्टं स्तम्भभित्तिकम् ।

भिक्षुनालं त्यक्तकण्ठं निष्कन्दं मानवर्जितम् ॥ १३८ ॥

विकृतं च गृहं भर्तुरनिष्टफलदायकम् ।

तस्माद् दोषानिमांस्तपयत्वा गृहं कुर्याच्छुभायहम् ॥ १३९ ॥

एवंविधं दोषकरं गृहं स्याद् भर्तुश्च कर्तुश्च यतस्तदेते ।

ज्ञेयाः सदा शिल्पिभिरग्रमर्त्तस्त्याज्याथ दोषाः शुभकीर्तिकामैः ॥ १४० ॥

इति महाराजाधिराजधीमोजदेवविरचिते समराट्टणयूषवायपरनाम्नि बाह्यशास्त्रे

गृहदोषनिरूपणं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ रुचकादिप्रासादलक्षणं नामैकोनपञ्चाशोऽध्यायः ।

त्रिदशानां नृपाणां च वणिनां च विशेषतः ।

उत्पत्तिमष्टति ग्रमः प्रासादा यस्य ये मताः ॥ १ ॥

आत्मनः शूलहस्तस्य धनाध्यक्षस्य पाशिनः ।
 सुरेशिने च विश्वेशो विमानानि यथाक्रमम् ॥ ४ ॥
 बहून्यन्यानि चैवं स सूर्यादीनामकल्पयत् ।
 विशेषाय यथोक्तैस्तान्पाकारैः प्रतिदेवतम् ॥ ५ ॥
 प्रासादांश्च तदाकाराञ्च शिलापकेष्टकादिभिः ।
 नगराणामलङ्कारहेतवे समकल्पयत् ॥ ६ ॥
 वैराजं चतुरश्रं स्याद् वृत्तं कैलाससंज्ञितम् ।
 चतुरश्रायताकारं विमानं पुष्पकं भवेत् ॥ ७ ॥
 वृत्तायतं च मणिकमष्टाश्रि स्यात् त्रिविष्टपम् ।
 तद्भेदाञ्च श्रीमतोऽन्यांश्च त्रिविधानसृजन्तु मनुः ॥ ८ ॥
 ये यत्र विहिता भेदाः पूर्वं कमलयोनिना ।
 सर्वांस्तानभिधास्यामो नामसंस्थानमानतः ॥ ९ ॥
 रुचकाश्चित्रकूटश्च तृतीयः सिंहपञ्जरः ।
 भद्रः श्रीकूट उष्णीषः शालाक्षो ऽ गजयूथपः ॥ १० ॥
 नन्द्यावर्तोऽवतंसाहः स्वस्तिकः क्षितिभूषणः ।
 भूजयो विजयो † नन्दी श्रीतैरुः प्रमदामियः ॥ ११ ॥
 व्यामिश्रो हस्तिजातीयः कुबेरो वसुधाधरः ।
 सर्वमद्रो विमानार्णवो मुक्तकोणश्च नामतः ॥ १२ ॥
 चतुर्विंशतिरुद्दिष्टा चतुरश्राः समासतः ।
 वृत्तांस्तथामिधास्यापः प्रासादानपरानपि ॥ १३ ॥
 वलयो दुन्दुभिः प्रान्तः पद्मः कान्तश्चतुर्मुखः ।
 मौण्डकाख्योऽथ कूर्मश्च तालीष्टह उल्लापिकः ॥ १४ ॥
 इति वृत्ताः समासेन प्रासादा दश कीर्तिताः ।

भवा विशालः साम्मुख्यः प्रभवः त्रिविराष्ट्रः ।
मुखशालो द्विशालश्च गृहराजोऽपलो विभुः ॥ १६ ॥

एवमेते समुद्रिष्टाश्चतुरश्रायता दश ।

अथ वृत्तायतान् धूमः प्रासादानभिधानः ॥ १७ ॥

आमोदो रतिकस्तुभ्रभारुभूतिनिषेवकः ।

सदा(?)निषेधः सिंहाख्यः गुप्तभो मोचनोत्सवः ॥ १८ ॥

एते वृत्तायताः प्रोक्ताः प्रासादा नामतो दश ।

अष्टाश्रीणां च नामानि कथयामि समासतः ॥ १९ ॥

पञ्चको नन्दनः शङ्कुर्मखलो वामनो लघुः ।

महापद्मश्च हंसश्च व्योमचन्द्रोदयाविति ॥ २० ॥

अष्टाश्रय इमे प्रोक्ताः प्रासादा दश संख्यया ।

भवन्त्येवं चतुष्पाष्टिर्लक्ष्मपामधुनोच्यते ॥ २१ ॥

संस्थानमानविन्यासैर्भद्रस्तम्भादिसङ्ख्यया ।

एषां विशेषा वक्ष्यन्ते पृथक् पृथगनुक्रमात् ॥ २२ ॥

ज्येष्ठो भागश्चतुर्हस्तः सार्धहस्तत्रयोऽपरः ।

कल्पनीयः कनीयांस्तु हस्तत्रितयसम्मितः ॥ २३ ॥

ज्येष्ठमध्यकनीयोभिरेवं भागैर्विभाजिताः ।

भवन्ति सर्वप्रासादा ज्येष्ठमध्याधमक्रमात् ॥ २४ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्भागाविभाजिते ।

कुर्यात् स्वारोहकाश्वासं पीठमंशसमुद्धृतम् ॥ २५ ॥

तथा तस्योपरि स्थाप्या हंसपृष्ठी^१ समन्ततः ।

हस्तमात्रोच्छ्रिता वृत्ता जलनिर्गमभूषिता ॥ २६ ॥

ततः पीठस्य तस्यान्तर्द्विभागा(य?या)मविस्त्विति ।

प्रासादो रुचकः कार्यो भागत्रितयमुच्छ्रितः ॥ २७ ॥

सार्धभागेन संछा स्यात् सार्धभागस्तु योऽपरः(?) ।

छा(य?द्य)त्रयं सकण्ठं स्यात् तेन सामल^२ तस्कम् ॥ २८ ॥

१. 'री' ख. ग. पाठः । २. 'द्व', ३. 'छा' क. पाठः । ४. 'स्त' ख. ग. पाठः ।
'वृत्तम्', ५. 'स्तम्भा स्यात्' ख. पाठः । ६. 'द्व' क. पाठः ।

द्वारं भागोच्छ्रितं तस्य कार्यं भागार्धविस्तृतम् ।

सप्राग्रीवः स कर्तव्यश्चतुर्दशपरावृतः ॥ २९ ॥

ससौधालिन्दकश्चारुर्ध्वच्छाद्योपकर्षवान् ।

क्रियतेऽत्र यदा स्तम्भौ(म्भौः)द्वाविंशत्या समावृतः ॥ ३० ॥

सप्राग्रीवपरिष्कारो भागिकालिन्दशोभितः ।

मध्यप्रदेशे रुचकः प्रासादः परिकीर्तितः ॥ ३१ ॥

रुचकः ।

कर्णप्राग्रीवकैश्चित्रैः सप्राग्रीवश्च यो वृतः ।

द्वाभ्यां द्वाभ्यां गवाक्षाभ्यां चतुर्दिशमलङ्कृतः ॥ ३२ ॥

कपोतालीपरिक्षिप्तः शोभितो द्वारसम्पदा ।

तदानीं चित्रकूटालयः प्रासादः सोऽभिधीयते ॥ ३३ ॥

चित्रकूटः ।

अयेमेव पुनः पद्भिः स्तम्भैरपि चितो यदा ।

प्राग्रीवकविहीनश्च स भयेज्जालरूपकः ॥ ३४ ॥

सिंहपञ्जर इत्युक्तः प्रासादः स तदा शुभः ।

सिंहपञ्जरः ।

कर्णप्राग्रीवकौ द्वौद्वावस्यैव भवतो यदा ॥ ३५ ॥

अलिन्दकगतिस्थित्या तदा भद्रः प्रकीर्तितः ।

भद्रः ।

स्याच्चित्रकूटः प्राग्रीवश्चतुर्भिर्दिक्चतुष्टये ॥ ३६ ॥

बहिरन्तश्चतुर्द्वारः श्रीकूट इति नामतः ।

श्रीकूटः ।

पद्मारुकसमायुक्तभागद्वारस्त्वयमेव चेत् ॥ ३७ ॥

भयो विनालः साम्मुख्यः प्रभवः शिविरागृहः ।
 मुसशालो द्विशालश्च घृष्टानोऽम्बो त्रिभुः ॥ १६ ॥
 एवमेतं समुद्रिष्टानुरागता दश ।
 अथ वृत्तायतान् मूमः प्रासादानभिधानः ॥ १७ ॥
 आमोदो रतिकस्तुभ्रथारुर्भूतिर्निपेवकः ।
 सदा(?)निपेधः सिंहाख्यः शुभमो मोचनोत्सवः ॥ १८ ॥
 एते वृत्तायताः प्रोक्ताः प्रासादा नामतो दश ।
 अष्टाश्रीणां च नामानि कथयामि समासतः ॥ १९ ॥
 वक्त्रको नन्दनः शङ्कुर्मखलो वामनो लयः ।
 महापद्मश्च हंसश्च व्योमचन्द्रोदयाविनि ॥ २० ॥
 अष्टाश्रय इमे प्रोक्ताः प्रासादा दश संख्यया ।
 भवन्त्येवं चतुष्पष्टिर्लक्ष्मणामधुनोच्यते ॥ २१ ॥
 संस्थानमानविन्पासैर्मद्रस्तम्भादिसहस्रया ।
 एषां विशेषा वक्ष्यन्ते पृथक् पृथगनुक्रमान् ॥ २२ ॥
 ज्येष्ठो भागश्चतुर्हस्तः सार्धहस्तत्रयोऽपरः ।
 कल्पनीयः कनीयांस्तु हस्तत्रितयसम्मितः ॥ २३ ॥
 ज्येष्ठमध्यकनीयोभिरेवं भागैर्विभाजिताः ।
 भवन्ति सर्वप्रासादा ज्येष्ठमध्याधमक्रमान् ॥ २४ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्भागविभाजिते ।
 कुर्यात् स्वारोहकाश्वासं पीठमंशसमुद्भूतम् ॥ २५ ॥
 तथा तस्योपरि स्थाप्या हंसपृष्ठी^१ समन्ततः ।
 हस्तमात्रोच्छ्रिता वृत्ता जलनिर्गमभूषिता ॥ २६ ॥
 ततः पीठस्य तस्यान्तर्दिभागा(य?)मविस्त्रुतिः ।
 प्रासादो रुचकः कार्यो भागत्रितयमुच्छ्रितः ॥ २७ ॥
 सार्धभागेन संछा स्यात् सार्धभागस्तु यो(?)र(?) ।
 छा(य?)त्रयं सकण्ठं स्यात् तेन सामल^२ तत्कम् ॥ २८ ॥

१. 'री' ख. ग. पाठः । २. 'द्र', ३. 'छा' ४. '२' त्रिभुः ।
 ५. 'वृत्तमु', ६. 'स्तम्भा स्यात्' ख. पाठः ।

द्वारं भागोच्छ्रितं तस्य कर्णं भागार्धविस्तृतम् ।

सप्राग्रीवः स कर्तव्यश्चतुर्दशपरावृतः ॥ २९ ॥

ससौधालिन्दकश्चारुहर्षच्छाद्योपकर्षवान् ।

क्रियतेऽत्रै यदा स्तम्भोऽम्भैः)द्वाविंशत्या समावृतः ॥ ३० ॥

सप्राग्रीवपरिष्कारो भागिकालिन्दशोभितः ।

मध्यप्रदेशे रुचकः प्रासादः परिकीर्तितः ॥ ३१ ॥

रुचकः ।

कर्णप्राग्रीवकैश्चित्रैः सप्राग्रीवश्च यो वृतः ।

द्वाभ्यां द्वाभ्यां गवाक्षाभ्यां चतुर्दिशमलङ्कृतः ॥ ३२ ॥

कणोतालीपरिक्षिप्तः शोभितो द्वारसम्पदा ।

तदानीं चित्रकूटालयः प्रासादः सोऽभिधीयते ॥ ३३ ॥

चित्रकूटः ।

अयेमेव पुनः पद्भिः स्तम्भैरपि चितो यदा ।

प्राग्रीवकविहीनश्च स भयेज्जालरूपकः ॥ ३४ ॥

सिंहपञ्जर इत्युक्तः प्रासादः स तदा शुभः ।

सिंहपञ्जरः ।

कर्णप्राग्रीवकौ द्वौद्वावस्यैव भवतो यदा ॥ ३५ ॥

अलिन्दकगतिस्थित्या तदा भद्रः प्रकीर्तितः ।

भद्रः ।

स्याच्चित्रकूटः प्राग्रीवैश्चतुर्भिर्दिक्चतुष्टये ॥ ३६ ॥

धहिरन्तश्चतुर्द्वारः श्रीकूट इति नामतः ।

श्रीकूटः ।

पद्द्वारकसमायुक्तं प्रागद्वारस्त्वयमेव चेत् ॥ ३७ ॥

प्रासादस्तम्भगर्भैः स्यात् तदोष्णीपोऽभिधीयते ।

पीठं शालाष्ट्रस्योक्तं मशालानिर्गमं शुभम् ।

मध्यादपरमण्यस्य द्विभागायनविस्तृतम् ॥ ३९ ॥

विभेगं गर्भमननमनिन्दरूपरिष्टम् ।

कार्यो नस्याग्रतः शीमा भागद्विनयमायना ॥ ४० ॥

भागमेकं च विस्तीर्णा चतुःस्तम्भोपशोभिता ।

तदग्रतोऽग्रा सीमा कार्या भागान् पदायना ॥ ४१ ॥

निर्गमं स्या भागविस्तीर्णा प्रवेगद्वयशोभिता ।

एवं शालाष्ट्रः (३) स्तम्भद्वौविंशत्या समावृत्तः ॥ ४२ ॥

माघ्रीनवेदिकानालपक्षसोपानतः शुभः ।

शालाष्ट्रः ।

पञ्चभागोन्मितव्यासे क्षेत्रे मागाष्टकायने ॥ ४३ ॥

पीठं कुर्यादुभयतः सप्तोपानं शिलाचितम् ।

मध्यादपरमाण्यस्य देवागारं निवेगयन् ॥ ४४ ॥

(वि?द्वि)भागायामविस्तारं चतुश्चं मुसंहितम् ।

पादोनभागविस्तारमध्यं भागमुच्छ्रितम् ॥ ४५ ॥

तस्य कार्यं मुखं मध्ये पार्श्वतश्चयशोभितम् ।

सचया निर्गता सीमा द्वौ भागौ त्रींस्तथाय(था?ता) ॥ ४६ ॥

चतुरश्रा चतुःस्तम्भा तदग्रे भागविस्तृता ।

पञ्चभागायता तिर्यक् कार्या सीमा तथापरा ॥ ४७ ॥

द्वाविंशदत्र कर्तव्याः स्तम्भाः सर्वैक्यसद्व्ययया ।

वहिःपरिसरो गर्भात् ससीम्नो भागविस्तृतः ॥ ४८ ॥

एवं स्याद् वेदिकानालरूपादिभिरलङ्कृतः ।

बहिर्वि?श्चयोच्छ्रितश्चैव प्रासादो गजयूथपः ॥ ४९ ॥

गजयूथपः ।

पद्मभागभाजिते क्षेत्रे चतुरश्रे समन्ततः ।

गर्भो द्विभागीकः कार्या द्वारं भागसमुच्चिताम् ॥ ५० ॥

१. 'यस्त' क. ख. ग. पाठः । २. 'ताः' ख. ग. पाठः । ३. 'भा' क. ख. ग. पाठः ।

४. 'ता', ५. 'ह' ख. ग. पाठः । ६. 'स्य मध्ये मुखं कार्यं' ख. ग. पाठः । ७. 'तदेव व्ययं'

ख. ग. पाठः । ८. 'नित' ख. पाठः ।

भागार्थं द्वाविस्तारः प्रासादस्योच्छ्रितं पुनः ।
 कुर्वीत चतुरो भागाञ्छादयेच्चित्रकूटवत् ॥ ५१ ॥
 कार्या द्विभागिकाः शालाः सालिन्दास्तस्य बाह्यतः ।
 बहिर्भित्तिपरिक्षिप्ताश्चतुर्भागायताः शुभाः ॥ ५२ ॥
 द्वौ द्वौ गवाक्षकौ स्तम्भाः प्रतिशालं भवन्ति पद ।
 चतुःस्तम्भधृतैर्घुक्ताः कार्या वा धार्मिकालयैः ॥ ५३ ॥
 नन्वावर्तोऽयमेवं स्यात् समग्रीवचतुष्टयः ।
 प्रागु(१)द्धारक्षणेपेतः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ ५४ ॥
 नन्वावर्तः ।
 क्षे(त्रे)पद्भागविस्तारे दशभागकृतायता ।
 मध्यादपरभागेऽस्य देवकोष्ठं निवेशयेत् ॥ ५५ ॥
 चतुरंशप्रतिन्यासं चतुरश्रं समन्ततः ।
 द्वारं तस्य विधातव्यं भागमध्यर्धमुच्छ्रितम् ॥ ५६ ॥
 पादोनं भागविस्तारं सिंहवक्त्रविभूषितम् ।
 सीमा तस्याग्रतः कार्या देवकोष्ठेन सम्मिता ॥ ५७ ॥
 स्तम्भैः षोडशभिर्घुक्ता भागद्वितयमुच्छ्रितैः ।
 ससीम्नो देवकोष्ठस्य समन्ताद् भित्तिवेष्टितः ॥ ५८ ॥
 अलिन्दो भागिकः कार्या गवाक्षैरुपशोभितः ।
 (तत्)सीम्नोर्थाग्रतः पार्श्वे पद्दालकयुक्ता वैहिः ॥ ५९ ॥
 कार्या द्विरंशाः प्राग्रीवा भागिकालिन्दवेष्टिताः ।
 द्विदिस्तम्भधृताः सर्वे पार्श्वतश्चयशोभिताः ॥ ६० ॥
 अलिन्दास्तु चतुःस्तम्भाः कार्याः प्राग्रीवकाग्रतः ।
 अवतंसक इत्येष सर्वलक्षणसंयुतः ॥ ६१ ॥
 प्रासादः कथितः सम्यक्
 अवतंसः ।

प्रासादं कल्पयेन्मध्ये द्विभागायामविस्तृतम् ।
 द्वारपाशोऽस्य भागार्थविस्तृतो मागिकोदयः ॥ ६३ ॥
 गर्भवेश्म चतुःस्तम्भमलिन्दो भागिको बहिः ।
 तस्य स्युर्द्वादश स्तम्भा भागिकोऽलिन्दकोऽपरः ॥ ६४ ॥
 विंशतिस्तम्भसंयुक्तो विधातव्यः समन्ततः ।
 चयावृतश्च पुरतो भागो वाष्टधरान्वितः ॥ ६५ ॥
 भागमेकैकमुत्सृज्य कर्णाभ्यां भागविस्तृतौ ।
 भागिकोच्छ्रायनिष्कासौ कायौ प्राग्रीवकौ पुनः ॥ ६६ ॥
 बाह्यतो भित्तिसंश्लिष्टौ त्रिदिशं सगवाक्षकौ ।
 स्वस्तिकोऽयं समाख्यातः प्रासादश्चित्रलक्षणः ॥ ६७ ॥

स्वस्तिकः ।

अधाभिधीयतेऽधुना प्रासादः ^१ शुभलक्षणः ।
 पट्टभागभाजिते क्षेत्रे चतुरश्रे समन्ततः ॥ ६८ ॥
 द्विभागायामविस्तारं मध्ये गर्भगृहं भवेत् ।
 भागद्वयोच्छ्रितैः स्तम्भैर्युतं व्यक्तैः सलक्षणैः ॥ ६९ ॥
 निष्क्रान्तेषु बहिर्भागे गर्भपादेषु योजयेत् ।
 तोरणानि मनोहानि ककुप्सु चतसृष्वपि ॥ ७० ॥
 मर्मस्तम्भप्रमाणेन तानि स्तम्भद्वयेन वा ।
 समुत्तिष्ठानि युक्तानि कलशं रविमण्डलैः ॥ ७१ ॥
 पञ्चैः पञ्चजात्यादिविम्पासैश्चाप्यनेकशः ।
 भूषितास्ते पुनर्मूर्ध्नि मकराणां मुखैरपि ॥ ७२ ॥
 स्तम्भयोरन्तरे दद्यादुभौ मकरपूरिमां ।
 अन्योन्याभिमुखे ^२ श्लिष्टे कुर्यान्मकरयोर्मुखे ॥ ७३ ॥
 चतुर्णापि निर्दिष्टतोरणानां मया विधिः ।
 अलिन्दो भागिकश्चान्यो बहिर्भागे प्रकीर्तितः ॥ ७४ ॥

१. 'स' क. पाठः । २. 'द' क, 'द' ख. ग. पाठः । ४. 'मि'

५. 'रजो' ख. पाठः ।

उभयत्र' इति पाठः । एतत् ।

स्युर्भागिकान्यलिन्दान्ते धार्मिकायतनानि च ।

वेष्टितानि बहिर्भिच्या सम्मुखानि परस्परम् ॥ ७५ ॥

धार्मिकालयभिस्तीनां भूमिर्या वास्तवो भवेत् ।

तस्याः पद्दारुकाणि स्युर्भागमात्रोच्छ्रितानि च ॥ ७६ ॥

प्राग्ग्रीवकैः ससोपानैर्दिवचकैस्त्वानि भूषयेत् ।

अपरस्याः पुनर्भिचेर्भागद्वयविनिस्सृतम् ॥ ७७ ॥

मध्ये द्विभागविस्तीर्णं देवकोष्ठं निवेशयेत् ।

द्वारपाशं च कुर्वीत तस्यो(कुं?ध्वं) भागमुच्छ्रितम् ॥ ७८ ॥

तथा भागार्धविस्तारमित्येष क्षितिभूषणः ।

प्रासादः कीर्तितः सम्यक् सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ७९ ॥

क्षितिभूषणः ।

क्षेत्रस्य चतुरश्रस्य भागान् द्वादश कल्पयेत् ।

मध्ये गर्भं चतुःस्तम्भं तस्य कुर्याद् द्विभागिकम् ॥ ८० ॥

तद्वहिर्भागिकोजलिन्दो द्वादशस्वम्भवान् भवेत् ।

मध्येऽपरस्यां यौ स्तम्भौ ताभ्यां कुर्वीत तोरणम् ॥ ८१ ॥

अलिन्दो भागिकः कार्यो भिच्या भागिकया वृतः ।

प्राच्यां पद्दारुकं मध्ये गर्भेष्वासोन्मितायति ॥ ८२ ॥

तृतीयो भागिकोजलिन्दः स्याद् भिच्या परिवेष्टितः ।

चतुर्भागायतं भूयस्तत्र पद्दारुकं भवेत् ॥ ८३ ॥

प्राग्ग्रीवं भागविष्कम्भं कुर्याद् भागद्वयायतम् ।

अग्रतः स्तोभितं स्तम्भैर्भागान्वस्थवयावृतम् ॥ ८४ ॥

यथा प्राच्यां तथोदीच्यां याम्यायामपि कीर्तितम् ।

दिशि प्रतीच्यां तु पुनर्दितीयालिन्दकाद् बहिः ॥ ८५ ॥

द्विभागायामविष्कम्भं देवकोष्ठं निवेशयेत् ।

सप्तद्वारकं द्वारपाशोपशोभितम् ॥ ८६ ॥

बहिर्भिच्याभिवेष्टितः ।

बहिश्चयावृतो गवाक्षैर्वा विभूषितः ॥ ८७ ॥

चतुःस्तम्भैः सप्रवेशैः समन्तादुपनिर्गमैः ।

प्रासादोऽयं समाख्यातो नामतः प्रमदाप्रियः ॥ ९९ ॥
प्रमदाप्रियः ।

भागविस्तारविष्कम्भमस्य प्राग्रीवकं यदा ।

भिन्नालिन्दाग्रतस्तिर्यग् द्वे शाले तन्मुखं शुभम्(?) ॥ १०० ॥

द्वितीयालिन्दकस्थाने कर्णप्रासादकैर्युतः ।

एवं व्यामिश्रसंज्ञोऽयं प्रासादः परिकीर्तितः ॥ १०१ ॥
व्यामिश्रः ।

विजयस्यास्य च यदा कर्णलाङ्गलकैर्युता ।

भवेद् भित्तिस्तदा हस्तिजातीय इति कथ्यते ॥ १०२ ॥
हस्तिजातीयः ।

सीमामाग्रीवभूमीषु यदा स्युः पृथिवीजये ।

द्विभागाश्चाभितोऽलिन्दास्तिर्यक्शालामुखेषु च ॥ १०३ ॥

अलिन्दे^१ पश्चिमा शाला सर्वैर्वा^२शालोकना शुभा ।

पद्दारुकं तथैवात्र चतुर्भागायतं भवेत् ॥ १०४ ॥

पूर्ववत् सर्वमन्यच्च कुबेरः स तदा भवेत् ।

कुबेरः ।
प्रासादः कथ्यतेऽन्यत्र सम्प्रतीह धराधरः ॥ १०५ ॥

कुबेरोपत्तरोक्षितः (?) कर्णप्रासादभूषितः ।

मध्यद्वारान्वितः श्रीमान् धराधर इति स्मृतः ॥ १०६ ॥

वसुधाधरः ।
यत्रोग्रतश्चित्रकूटस्तस्माद् यः सर्वतोदिशम् ।

धराधरतदम्भासः(?) सर्वतोभद्र उच्यते ॥ १०७ ॥

सर्वतोभद्रः ।
कर्णप्राग्रीवकौ द्वौ द्वौ शालामाग्रीवका(अ^३व)पि ।

स्पातां यदास्य प्रोक्तोऽसौ विमानाख्यस्तदा शुभः ॥ १०८ ॥

विमानाख्यः ।
विमानपीठे^४ शालाभिः सर्वतो वृतः ।

विमानो न्यस्यते यदा ॥ १०९ ॥

१. 'वेदस्ति' तदा' ख. २. 'काल' क. पाठः । ३. 'आ' क. ख. ग. पाठः ।
'न्दो' ख. ग. पाठः । ४. 'न', ७. 'कृष्ण' क. पाठः ।

ख्यातो माण्डूक इत्येष वृत्तप्रासादसत्तमः (वृत्तः?)।

दिकोणेषु यदास्यैव भवेत् प्राग्ग्रीवकल्पना ॥ १२२ ॥

प्रासादोऽयं तदा कूर्मसंज्ञः स्यादपराजितः ।

कूर्मस्यैव यदा दिक्षु स्तम्भैरष्टाभिरष्टभिः ॥ १२३ ॥

प्राग्ग्रीवकाः प्रकल्प्यन्ते चत्वारोऽलिन्दवेष्टिताः ।

प्राग्ग्रीवकास्तिर्यग्रे भवन्त्यन्ये तदग्रतः ॥ १२४ ॥

षोडशस्तम्भयुक्तस्य मध्यभागे यदा भवेत् ।

† जानीयादोषविज्ञेयाः प्राग्ग्रीवहरितोत्तमः (?) ॥ १२५ ॥

इति वृत्ताः समाख्याताः प्रासादा नामलक्षणैः ।

चतुरश्रायतान् मूमः प्रासादानिह साम्प्रतम् ॥ १२६ ॥

अष्टभागायते क्षेत्रे चतुरंशकविस्तृते ।

दिभागसार्धभागैकभागोऽयं पीठं इष्यते ॥ १२७ ॥

पश्चिमं मागमुत्सृज्य देवकोष्ठं द्विभागिकम् ।

तस्मिन् निवेशयेत् सीमा स्यादस्याग्रेऽष्टभिर्धरैः ॥ १२८ ॥

ससीम्नो देवकोष्ठस्य भागिकालिन्दको बहिः ।

युक्तो घराणां विंशत्या वेदिकानालवेष्टितः ॥ १२९ ॥

प्राग्ग्रीवकस्य तस्याग्रे स्तम्भद्वितयभूषितः ।

द्विच्छाद्यच्छादितः श्रीमान् सिद्धकर्णरलङ्कृतः ॥ १३० ॥

प्रासादोऽयं भवो नाम विशालः कथ्यतेऽधुना ।

यदास्यैव सनिष्क्रान्ते सीमार्यामे च वर्धयिष्यते ॥ १३१ ॥

वलभ्या पार्थव्यैः स्यातां विशालाख्यस्तदा भवेत् ।

विशालस्य यदा गर्भे भित्तिर्भवति दिक्त्रये ॥ १३२ ॥

१. 'मू' क. ए. पाठः । २. 'कर्णः', ३. 'ये' । वृत्तप्रासादः । च' क. पाठः ।
४. 'टमिष्य' ए. पाठः । ५. 'येमे च' क. ख. पाठः । ६. 'त' क. पाठः ।

... १३६ विष्णोर्भट्टः सौम्यो मतिरित इव भाति, यतो वृत्तप्रासादभेदेषु सत्ये परिमिति
कथ्यमानवयोः साग्रीपरीक्षणीयवयोर्वचनं न दृष्टितम्, अथ इत्यमानस्य च कोट्यापेक्ष
नार्येणामुक्तम् ।

द्वौ द्वौ गवाक्षकौ चापि साम्मुख्यः स भवेत् तदा ।
 प्राग्रीवास्त्रिदिशं तस्य गर्भकोष्ठायता यदा ॥ १३३ ॥
 हित्वा बलभ्यौ प्राग्रीवौ विधीयेते तथापरौ ।
 कर्णेषु भागमेकैकं त्यक्त्वा स्यात् प्रभवस्तदा ॥ १३४ ॥
 एतस्यैव मुखे स्यातां यदा प्राग्रीवकागुभौ ।
 पार्श्वयोरपरौ द्वौ द्वौ प्राग्रीवौ भवतो यदा ॥ १३५ ॥
 कर्णेषु भित्तयश्च स्युस्तदा स्याच्छिविरागृहः ।
 यदास्यैव मुखे शाला भागद्वितयविस्तृता ॥ १३६ ॥
 आयामेन च पद्भिराग्राग्रीवौ द्वौ तदग्रतः ।
 द्वौ द्वौ गवाक्षकौ स्यातां तद्विच्योरुभयोरपि ॥ १३७ ॥
 सीमायां द्वादश स्तम्भा मुखशालस्तदा भवेत् ।
 अलिन्दो भागिकः कार्यो विशालस्यैव बाह्यतः ॥ १३८ ॥
 प्राग्रीवभूमिषु वृत्तौ भित्त्या च सगवाक्षकः ।
 अग्रतः सहितः स्तम्भैः पद्भिश्च क्रियते यदा ॥ १३९ ॥
 द्विशाल इति विख्यातः प्रासादो जायते तदा ।
 यदास्यैव विधीयन्ते स्तम्भाः सर्वे समन्ततः ॥ १४० ॥
 प्राग्रीवकौ चोभयतो गृहराजस्तदा भवेत् ।
 सर्वस्यैव(१) यदालिन्दः स्यादन्यो भागविस्तृतः ॥ १४१ ॥
 सीमान्तविस्तृते स्यातां बलभ्यौ भागनिष्ठते ।
 भित्तिर्विधीयते शेषा गवाक्षैरुपशोभिता ॥ १४२ ॥
 मुखे पद्भिरारुहं च स्यात् तदा स्यादमलाभिधः ।
 एकादशापते क्षेत्रे तथा पद्भिरागविस्तृते ॥ १४३ ॥
 मुक्त्वा भागद्वयं पश्चाद् देवकोष्ठं निवेशयेत् ।
 भागं मुक्त्वाग्रतः कुर्यात् सीमां भागचतुष्टयम् ॥ १४४ ॥
 अष्टस्तम्भास्ततोऽलिन्दविंशतिस्तम्भभागिकः ।
 भागिकः परितोऽलिन्दोऽष्टाविंशतिपरिष्वरः ॥ १४५ ॥

१. 'स्यात् त' २. 'गवाक्षे च वा', ३. 'चौ', ४. 'वि', ५. 'वितृते'

द्विद्विस्तम्भयुताः कार्याः प्राग्ग्रीवाः कोष्ठजास्त्रयः ।
 सीमासमे वलभ्यौ च प्राग्ग्रीवौ मध्यतस्तयोः ॥ १४६ ॥
 द्विद्विस्तम्भौ पुरश्चान्यौ वेदिकाजालशोभितौ ।
 वेदिकाजालरूपाढ्यः सिंहकर्णोपशोभितः ॥ १४७ ॥
 प्रासादोऽयं त्रिभुर्नाम कथितो भर्तुनन्दनः ।
 एवमेतं समाख्याताश्चतुश्चायता दश ॥ १४८ ॥
 चतुरश्चायतांस्तिर्यगायत्याधापरानपि ।
 प्रासादानभिधास्यामो नैवसंस्थानलक्षणैः ॥ १४९ ॥
 द्वौ भागौ विस्तृतिर्गर्भे द्विगुणा तिर्यगायतिः ।
 मध्ये भागोच्छ्रितं द्वारं तदर्थेन तु विस्तृतम् ॥ १५० ॥
 स्तम्भैश्चतुर्भिः संयुक्ता सीमा द्वारस्य चाग्रतः ।
 द्विभागायामविस्तारा तावन्मात्रसमुच्छ्रितिः ॥ १५१ ॥
 तां सीमां गर्भसहितां भागेनान्येन वेष्टयेत् ।
 भित्तिस्तत्र विधातव्या सगवाक्षा चतुर्दिशम् ॥ १५२ ॥
 पट्टदारुकयुतां^१ द्वेष प्रासादो भव उच्यते ।
 अस्यैव भागनिष्क्रान्ता शाला मुखचतुष्टये ॥ १५३ ॥
 यदा पट्टदारुकोपेता विशालः स तदोच्यते ।
 स्तम्भैर्मुखेमुखे पट्टभिर्वहिः साम्मुख्य इत्यसौ ॥ १५४ ॥
 अस्यैव सीमा कर्णस्था द्विद्विस्तम्भयुता यदा ।
 प्राग्ग्रीवैर्भागनिष्क्रान्ता वहिस्था प्रभवस्तदा ॥ १५५ ॥
 सीम्नोऽग्रतो यदास्यैव स्तम्भद्वययुतो भवेत् ।
 प्राग्ग्रीवो भागनिष्क्रान्तस्तदा स्याच्छिचिराष्टहः ॥ १५६ ॥
 विशालसन्निवेशस्य मुखे शाला भवेद् यदा ।
 पार्श्वयोश्चोभयोः शाले प्राग्ग्रीवाश्च त्रयो यदा ॥ १५७ ॥
 निष्क्रान्तभाग एकैकः स्तम्भद्वितपसंयुतः ।
 प्रासादः स तदा द्वयो मुखशालोऽभिधानतः ॥ १५८ ॥

१. 'त', २. 'अथवा' क. पाठः । ३. 'भाग', ४. 'हे', ५. 'दा',
 ६. 'वभाग' ए. पाठः ।

मुसभाळाप्रधान्याया यदा स्तम्भाधतुर्दश ।

प्राग्रीवो द्विविध्यामे जिज्ञालः स तदा मोक्ष ॥ १५९ ॥

६ भित्तिस्तदानीं(?) प्रासादो दृष्टान्नः प्रजायते ।

गर्भायामसमानप्रगृष्टपोर्मोगविस्तृता ॥ १६० ॥

चतुर्धतुर्धरी यत्र प्राग्रीवो द्वौ च पार्श्वयोः ।

तौ तु द्विद्विधरी गर्भविस्तारेण तु सम्मिनी ॥ १६१ ॥

अमलो नाम स प्रोक्तः प्रासादः शुभमञ्चनः ।

अस्यैव चाग्रे पृष्ठे च द्विद्विस्तम्भयुता यदा ॥ ६२ ॥

प्राग्रीवो स तदा प्रोक्तः प्रासादो दशमो विभुः ।

प्रासादान् कथयामोऽन्यान् दश वृत्तायतान् पुनः ॥ १६३ ॥

अष्टमागमुखायत्या विस्तृत्या चतुरश्रकम् ।

वृत्तायतं मकुर्वीत सवाद्याभ्यन्तरं ततः ॥ १६४ ॥

गर्भं पश्चिमभागेऽस्य चतुर्भागं समन्ततः ।

कुर्यात् तस्याग्रतः सीमां भागद्वितयविस्तृताम् ॥ १६५ ॥

भागत्रयमितां भागेनैकेनान्तरितां च ताम् ।

संयुक्तामष्टभिः स्तम्भैः सुदृढैश्चारुदर्शनैः ॥ १६६ ॥

अलिन्देन परिधिर्मां ससीमां देवकोष्ठकम् ।

पौडशस्तम्भयुक्तेन कुर्यात् प्राग्रीवमग्रतः ॥ १६७ ॥

छन्नाश्छाद्यद्वयेनायमामोद इति कीर्तितः ।

वृत्तायतेषु प्रथमः प्रासादः स्वामिनो हितः ॥ १६८ ॥

समाहितौ यदास्यैव प्राग्रीवौ भागमिधितौ ।

चतुःस्तम्भै रैतिकस्तु वृत्ताभ्यां तु द्वौ उच्यते ॥ १६९ ॥

यदा सीमावधिभिर्चित्तिर्गवाक्षैरुपशोभिता ।

वृत्तप्राग्रीवं एकोऽन्ये(?) तदा चारुदाहृतः ॥ १७० ॥

सीमामध्ये विधातव्यौ प्राग्रीवौ भागविस्तृता ।

विस्तारसदृशायां दक्षिणेति(?) त्रिषु त्रयः ॥ १७१ ॥

१ इहापि किंवांभिद् ग्रन्थो गलित इव । इतः 'कोकदयात् प्रागेव क. पुस्तके पञ्चाणि आचक्षुष्यमाशाध्यायैकदेशं प्रस्तानि । ग. ग्रन्थस्तु पुरैवावचितः ।

कार्याः प्राग्रीवकास्ते च गर्भकोष्ठेन सम्मिताः ।

भूतिरित्येष (सं)श्रुतः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ १७२ ॥

मुखायता स्याच्चतुरो भागान्यत्तिर्यगायतान् (?) ।

क्षेत्रवृत्तं ततः कुर्यात् तन्मध्ये गर्भवेश्म च ॥ १७३ ॥

चतुर्भागायतं तत् स्याद् भागद्वितयविस्तृतम् ।

अलिन्दो बाह्यतस्तस्य द्वादशस्तम्भसंयुतः ॥ १७४ ॥

भागद्वितयविस्तारः प्राग्रीवश्चांशनिर्गतः ।

निषेध इति विविक इति ख्यातः प्रासादोऽयं पुरातनैः ॥ १७५ ॥

यदा (?) निषेधः स्यादस्य पुरः प्राग्रीवको यदि ।

चतुर्द्वारपरिक्षिप्तोऽलिन्देनाष्टधरेण वा ॥ १७६ ॥

अयमेवांशकेन स्याद् यदालिन्देन वेष्टितः ।

मुखभागत्रयं भुक्त्वा भित्त्या च परिवेष्टितः ॥ १७७ ॥

यदा च कर्णप्राग्रीवौ प्राग्रीवश्चाग्रतो भवेत् ।

विशेषरचना या च द्वाविंशतिधरान्विता (?) ॥ १७८ ॥

गवाक्षैः शोभनैर्युक्तस्तदा सिंहः प्रकीर्तितः ।

द्वादशांशायते क्षेत्रे तथा पद्मभागविस्तृते ॥ १७९ ॥

पश्चादंशद्वयं त्यक्त्वा द्विभागायामविस्तृतः ।

देवकोष्ठो विधावग्न्यस्तद्द्वारं भागमुच्छ्रितम् ॥ १८० ॥

सीमाग्रे सान्तरा अंशविस्तृता चतुरायता ।

अष्टस्तम्भोऽस्य गर्भो वै षोडशस्तम्भको बहिः ॥ १८१ ॥

अलिन्दस्तस्य पुरतो वृत्तमाग्रीवकोऽपि च ।

सीमाप्राग्रीवकालिन्दकोष्ठान् वृत्तान् प्रकल्पयेत् ॥ १८२ ॥

प्राग्रीवौ पार्श्वयोः सीमासमौ भागविनिर्गतौ ।

द्वाभ्यां द्वाभ्यां युतौ ज्ञेयौ स्तम्भाभ्यां वर्तुलाकृती ॥ १८३ ॥

एतत्सर्वं विधातव्यमलिन्देनाभिवेष्टितम् ।

चतुर्विंशधरोऽयं च मागिकोऽस्य प्रशस्यते ॥ १८४ ॥

द्विस्तम्भयुक्तान् प्राग्रीवान् कुर्याद् गर्भस्य दिक्त्रये ।

एवमेव समाख्यातः प्रासादः सुप्रभः शुभः ॥ १८५ ॥

भागद्वितयविस्ताराः प्राग्रीवा येऽस्य कीर्तिताः ।

चतुरश्रास्त एव स्युर्द्विद्विस्तम्भयुता यदि ॥ १८६ ॥

शेषा भवति भित्तिश्च गवाक्षैरुपशोभिता ।

प्रासादोऽयं तदा द्वेयो दशमो लोचनोत्सवः ॥ १८७ ॥

अष्टाश्रानथ वक्ष्यामः प्रागादौलक्षणैः सह ।

चतुर्भागान्विते क्षेत्रे तथाष्टाश्रीकृते पुनः ॥ १८८ ॥

द्वौ भागौ गर्भकोष्ठः स्यादलिन्दो भागिकस्तदा ।

स्तम्भाष्टकमलिन्दे स्यात् प्राग्रीवस्तस्य चाग्रतः ॥ १८९ ॥

द्विच्छाद्य(श्छा?च्छा)दितः श्रीमान् प्रासादो वज्रको भवेत् ।

अस्यैवाग्रे यदा सीमा चतुरश्रा चतुर्धरा ॥ १९० ॥

स्याच्चतुर्विंशतिस्तम्भश्चालिन्दो भागिकोऽपरः ।

नन्दनोऽयं समाख्यातः शङ्कुः प्राग्रीवकैस्त्रिभिः ॥ १९१ ॥

तस्य भित्तिर्विधातव्या क्षेत्रेऽष्टाश्रियुते धुधैः ।

वामन(श्च?स्य) पुनर्द्वौद्वौ गवाक्षौ दिक्त्रये मतौ ॥ १९२ ॥

अस्यैवाग्रे यदा सीमाभागाद् भागत्रयायत्ता ।

द्विभागं विस्तृता मंशसमुच्छेदाष्टभिर्धरैः(?) ॥ १९३ ॥

अलिन्दावेष्टिता युक्ता प्राग्रीवैर्षेखला तदा ।

भित्तिक्षेत्रे यदास्यैव प्राग्रीवाः परिवेष्टिताः ॥ १९४ ॥

अलिन्देन धरैः पद्भिः पद्भिर्युक्तास्तदा लयः ।

अष्टभागमिने क्षेत्रे कृतेऽष्टाश्रिणि सर्वतः ॥ १९५ ॥

भागद्वयमितं कुर्वाद् देवकोष्ठं मनोरमम् ।

चतुर्भिः शोभितं द्वारैर्भागिका(लिन्दवेष्टितम्) ॥ १९६ ॥

अलिन्दस्य विधातव्याः स्तम्भाद्याष्टौ ततोऽपरः ।

स्याच्चतुर्विंशतिस्तम्भो भागिकोऽलिन्दकः पुनः ॥ १९७ ॥

तथाविपरस्तृतीयोऽपि प्राग्रीवाश्च चतुर्दिशम् ।

प्रासादोऽयं महापद्मो मङ्गलः शङ्करस्य च ॥ १९८ ॥

द्विती(यो)येऽलिन्द(क)केऽस्यैव प्राग्रीवाः स्युश्चतुर्दिशम् ।

अलिन्देन परिक्षिप्तो हंस एष प्रकीर्तितः ॥ १९९ ॥

प्राग्रीवोऽस्य महापद्मस्यालिन्देनावृतो यदा ।

कर्णप्राग्रीवकौ द्वौ द्वौ व्योमसंज्ञस्तदा भवेत् ॥ २०० ॥

हंसस्यैव बलभ्यः स्युः प्राग्रीवाणां पदे यदा ।

चतुःस्तम्भाः परिक्षिप्ता अलिन्देन चतुर्दिशम् ॥ २०१ ॥

तदा चन्द्रोदयो नाम प्रासादो जायते शुभः ।

एवमेषां चतुष्पाष्टिः प्रासादानामुदाहृता ॥ २०२ ॥

इति सुरभवनानां सप्ततिर्दारवाणा-

मिह सदनचतुष्केणान्वितेषां प्रदिष्टा ।

जनमयमवकोशानन्दशुभ्रांशुलेखा (१)

भवति सुविदितेषां शिल्पिनां कामधेनुः ॥ २०३ ॥

इति महागजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनामि वास्तुशास्त्रे

रुचकादिचतुष्पाष्टिप्रासादलक्षणं नामैकोनपञ्चाशोऽध्यायः ।

अथ प्रासादशुभाशुभलक्षणं नाम पञ्चाशोऽध्यायः ।

प्रासादानामथ द्रूमो लक्षणानि भवन्ति ये ।

प्रशस्ताश्चाप्रशस्ताश्च तस्मिन्नावनिमण्डले ॥ १ ॥

ये समाः समकर्णाश्च समस्तम्भाः समक्षणाः ।

नैवोच्चा नातिह्रस्वाश्च कर्णाणामादविह्वलाः ॥ २ ॥

असंभूदा विभागेन प्रमाणेन सुसंस्थिताः ।

ऊर्ध्वाधः कर्णपादीभिरुपेताः सलिलान्तरैः ॥ ३ ॥

असङ्कीर्णोदयैश्छाद्यैः स्वपानपरिकल्पितैः ।

सुविभक्ताः सुसंस्थाश्च रम्यैरविकलैः कृताः ॥ ४ ॥

समभागविभक्तैश्च युक्ताश्चालिन्दकैः समैः ।

स्वजातिपरिवेपाया नान्यजातिप्रदूषिताः ॥ ५ ॥

असङ्कीर्णाः शरीरेण संस्थानेन सुसंस्थिताः ।

फेषला जातिशुद्धाश्च प्रासादाः शुभदा कृणाम् ॥ ६ ॥

सुहृदमृगपादः ॥ दशपामृगपादः ॥

नापरंशमृगपादः मुश्चिद्वृद्धमृगपादः ॥ ७ ॥

देव(ग)नानिप्रमिदं भूगर्गः मुनिधृतिनाः ।

प्रासादाः शुभदा नित्यं गूणामंभारतर्चनाः ॥ ८ ॥

कर्ता कारयिता धर्मा परा वृद्धिमवाप्नुयान् ।

भयमानपि वक्ष्यामः प्रासादानवल्यानः ॥ ९ ॥

विपमाः कर्णहीनाश्च ज्ञेयान्धमयावहाः ।

स्मर्भः शर्णश्च विगर्भः स्वामिनो मृग्युहवः ॥ १० ॥

अत्युग्रैः स्याद् भयं रातो हर्षः सेना च मध्यते ।

कर्णायामेन शिकलाः प्रासादाः स्मृभेयद्वराः ॥ ११ ॥

विभागेन विहीनास्तु दारिद्र्यमयदाः स्मृताः ।

नष्टाभिः कर्णपादीभिर्गन्धजनना वृणाम् ॥ १२ ॥

छाद्यैः सङ्कीर्णकैर्हीनैः कुलधवकराः स्मृताः ।

दुर्विमक्ताः कुसंस्थाश्च द्रव्यविकलसंयुतः ॥ १३ ॥

रोगं क्लेशं च मृत्युं च क्रमशो वितरन्ति ते ।

विपर्मर्भागहीनैश्चाप्यलिन्दैर्व्याधितो भयम् ॥ १४ ॥

पराजयं परितृतरन्यजातिप्रदुषितः ।

ये परावृतयो येऽन्यसङ्कीर्णान्येऽन्यविग्रहाः ॥ १५ ॥

कर्तुः कारयितुर्नन्ते नन्दका वापि चात्मनः ।

दुर्बला मूलपादेन विश्लिष्टैः पीठसन्धिभिः ॥ १६ ॥

अल्पायुपस्ते प्रासादा भवन्ति च भयावहाः ।

अधरोत्तरगैः श्लिष्टैर्विज्ञेया व्याधिकारिणः ॥ १७ ॥

अदेशैर्भूषणैर्युक्ताः प्रासादा न सुखावहाः ।

ये कीर्त्तिमिच्छन्ति जयन्ति भूतान् कुर्युः शुभैर्लक्ष्मभिरान्वितास्ते ।

प्रासादमुख्यानि तरे तु वज्यास्तेजोयशःश्रीविजयादिकार्यैः ॥ १८ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणद्वयपरापरनामि वास्तुशास्त्रे

प्रासादशुभाशुभलक्षणं नाम पञ्चाशोऽध्यायः ॥

॥ १८ ॥

अथायतननिवेशो नामैकपञ्चाशोऽध्यायः ।

एवं नृपस्य प्रासादे कृते कल्लोऽथवा भुवि ।
 तस्यानुजीविनः कुर्युः प्रासादान् परिधौ यदि ॥ १ ॥
 तदा दिग्भागविन्यासस्थानमानान्यनुक्रमात् ।
 तेषामिहाभिधीयन्ते सर्वेषां वृद्धिहेतवे ॥ २ ॥
 दशाष्टौ पद् च धनुषां शतानि क्षमाभृतां क्रमात् ।
 मानमायतनस्योक्तं त्रेधा श्रेष्ठादिभेदतः ॥ ३ ॥
 क्षेत्रमायतनस्यैवं चतुरश्रं समन्ततः ।
 तत्र भक्ताः प्रकुर्वीरंस्त्रिधा स्वे स्वामिवत्सलाः ॥ ४ ॥
 ये चास्य सम्मताः केचित् कुले जाता हितैषिणः ।
 द्वादशांशेन हीनानि क्रमात् तान्यनुजन्मनाम् ॥ ५ ॥
 तस्यैव वामतः कुर्यादुत्सेधाद् द्विगुणान्तरे ।
 कुर्याद् दशांशहीनानि नैर्ऋत्यां दिशि भूपतेः ॥ ६ ॥
 प्रासादान्नृपपत्नीनां सर्वासामपि शास्त्रवित् ।
 अष्टभागेन हीनानि प्रतीच्यां दिशि कारयेत् ॥ ७ ॥
 देवधिष्यानि तन्त्रैः स्यात् स्वमुराणां विधानतः(?) ।
 सौम्याया मारुतीं यावन्नवांशापचिताः क्रमात् ॥ ८ ॥
 प्रासादा मन्त्रिसेनानीप्रतीहारपुरोधसाम् ।
 एतेषां पूर्वभागस्थं राजमातुर्निवेशनम् ॥ ९ ॥
 हीनमेकादशांशेन तत् कार्यं राजकारिता(?) ।
 ऐशीमाश्रित्य देवानां तुल्यमैन्द्रपदावधि ॥ १० ॥
 स्वमृणां मातुलानां च कुमारानां तथा क्रमात् ।
 आग्रय्यां द्विजमुख्यानां विधातव्यं निवेशनम् ॥ ११ ॥
 कार्यः पुरोधःप्रासादः तुल्यतत्पुनरेव वा(?) ।
 याम्यायां कुर्युरष्टांशहीनान्युर्वीशमन्दिरात् ॥ १२ ॥
 सामन्तकुञ्जरारोहभटपौरजनाः क्रमात् ।
 एतान्यायतनान्येषां यथाभागं प्रकल्पयेत् ॥ १३ ॥

मर्मवेधप्रदेशस्थान् द्वारवेधगतानपि ।

स्वस्थानान्तरितांश्चैतान् न कुर्याद्वितकाम्यया ॥ १४ ॥

अलिन्दैर्गर्भकोष्ठैश्च सीमास्तम्भगवाक्षकैः ।

द्वारद्रव्यतलोच्छ्रायैः प्राग्ग्रीवैः सिंहकर्णकैः ॥ १५ ॥

न कुर्याद् भूपणैस्तुल्यं समं वास्थंदरूपतः (?) ।

समरूपं भवद्धर्म्यं निर्युक्तं च न नन्दति ॥ १६ ॥

राजपीठा भवेत् तस्मिन्नाधिक्ये च कुलक्षयः ।

प्रासादाद् भूमिपालस्य निवेशं परिधौ स्थितम् ॥ १७ ॥

द्रव्येण कतरेणापि नोत्कृष्टं कारयेद् बुधः ।

संस्थानान्मानतश्चापि विस्तारेणोच्छ्रयेण वा ॥ १८ ॥

पूर्वोक्तेभ्यो विभागेभ्यः किञ्चिद्दीनतमः शुभः ।

अन्योन्यं द्विगुणच्छाद्यैरेकैकस्यान्तरं शुभम् ॥ १९ ॥

सुभोग्यं तं च कुर्वीत बहुभिर्भवनान्तरैः ।

कोष्ठिकाभोजनागारैर्भाण्डोपस्करधामभिः ॥ २० ॥

शिलालूपात(?)शालाभिः शेषं तु परिपूरयेत् ।

मशस्तान् कारयेत् सर्वाञ्च शुभरूपान् मनोरमान् ॥ २१ ॥

प्रायशः स्वालयांश्चान्यान् सर्वस्यान्यगृहाणि च ।

नरेन्द्रापतनस्यैव निवेशात् परिकल्पयेत् ॥ २२ ॥

अन्यथात्वे महादोषा वपरीत्ये कुलक्षयः ।

इति कथितदिगादिभेदयोगैः

सुरमवनानि भवन्ति यस्य राज्ञः ।

अविरतमुदितोदितप्रतापः

स्वसृजनितां स चिरं प्रशास्ति पृथ्वीम् ॥ २३ ॥

इति महायज्ञाभिराजभीमोत्रदेवविचित्रे समराज्जगद्व्यवस्थापरनामि बालुशास्त्रे

आपतननिवेशो नामैकपञ्चाशोऽध्यायः ॥

अथ प्रासादजातिर्नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः ।

अवतारो निवेशानां विधानं वास्तुनो यतः ।
 कात्स्न्येन तमतो भूमः सभ्यस्य प्रसवोत्तमः (?) ॥ १ ॥
 कुलजातिक्रमाणां च क्रमं दीर्घाल्पजीविनाम् ।
 संस्थानमभिधास्यामो लक्ष्यलक्षणमेव च ॥ २ ॥
 शुभाशुमानां वैराजमादिं तेषां प्रचक्षते ।
 पूर्वोक्तस्य विमानस्य तस्यातो लक्ष्यं कथ्यते ॥ ३ ॥
 वैराजस्य यथाकारव्यवस्थानमशेषतः ।
 चतुरश्रं समं क्षेत्रमशीत्यंशं विमानयेत् ॥ ४ ॥
 संयुक्तमष्टभिर्मागैः कुर्याद् गर्भगृहं शुभम् ।
 द्विपञ्चाशद्वरैः सीमा गर्भकोष्ठसमन्विताः ॥ ५ ॥
 द्वाविंशता देवकोष्ठैः संवरेकान्तरैश्च तैः ।
 बाह्यस्थाने ततः स्थानाद् द्वादशक्षोभर्णधरैः ॥ ६ ॥
 हेमरत्नमयैः स्तम्भैः शुक्रपट्टैश्च भूषितैः ।
 शुक्लालङ्कारस्वचितैर्वितानैश्च विभूषणैः ॥ ७ ॥
 स्फाटिकैर्विविधैर्जालैः सहस्रनिम्बनिवेदिनैः ।
 हंसकर्णकपोतालीतिर्यक्स्थाल्यर्पकणिकैः ॥ ८ ॥
 पर्यन्तदेशभृतया गर्भस्योपरि घण्टया ।
 लोकनाथेन तद् सृष्टमायं वैराजसंज्ञितम् ॥ ९ ॥
 तस्मान् स्वस्तिकसंज्ञः मागु गृहच्छन्दो विज्ञापते ।
 चतुर्दशलक्षिणालश्च हिरण्यकस्तनोऽपि च ॥ १० ॥
 सिद्धार्थको द्विशालः स्यादेकशालस्तु कुम्भकः ।
 सृष्टमन्यद् विमानं च वरं वीरं चतुर्मुखम् ॥ ११ ॥
 गणानां देवतानां च स्कन्दस्य च यथाक्रमम् ।
 प्रासादाद् द्वादशैतेन्ये जग्निरे शुभलक्षणाः ॥ १२ ॥
 स्वस्तिकः भीमरुधिर तृतीयः क्षितिभूषणः ।
 भूजयो विजयो भद्रः

मन्थारवर्गो विषानथ मर्तोभद्र एव च ।
 विमुक्तकोणवागाद इति वैराजमंजराः ॥ १४ ॥
 पूर्वकरमान् वसेर्गोमर्तः समजायत ।
 स्वभित्तारु कवर्गो ज्ञेयः भीतर्गः विद्वज्ज्वरः ॥ १५ ॥
 इमाभूतानान् तु प्राप्ता ह्याद् भूतपाद गतपुत्रयः ।
 वितपादवर्गमथ भद्रासन्दी विनिर्गतः ॥ १६ ॥
 श्रीकृष्णपित्रहृदात्प उष्णीषान् ममदाप्रियः ।
 व्यापिभो नन्दिहावर्गो विमानाद्दक्षिणा(वर्ति)कः ॥ १७ ॥
 कुर्वरः सर्वतोमद्रान्मुक्तकोणाद् परापरः ।
 एतेभ्योऽपि च संभूताः कर्नीपातोऽपिपानवः ॥ १८ ॥
 तज्जेदास्ते तदाकारैर्लक्ष्याः स्वं स्वं पृथग्विधः ।
 मायैस्तेषूत्तमैः पूर्वान् मध्यमान् मध्यमैस्तथा ॥ १९ ॥
 कर्नीयसः कर्नीयोभिः प्राप्तादानुपकल्पयेत् ।
 शिरारैरपरैः शिष्टैः प्राप्तादा जज्ञिरे ततः ॥ २० ॥
 प्रथमो रुचकस्तेषु द्वितीयो वर्धमानकः ।
 अवतंसस्त्वृतीयस्तु चतुर्थो भद्र उच्यते ॥ २१ ॥
 पञ्चमः सर्वतोभद्रः षष्ठः स्पान्मुक्तकोणकः ।
 मेरुर्मन्दर इत्यष्टौ विज्ञेयाः शिखरोत्तमाः ॥ २२ ॥
 चतुरश्राः समाख्याता देवानामालयाः शुभाः ।
 एते ते वंशजाः सर्वे निवेश्या ब्रह्मजातयः ॥ २३ ॥
 वैराजकुलसंभूताः प्राप्तादाः परमोत्तमाः ।
 एतेभ्योऽन्येऽपि संभूताः पुत्रपौत्रप्रपौत्र(वर्ति)जाः ॥ २४ ॥
 स्ववंशाः सुपरीचाराः परवंशविवर्जिताः ।
 कर्तव्या भूतिकामेन तेजसा शुभलक्षणाः ॥ २५ ॥
 नन्दका वर्धनाश्चैव सर्वकामफलप्रदाः ।
 हृष्टपुष्टजनाकीर्णाः पूजासंस्कारवर्धनाः ॥ २६ ॥
 यदि हीना भवन्त्येते परवंशेन दूषिताः ।
 तदुद्देगं वृष्णाः नित्यमर्धनाशं कुलक्षयम् ॥ २७ ॥

पीडां च स्वामिनः कुर्युर्धन्यदपि गर्हितम् ।
तस्मादेते विधातव्या दूषिता नान्यजातिभिः ॥ २८ ॥

इति वैराजजातानामुत्पत्तिः परिकीर्तिता ।

वैराजजन्मतुरसन्नपरम्परेय-

मुक्तैवमत्र शुभलक्ष्मवती समासात् ।

आनन्दकीर्त्तिधनधान्यकरी कृता स्या-

दन्यादृशी पुनरनर्थफलं कर्तुः ॥ २९ १/२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवचिरन्ति समगङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

प्रासादजातिर्नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥

अथ जघन्यवास्तुद्वारं नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ।

ग्रामो जघन्यवास्तूनां द्वारमानमतः परम् ।

विस्तारं सतलोच्छ्रायं द्रव्यव्यासविधिं तथा ॥ १ ॥

कथिता ये निराधाराः प्रासादास्तिर्यगायताः ।

तेषां भागचतुष्केण गर्भवासं विभाजयेत् ॥ २ ॥

द्वारं सार्धेन भागेन कुर्यात् सार्धविस्तृतम् ।

द्वारविस्तारपादेन पेद्याया विस्तृतिर्भवेत् ॥ ३ ॥

विस्तारार्धेन पिण्डः स्यात् तत्समः स्यादुदुम्बरः ।

सार्धभूलादुम्बरकः(?)शाखा व्यासवशाद् भवेत् ॥ ४ ॥

चतुर्विधश्च कर्तव्यः पेद्यापिण्डः प्रमाणतः ।

शाखा तु पेद्यापिण्ड(श्च?)विस्तारेण विधीयते ॥ ५ ॥

शाखाविस्तारतो रूपशाखा स्यात् सार्धविस्तृतिः ।

अर्धेन पेद्यापिण्डस्य खल्वशाखा विधीयते ॥ ६ ॥

रूपशाखासमाः कार्या विस्तारात् तुल्यशाखिकाः ।

तुल्यया बाह्यतः शाखाः क्रियन्ते यास्तु काश्चन ॥ ७ ॥

अष्टांशाभ्यधिकाः सर्वाः कर्तव्या विस्ते

तलोदयस्य तन्मानं गर्भमण्डपयोः समम् ।

यदि भिन्नतलं कर्तुं मण्डपः कथि हीयते(?) ॥ ९ ॥

द्वारोच्छ्रिते तद्गुणानां मण्डपे स्यात् तलोच्छ्रितिः ।

प्रासादेषु कनीयस्तु तलमानमुदाहृतम् ॥ १० ॥

पद्भगाभ्यधिकं ज्येष्ठे मध्येऽष्टांशाधिकं ततः ।

बलविधिः(?) समपदः प्रासादस्य विधीयते ॥ ११ ॥

नाधस्तात् स प्रयोक्तव्यो नोर्ध्वतश्चाप्युदुम्बरात् ।

कुम्भिकाभरणपट्टजयन्तीशीर्षिकायफलकेषु तुला(नाम्) ।

उक्त(मान)मिह यत् प्रथमं तन्नाधिकं प्रविदधीत न हीनम् ॥ १२ ॥

इति महाराजगणधिराजश्रीभोजदेवधिरचिते समराज्जणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

जघन्यवास्तुद्वारं नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥

अथ प्रासादद्वारमानादि नाम चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामः प्रासादानां यथाक्रमम् ।

द्रव्येषूदयविस्तारं बाहल्यं परिधिं तथा ॥ १ ॥

प्रासादभागिकोत्सेधं प्रासादद्वारमिष्यते ।

स(ज्यं?त्रियं)शोच्छ्रितं यापि सार्धाशोच्छ्रयमेव वा ॥ २ ॥

स्वीयस्वीयोदयादर्थविस्तारं च तदिष्यते ।

विस्तृतिर्भागतुपांशात् पेद्यायाः स्थाल्यमर्धतः ॥ ३ ॥

पेद्याबाहल्यविस्तीर्णा शाखा भवति मानतः ।

उत्तराङ्गानि कुर्वीत पेद्याशाखासमानि तु ॥ ४ ॥

सपादपेद्याविस्तारा रूपशाखा विधीयते ।

रूपशाखान्वितः कार्यः पीठवन्धस्तयोपरि ॥ ५ ॥

वृत्तं कार्यमपोवृत्ते पत्रकं च निरन्तरम् ।

सम्भाष्य त्रिगुणव्यासं मरणं भूषणान्वितम् ॥ ६ ॥

रूपशाखासमं तच्च कर्तव्यमतिमुन्दरम् ।
 ऊर्ध्वं समन्ताद्याष्टांशमात्रे तच्चतुरश्रकम् ॥ ७ ॥
 तदूर्ध्वं भरणोच्छ्रायः स्यात् पादोनसमुच्छ्रितः ।
 कपोतश्चाप्यधश्शीर्षगर्भः स च विधीयते ॥ ८ ॥
 सरथालयपत्रो वा स्त्रोदयार्धविनिर्गमः ।
 तस्योपरिष्ठात् कर्तव्यं स्यादुच्छालयपत्रकम् (१) ॥ ९ ॥
 रथिका (तु) विधातव्या द्वयोरप्युच्छ्रितस्तयोः ।
 सार्धप्रमाणभरणाद् भूषा स्यात् पुष्पकादिभिः ॥ १० ॥
 रूपकैर्वा यथाशोभं स्तम्भिकामिथ सर्वतः ।
 कण्टकोयत्रिभागोन (१) कूटाकारं भवेदतः ॥ ११ ॥
 विभूषितं सिंहचक्रैर्हस्तितुण्डैरथापि वा ।
 कपोतादि विधातव्यमन्तरे रूपशाखयोः ॥ १२ ॥
 कार्यं विपमसंख्यं च सर्वमेतद् विचक्षणैः ।
 तस्माद् बहिर्विधातव्या सर्वतः परिमण्डली ॥ १३ ॥
 अन्त्यशाखासमा सा च प्रमाणेन विधीयते ।
 तस्यां सद्धारशाखायां (प्रा)यशः पत्रपत्रिकाः ॥ १४ ॥
 कार्या (त्रा वाच) वा द्वार)शाखायास्तद्विस्तारसमुच्छ्रिताः ।
 भवेदधस्तादर्थेन ग्रीवाया रसना तथा ॥ १५ ॥
 ग्रीवाया सार्धया तुल्यमन्तरं पत्रकाण्यधः ।
 भागद्वयं प्रकुर्वीत जङ्घा त्र्यंशा ततोऽप्यधः ॥ १६ ॥
 पेट्यापिण्डप्रमाणेन खल्वशाखा विधीयते ।
 पेट्यापिण्डसमो द्वाह्यशाखान्यासः प्रकीर्तितः ॥ १७ ॥
 क्रमेणानेन कर्तव्याः शाखाः स्वल्पा यदृच्छया ।
 न नवभ्यः परं कार्या द्वारशाखाः कथञ्चन ॥ १८ ॥
 निर्गमो वा प्रवेशो वा विस्तारेण संमन्वितः ।
 पेट्याया यदि वार्धेन शाखानां स विधीयते २०

तज्जोदयस्य तन्मानं तथेवाद्दययोः समम् ।

यदि पित्रनमं कर्तुं पादपः कश्चिद्दीपने(?) ॥ ९ ॥

द्वारोन्मिष्टे तद्गुणानां मण्डपे स्यान् तज्जोन्मिष्टः ।

मागादेषु कर्त्तव्येषु तन्मानमुदाहरणम् ॥ १० ॥

पदभागाभ्यधिकं ज्येष्ठे मध्येष्ट्याधिकं ततः ।

बलविधिः(?) समपदः मागादस्य विधीयते ॥ ११ ॥

नापस्तान् स प्रयोक्तव्यो नोर्ध्वतथाप्युदम्बरात् ।

कुम्भिकाभरणपट्टजपन्तीर्षिकायफलकेषु तुला(नाम्) ।

उक्त(मान)मिह यन् प्रथमं तन्नाधिकं प्रविदधीन न हीनम् ॥ १२ ॥

इति महायज्ञाधिपञ्चमीमोऽध्यायविहिते समरात्र्यगृह्यपाठपरमाग्नि वास्तुशास्त्रे

जघन्यवास्तुद्वारं नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥

अथ प्रासादद्वारमानादि नाम चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामः प्रासादानां यथाक्रमम् ।

द्रव्येषूदयविस्तारं बाहल्यं परिधिं तथा ॥ १ ॥

प्रासादभागिकोत्सेधं प्रासादद्वारमिष्यते ।

स(ज्येष्ठत्रियं)शोच्छ्रितं वापि सार्धशोच्छ्रयमेव वा ॥ २ ॥

स्वीयस्वीयोदयादर्धविस्तारं च तदिष्यते ।

विस्तृतिर्भागतुर्यांशात् पेद्यायाः स्थौल्यमर्पतः ॥ ३ ॥

पेद्याबाहल्यविस्तीर्णा शाखा भवति मानतः ।

उत्तराङ्गानि कुर्वीत पेद्याशाखासमानि तु ॥ ४ ॥

सपादपेद्याविस्तारा रूपशाखा विधीयते ।

रूपशाखान्वितः कार्यः पीठबन्धस्तथोपरि ॥ ५ ॥

वृत्तं कार्यमधोवृत्ते पत्रकैश्च निरन्तरम् ।

स्तम्भाच्च द्विगुणव्यासं भरणं भूषणान्वितम् ॥ ६ ॥

रूपशाखासमं तच्च कर्तव्यमतिमुन्दरम् ।
 ऊर्ध्वं समन्ताच्चाष्टांशमात्रे तच्चतुरश्रकम् ॥ ७ ॥
 तदूर्ध्वं भरणोच्छ्रायः स्यात् पादोनसमुच्छ्रितः ।
 कपोतथाप्यधशीर्षगर्भः स च विधीयते ॥ ८ ॥
 सरथालयपत्रो वा स्वोदयार्धविनिर्गमः ।
 तस्योपरिष्ठात् कर्तव्यं स्यादुच्छालयपत्रकम् (१) ॥ ९ ॥
 रथिका (तु) विधातव्या द्वयोस्त्पुच्छ्रितस्तयोः ।
 सार्धममाणभरणाद् भूया स्यात् पुष्पकादिभिः ॥ १० ॥
 रूपकैर्वा यथाशोभं स्तम्भिकाभिश्च सर्वतः ।
 कण्टकोयत्रिभागोन (१) कूटाकारं भवेदतः ॥ ११ ॥
 विभूषितं सिंहचक्रैर्हस्तितुण्डैरथापि वा ।
 कपोतादि विधातव्यमन्तरे रूपशाखयोः ॥ १२ ॥
 कार्यं निपमसंख्यं च सर्वमेतद् विचक्षणैः ।
 तस्माद् बहिर्विधातव्या सर्वतः परिमण्डली ॥ १३ ॥
 अन्त्यशाखासमा सा च प्रमाणेन विधीयते ।
 तस्यां सद्वारशाखायां (ग्रा)यशः पत्रपत्रिकाः ॥ १४ ॥
 कार्या (ग्रा वाच? वा द्वार) शाखायास्तद्विस्तारसमुच्छ्रिताः ।
 भवेदधस्तादर्धेन ग्रीवाया रसना तथा ॥ १५ ॥
 ग्रीवया सार्धया तुल्यमन्तरं पत्रकाण्यधः ।
 भागद्वयं प्रकुर्वीत जह्वा त्र्यंशा ततोऽप्यधः ॥ १६ ॥
 पेद्यापिण्डप्रमाणेन खल्वशाखा विधीयते ।
 पेद्यापिण्डसमो बाह्यशाखान्यासः प्रकीर्तितः ॥ १७ ॥
 क्रमेणानेन कर्तव्याः शाखाः स्वल्पा यदृच्छया ।
 न नवभ्यः परं कार्या द्वारशाखाः कथञ्चन ॥ १८ ॥
 निर्गमो वा प्रवेशो वा^१ विस्तारेण समन्वितः ।
 पेद्याया यदि चार्धेन शाखानां स विधीयते ॥ १९-॥

सार्धपेद्यापिण्डसमः पिण्डस्योदुम्बरो भवेत् ।
 तलन्यासस्तदर्धेन भूमिर(ज्ञा च?ज्ञाथ) तत्सर्माः ॥ २० ॥
 उदुम्बरकपिण्डस्य मानात् सिंहमुखानि च ।
 उदुम्बरात् पादहीनस्तुल्यो वाभ्यधिकोऽथवा ॥ २१ ॥
 पट्टस्य पिण्डस्त्रिविधो विस्तारात् स्तम्भतोऽधिकः ।
 भागपादैसमस्तम्भो द्वादशांशं प्रपीडितः ॥ २२ ॥
 भागद्वये च कर्तव्यो रूपलक्षणसंयुतः ।
 चतुष्पाष्टिमकारोऽयं नानारूपमपञ्चतः ॥ २३ ॥
 स्तम्भविस्तारविस्तीर्णं पिण्डे तत्पादवर्जितम् ।
 विस्तारात् त्रिगुणं दैर्घ्याद्धीरग्रहणमिष्यते ॥ २४ ॥
 प्रविष्टौ स्तम्भमाने स्तः कुम्भिकोत्कालकौ सदा ।
 तलपट्टसमं पट्टमुत्तरं परिकल्पयेत् ॥ २५ ॥
 (ती?ही)रं तस्य त्रिभागेन समुत्सेधाद् विधीयते ।
 किञ्चिद् विनिर्गतं पट्टाद् यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥ २६ ॥
 अत ऊर्ध्वं यथाशोभं कण्डकेनासनेन च ।
 रथकंधिग्ररूपं च कूटागारैः सतोरणैः ॥ २७ ॥
 अलिन्दे मण्डपे वापि चतुष्के बलभीषु वा ।
 वितानानि विचित्राणि समुत्क्षिप्ततलानि च ॥ २८ ॥
 लक्षणेन च युक्तानि विदर्शित यथोचितम् ।
 लुमाः फलकवर्तीभिः कृताः समभिदध्यहे ॥ २९ ॥
 उत्क्षिप्तानां च ये भेदा जायन्ते सर्ववास्तुषु ।
 तुम्बिनी लम्बिनी हेल्ला शान्ता कोला मनोरमा ॥ ३० ॥
 आध्माता चेति सप्तैता नामनः कथिता लुमाः ।
 चतुरधीकृते श्रेष्ठे कान्ते भूमितले शुभे ॥ ३१ ॥
 मूर्धं क्षेत्रसमं कृत्वा कर्णात् कर्णं विभाजयेत् ।
 विन्यस्येद् गर्भमूत्राणि तयोर्मध्यगतानि च ॥ ३२ ॥

१. 'यो' ल. पाठः । २. 'मा', ३. 'ह' क. पाठः । ४. 'अल', ५. 'दा' ल. पाठः ।
 ६. 'नी', ७. 'को' क. पाठः । ८. 'न' ल. पाठः । ९. 'मा', १०. 'ता स' क. ल.
 पाठः । ११. 'इविनी', १२. 'मा', १३. 'न' क. ल. पाठः ।

भूयश्चान्यानि मध्येषु सूत्राणि विनिवेशयेत् ।
 मध्ये वृत्तं समालिख्य तुम्बिका कपलोपमा ॥ ३३ ॥
 कार्या भागीकृतं तत्र वृत्तं क्षेत्रे^१ प्रवर्तयेत् ।
 मूत्रे मूत्रे तु^२ पिण्डस्थां लुमां मूत्रेण बालिखेत् ॥ ३४ ॥
 लुमान्तरेषु सर्वेषु वैकट्येन गुपीकृतम् ।
 तपोरन्तरयोर्मध्ये लुमामूले विकर्करम् ॥ ३५ ॥
 द्विगुणं त्रिगुणं वा स्यात् ततश्च बलिनीं लिखेत् ।
 व्यासार्धेनोदयश्चेह कर्तव्यस्तत्र मण्डले ॥ ३६ ॥
 सम्पातात् तलसूत्राणां तुम्बिका चोर्ध्वसूत्रिता ।
 उदयस्तलमूत्रस्य तुम्बिकायास्तथान्तरम् ॥ ३७ ॥
 पूर्वमूत्रे^३ लुमाग्रेषु कण्टकान् कल्पयेद् ऋजून् ।
 बहिस्थानेषु चान्तेषु लक्षं कुर्यात् सुनिश्चितम् ॥ ३८ ॥
 लक्षं गृहीत्वाधःसूत्र ऊर्ध्वसूत्राणि लक्षयेत् ।
 उदये कण्टकस्पान्ते तद्वदेवानुसन्ततम् ॥ ३९ ॥
 दापयेदुत्तरं मूत्रं लुमानां खल्वंकानि च ।
 पिण्डव्यासं बलीनां चाप्येषु शोभणविस्तृती ॥ ४० ॥
 लुमा कर्णगता या स्यादाध्माता सा प्रकीर्तिता ।
 छेदे प्रवर्तितान्या स्यात् किञ्चिद्दूना मनोरमा ॥ ४१ ॥
 कोला तृतीया शान्तेति चतुर्थी परिकीर्तिता ।
 हेलाख्या पञ्चमी षष्ठी लम्बिनी नामतौ लुमा ॥ ४२ ॥
 सप्तमी तुम्बिनीत्येता मार्गसूत्रविनिर्गताः ।
 एताभिः कारयेत् कौलं वितानं नयनोत्सवम् ॥ ४३ ॥
 कोलाविलं हस्तितालु चाष्टपत्रं शरावकम् ।
 नागवीथीवितानं च पुष्पकं भ्रमरावली ॥ ४४ ॥

१. 'क्षेत्रिका' ख. पाठः । २. 'त्र्य', ३. 'ण', ४. 'मास' क. ख. पाठः । ५. 'का-
 येन', ६. 'क्षेत्रिका', ७. 'मू' ख. पाठः । क. पाठः । ८. 'त्रेषुमाम' क. पाठः ।
 ९. 'बलं य', १०. 'खि', ११. 'तिन्य + स्याः', १२. 'तस्मिन्', १३. 'का'
 ख. पाठः ।

● 2014年10月1日

वितानमेतत् कथितं यश्चिकीर्षति मानवः ।
 ऊर्ध्वतिर्यग्गतैर्नालैः क्रियते यन्निरन्तरम् ॥ ५८ ॥
 पुष्पमालाकुलं श्रीमत् पुष्पकं तदुदाहृतम् ।
 अशोकपल्लवाकीर्णलुमाध्रमनिबन्धनम् ॥ ५९ ॥
 चतुरश्रक्रियायुक्तं सा प्रोक्ता भ्रमरावली ।
 आध्माता कर्णमायाता तुम्बिकास्थानसंश्रया ॥ ६० ॥
 तुम्बिनी यत्र मध्ये तु हंसपक्षं तदुच्यते ।
 अस्यैव पक्षे तु यदा सम्बध्येत मनोरमा ॥ ६१ ॥
 तुम्बिनी च विपक्षेषु करालं तदुदाहृतम् ।
 कोला लुमा स्याद् विकटे शङ्खे शान्ता प्रकीर्तिता ॥ ६२ ॥
 शङ्खनाभिसमं सूत्रं तुम्बिकायाः प्रवर्तते ।
 सर्वेष्वपि लुमास्थानेष्वेकरेखान्वितं भवेत् ॥ ६३ ॥
 शङ्खनाभिरिति प्रोक्तं वितानमिदमुत्तमम् ।
 एतस्यैव लुमास्थाने तुम्बिका पद्मकावृता ॥ ६४ ॥
 बलयैर्भूषिता यत् स्यात् सपुष्पमिति तद् विदुः ।
 क्षेत्रे वृत्तापताकारे कारयेच्छुक्तिसंज्ञकम् ॥ ६५ ॥
 वृत्ताकारे भवेत् क्षेत्रे वृत्तं बलयकर्मणा ।
 चतुरश्रे समे क्षेत्रे यल्लुमार्धलुमर्धं(तेःतः) ॥ ६६ ॥
 वृत्तक्षोभणभङ्गानि तन्मन्दारकमुच्यते ।
 कुमुदं कुमुदस्यैव लुमाक्षेपौदिहार्थतः ॥ ६७ ॥
 पद्मके स्यादधःक्षिप्ता विकासे मध्यमा लुमा ।
 गरुडे गरुडो मध्ये नागाभरणशोभितः ॥ ६८ ॥
 पुरोगतं तद् यदधो गत्वा स्याद् ऊर्ध्वगं पुनः ।
 अधो गत्वा पुरारोहमूर्ध्वमूर्ध्वं ततोऽप्यधः ॥ ६९ ॥
 विचित्रक्षोभणाकीर्णमन्ते वृत्तं सुहृर्मृदुः ।
 अष्टभिश्चाश्रिभिर्मध्ये विद्युन्मन्दारकं भवेत् ॥ ७० ॥

१. 'नामतः' स. पाठः । २. 'स' क. पाठः । ३. 'जा' । ४. 'दधेगतं पु' स. पाठः ।

मानोन्मानमथ ब्रूमः प्रासादच्छाद्यसंश्रयम् ।

अर्धेनच्छाद्यविस्तारस्योर्ध्वे वंशं प्रकल्पयेत् ॥ ७१ ॥

अयमर्धोदयः प्रोक्त आवन्त्यो नामतः परः ।

त्र्यंशेनच्छाद्यविस्तारस्योदयो वामनो भवेत् ॥ ७२ ॥

वामनावन्त्ययोर्मध्ये नवधा प्रविभाजयेत् ।

भागोत्तरोदयात् तेऽष्टौ वामनादुदयाः स्मृताः ॥ ७३ ॥

(वा?आ)तपत्रोऽय कौबेरः (स?श)मैनाख्यस्तथावली ।

हंसपृष्ठो महाभोगी नारदः शम्बुकस्तथा ॥ ७४ ॥

वामनः प्रथमस्तेषामावन्त्योते?न्त्येन दशैत्यमी ।

छाद्यानामथ वृत्तानामुदयः श्रोच्यतेऽधुना ॥ ७५ ॥

तलसूत्रसमं कृत्वा कुर्याद् द्वादशघोदयम् ।

पष्ठादारभ्य भागोत् स्युः सप्त भागोत्तरोदयाः ॥ ७६ ॥

कुबेरशेखरी चन्द्री नागश्चा(तु?थ) गणाधिपः ।

मुत्स्यथोलः सुभद्रश्च वृत्ते सप्तोदयाः स्मृताः ॥ ७७ ॥

कृत्वा त्रिकर्करपदं लुमापृष्ठं लिखेत् ततः ।

भागार्धमधिकं क्षेत्रे भवेच्छाद्यकवर्तना ॥ ७८ ॥

भागार्धवर्धिते क्षेत्रे तलसूत्रक्रमान्विते ।

लुमामाद्यां लिखेद् भूयः पद क्रमेणानुसन्ततम् ॥ ७९ ॥

रिसा यथादिहस्ताय(?) लुमायाः स्यादनन्तरम् ।

लुमा धिमागदीनेन परिवृद्धाद्गुलेन सा ॥ ८० ॥

तस्यान्तानन्तरा लक्ष्म्या सार्धं वृद्धाद्गुलत्रयम्(?) ।

त्र्यंशोनः पद्मिरपरा त्र्यंशोर्नर्दशभिः परा ॥ ८१ ॥

चतुर्दशमिरन्या स्यात् सार्धं वृद्धां ततोऽर्गुलैः ।

विंशत्यर्गुलवृद्धा तु सप्तमी कोणसंधिर्ता ॥ ८२ ॥

क्रमेणानेन मानानि लुमानां वृद्धिहामयोः ।

अनुपातेन कार्याणिच्छाद्यथेयानुसारतः ॥ ८३ ॥

१. 'स्तेदस्यवर्तनो' (?) क. पाठः । २. 'सा' ल. पाठः । ३. 'सप्तोते' क. पाठः । ४. 'याः' ल. पाठः । ५. 'लक्ष्म्याः' । ६. 'याद्म' । ७. 'सार्धमर्गुलत्रयां वा' क. पाठः । ८. 'वर्द्धयन्' । ९. 'द' ल. पाठः । १०. 'याः' । ११. 'न नामानि' क. पाठः ।

† कुबेरवल्लरीचन्द्रोपनगा गणनायकः ।

* गुग्धा मुंभदेत्येताः स्पुर्लुमाकर्माधमादितः ॥ ८४ ॥

एतासां गण्डिकाछेदाश्चत्वारः परिकीर्तिताः ।

ऊर्ध्वस्तिर्य्य(गँ?ग)तिस्त्र्यंशस्तथार्धत्र्यंश एव च ॥ ८५ ॥

छाद्यकोदयविस्तारं तन्निर्गमसमायति ।

कृत्वा षोढा भजेत् क्षेत्रं विस्तारायामतः समम् ॥ ८६ ॥

तत्रोर्ध्वद्रव्यमानेनच्छिन्द्यात् प्रागेव गण्डिकाम् ।

तस्यां छेदानुसारेण दापयेदेव लम्बकम् ॥ ८७ ॥

अधस्ताद् गण्डिकायाश्च कण्टकानि प्रकल्पयेत् ।

अवपातोच्छ्रयौ ज्ञात्वा त्रीणि स्थानानि चिह्नयेत् ॥ ८८ ॥

गर्भे तथोर्ध्वे प्रान्ते च तृतीयं मध्यतस्तयोः ।

यत्र स्थाने स्थितं मूत्रं स्पृशति स्थानकत्रये ॥ ८९ ॥

तस्मात् प्रसार्य तत्तूत्रं भ्रमयेत् कर्कटं ततः ।

लुमार्धस्यैवमुपरिसंस्थानमुपजायते ॥ ९० ॥

उपरि स्थितेन मूत्रेण तत्तुल्येनैव कर्कटम् ।

प्रान्तावलम्बकस्थाने भ्रमयेत् खल्वसिद्धये ॥ ९१ ॥

प्रागक्षे भागयुगलावच्छिन्नं फलके पुनः ।

कल्पयेत् सममेवैषा लुमापाणिर्निगद्यते ॥ ९२ ॥

शेषां लुमां तु दीर्घांश्चतुर्भिः प्रविभाजयेत् ।

चतुर्धातः परं तस्याः कर्तव्यं घृत्तवर्तनम् ॥ ९३ ॥

अर्धोदये लुमोच्छ्रायो विस्तारांशद्वयोन्मितः ।

मूलेऽग्रतश्च भागार्धमुदयोऽस्या विधीयते ॥ ९४ ॥

अधःक्षेत्रे स विस्तारात् सूत्रमालम्ब्य तद्यथा ।

विस्तारात् सदृशे क्षेत्रे सार्धतद्भागमाश्रितः ॥ ९५ ॥

१. 'गन्दा' ख. पाठः । २. 'ख' क. पाठः । ३. 'गा', ४. 'प्राक्षेत्रे भा',
५. 'मायता' ख. पाठः ।

† 'कुबेरवल्लरी'ति पूर्व पठितम् । * 'गुग्धा' इति पूर्वं पठ्यते । तदनन्तरं च
'अण्ड' इति नामान्तरमपि तत्र दृश्यते ।

ऊर्ध्वदेशात् तु भागेन स स्याद् भागेचतुष्टये ।
 लिखेद् वृत्तं त्रिभागोनश्वंशकर्कटकोद्भवम् ॥ १०९ ॥
 तस्योपरिष्ठात् तदनु ग्रीवा कार्यैकभागिनी ।
 गर्भे शृङ्गाग्रयोर्मध्ये तिर्यग् भागद्वयं भवेत् ॥ ११० ॥
 मध्ये कर्णाग्रयोस्तिर्यक् कार्यं भागत्रयं बुधैः ।
 ग्रीवाया उपरिष्ठाच्च भागमेकं शिखा भवेत् ॥ १११ ॥
 शिखाग्रमुपरिष्ठाच्च कर्तव्यं गर्भसङ्गतम् ।
 शिखाग्रमूर्ध्वतस्तद्वर्धभागावलम्बितम् ॥ ११२ ॥
 भागावलम्बि कर्णाग्रं स्कन्धाग्रं तावदेव तु ।
 स्यात् कर्णखण्डयोर्मूलं स्कन्धदेशस्य सङ्गतम् ॥ ११३ ॥
 चस्तिर्कौ श्वंशविस्तारायामः प्राग्वृत्तमध्यतः ।
 त्वं शङ्कुमधःसूत्रादूर्ध्वं भां(गो)मे निवेशयेत् ॥ ११४ ॥
 गो निवेशितं कुर्यात् पूर्ववृत्तांघ्रशेषतः ।
 चस्तिकान्तं च पूर्वोक्तं पूर्ववत् सर्वमाचरेत् ॥ ११५ ॥
 लसूत्रादुपर्यशैश्चतुर्भिर्गर्भतः स(मः)मम् ।
 गभ्यां द्वाभ्यामुभयतो भागाभ्यां तिर्यगेव च ॥ ११६ ॥
 गेन तद्वदेवाधःसूत्रादुपरि गर्भतः ।
 तुभिश्च चतुर्भिश्च भागैरुभयतः समम् ॥ ११७ ॥
 तार्थानि लिखेदेककर्णयुक्तानि पूर्ववत् ।
 कशृङ्गाणि च ग्रीवास्वस्तिकार्धयुक्तानि च ॥ ११८ ॥
 कसूत्रवहिर्देशाद् बाह्यवृत्तसमुद्भवः ।
 त्रयप्रविष्टः स्यात् पार्ष्णित्र परिस्फुटः ॥ ११९ ॥
 वलीललितो नाम सिंहकर्णोऽयमीरितः ।
 भागीकृते प्राग्वदुदये तत्प्रमाणतः ॥ १२० ॥

श्री त्रिभागोनेः स', २. 'य', ३. 'के', ४. 'त्ये', ५. 'वं'
 ६. 'कस्कन्धवि', ८. 'मः', ९. 'गर्भे नि' ख. पाठः । १०. 'त्या'
 ११. 'शु', १२. 'शुगाच' ख. पाठः । १३. 'हे', १४. 'द्य'
 'कु' क. पाठः ।

चतुर्दशविस्तीर्णं कर्णे सार्धं वस्त्रिर्मतेत् ।
 द्वात्रिंशद्विस्तीर्णं श्रोत्रे श्रावन् श्वात् त्रयोदशविस्तीर्णः ॥ १२१ ॥
 संप्र एकत्रिंशद्विस्तीर्णं सिंहाकर्णसंस्कारः ।
 एते श्रोतान्विताः कार्यास्त्यथसंस्कारास्तथा ॥ १२२ ॥
 प्रासादानामिति निगदितं द्वास्मानं निवेद्यः
 स्तम्भानां च ध्रुवमिह विधानानि तेषां तुमाश्र
 वृत्तान्ताद्योन्मिष्टतिरभिहिता श्राव्यसंस्था तुमाश्र
 श्रोताः सप्त प्रथितमपरं सिंहाकर्णप्रमाणम् ॥ १२३ ॥

इति ममसाहस्यपूजाध्यायः ॥ १२ ॥
 प्रासादद्वारस्तम्भनिवेशविधानतुमालक्षणतुमाश्रवृत्तान्तुमासिंहाकर्णप्रमाणं नाम

चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः ॥

ॐ नमः भूयात् ॥



THE GACKWAD'S ORIENTAL SERIES.

SELECT OPINIONS.

"Kavyamimamsa" a treatise on poetics by the poet Rajasekhara, flourished about A. D. 900, was evidently regarded as an important work, about one-fourth of it was borrowed by the celebrated Jain author Hemchandra. It contains various interesting remarks about the geography of India, the literary surroundings of a Royal poet, literary examinations, and writing materials. Second, an epic in sixteen cantos by a poet named Vastupal who flourished in the early part of the thirteenth century, seems to have achieved a more than local notoriety. The inclusion of Prakrit works in the series is an excellent idea. Owing to the practical monopoly of Sanskrit in India, the study of the Prakrits has been too much neglected there, though these mediæval vernaculars are of great philological and to some extent, literary importance.

LONDON TIMES LITERARY SUPPLEMENT, June 22, 1917.

The first two volumes of the *Gackwad's Oriental Series* are well printed and appear to be well edited also. I consider the introductions and appendices very useful.

A. A. MACDONELL, Boden Professor of Sanskrit in the University of Oxford.

I was much struck by the valuable nature of the works in course of publication in the *Gackwad's Oriental Series*. Some of them, I see, will be important aids to me in my work in the *Linguistic Survey of India*. The first two numbers are valuable works and were hitherto quite unknown to me.

(SIR) GEORGE A. GRIERSON, Superintendent of the Linguistic Survey of India.

The series, as a whole, will bring notable accession to our knowledge of the immense and wonderful Sanskrit literature.

(DR.) F. W. THOMAS, Librarian, India Office Library.

The editions have been executed with the greatest care. The prefaces are learned and informing and the books are well selected for the study of Indian history and literature.

(MAHAMAHOPADHYAYA) HARAPRASAD SHASTRI, M. A., C. I. E.

The edition is a critical one and the introduction and notes valuable:—
AN ANTIQUARY.

Edited in an admirable manner and will form an important addition to the Sanskrit literature.

(MAHAMAHOPADHYAYA) T. GANAPATI SHASTRI, Ph. D., M. A., B. A.
Curator for the Publication of Sanskrit MSS., Trivendrum.